Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

LIB. G.K.V.

P R 20
का. १५-ना
वर्ष - ५५

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

विषय संख्या R
पुस्तक संख्या का १५ ना
आगत पंजिका संख्या 110733
पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRANCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

स्नातक प्रणाली कक्षा ११८४-११८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नागरीप्रचारिणी पत्रिका

CHECKED 1973

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा

स्थापित १९५० वि०

वर्ष ५५ संवत् २००७ अंक ३

पृष्ठ

प्राकृत जैन साहित्य की रूपरेखा—श्री आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय १५७
वसुदेवहिंडी—श्री अगरचंद नाहटा १६४
भक्त अखा—श्री गंगाशंकर बलदेवशंकर पंड्या १७२
वैदेहीपुत्र अजातशत्रु और उसकी कूटनीति—श्री रत्नशंकर प्रसाद १७९
विमर्श
गुप्त सम्राट् और विष्णुसहस्रनाम—श्री दशरथ शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्० २०१
चयन ... ... ... २०९
समीक्षा ... ... ... २३०
विविध ... ... ... २४२
सभा की प्रगति ... ... ... २४६
सभा के वार्षिक विवरण का परिशिष्ट ... ... २५२

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

वार्षिक मूल्य १०) : इस अंक का २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## पत्रिका के उद्देश्य

१—नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।

२—हिंदी साहित्य के विविध अंगों का विवेचन।

३—भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान।

४—प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

## निवेदन

( १ ) प्रतिवर्ष, सौर वैशाख से चैत्र तक, पत्रिका के चार अंक प्रकाशित होते हैं।

( २ ) पत्रिका में उपर्युक्त उद्देश्यों के अंतर्गत सभी विषयों पर सप्रमाण और सुविचारित लेख प्रकाशित होते हैं।

( ३ ) पत्रिका के लिये प्राप्त लेखों की प्राप्तिस्वीकृति शीघ्र की जाती है, और उनकी प्रकाशन संबंधी सूचना एक मास के भीतर भेजी जाती है।

( ४ ) पत्रिका में समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। उनकी प्राप्तिस्वीकृति पत्रिका में यथासंभव शीघ्र प्रकाशित होती है; परंतु संभव है उन सभी की समीक्षाएँ प्रकाश्य न हों।

संपादक : कृष्णानंद
सहायक संपादक : पुरुषोत्तम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110733
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110733
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

# नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ५५ ] संवत् २००७ [ अंक ३

## प्राकृत जैन-साहित्य की रूपरेखा

[ श्री आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय ]

१—भारतीय साहित्य को हिंदू, जैन और बौद्ध—इन धार्मिक खंडों में विभाजित करने की विद्वानों में प्रथा चल पड़ी है। यह विभाग है तो कुछ सुविधा-जनक, किंतु उसकी भ्रांति में हमें शरीर और प्राण का भेद नहीं भूल जाना चाहिए। यह सत्य है कि अधिकांश भारतीय साहित्य धार्मिक है, किंतु कुछ शुद्ध भौतिक या व्यावहारिक रचनाएँ भी धर्म की लपेट में आ गई हैं। यथार्थतः ज्ञान की उपासना और साहित्यिक प्रवृत्ति को धर्म और संप्रदाय के घेरे से बाहर रखना चाहिए। यदि हम इस कसौटी पर परीक्षा करें तो हमें ज्ञात होगा कि प्राचीन जैन लेखकों को सच्ची साहित्यिक रुचि और उदार सार्वजनिक दृष्टि रखने का श्रेय प्राप्त है। उन्होंने सामाजिक सहिष्णुता और असंकीर्ण विचारशीलता का पक्ष ग्रहण किया है। इनमें से प्रथम प्रवृत्ति का स्वरूप उनकी 'अहिंसा' में तथा द्वितीय प्रवृत्ति का उनके 'अनेकांत' में विकसित हुआ है। हरिभद्र जैसे प्रमुख ग्रंथकारों ने अपने न्यायशील खंडन-मंडन में अपने प्रतिपक्षियों के साथ आदर का व्यवहार किया है। सुप्रसिद्ध जैन लेखकों ने अजैन ग्रंथों पर बड़ी बड़ी टीकाएँ लिखी हैं। अनेक अजैन ग्रंथों की केवल जैन भंडारों में ही रक्षा हुई है। ये एक आदर्श भावना के दृष्टांत हैं जो हम सबको अपना एक विशेष संदेश सुना रहे हैं।

यही उदार भावना जैन लेखकों और संतों द्वारा देश की विभिन्न भाषाओं के उपयोग में प्रस्फुटित हुई है। उन्होंने कभी ऐसा अंधविश्वास उत्पन्न नहीं किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि कोई एक भाषा देववाणी है और वही भाषा-साहित्य-रचना के योग्य है। उनके लिये भाषा ने कभी साध्य का रूप नहीं धारण किया। वह सदैव एक साधन मात्र रही, जिसका साध्य था सत्य का प्रचार। तदनुसार उनके लिये धीमानों और श्रीमानों की गढ़ी हुई और स्थिर भाषाओं का जितना मूल्य था, उससे कहीं अधिक महत्त्व था उन सजीव प्राकृत भाषाओं का जो बहुजन-समाज में प्रचलित थीं। पूर्वोक्त सुसंस्कृत भाषाओं की उन्होंने उपेक्षा की हो, सो बात नहीं है। उन्होंने उनकी ओर खूब ध्यान दिया है। किंतु उन्होंने सजीव भाषाओं को विशेष रूप से अपनाया और उन्हें साहित्य का रूप प्रदान किया। प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, गुजराती, तामिल और कन्नड़ भाषाओं के विकास का जो इतिहास हमें अभी तक ज्ञात हुआ है वह पुकार पुकार कर उन जैन कवियों और मुनियों की प्रशंसा कर रहा है जिन्होंने इन भाषाओं के सदुपयोग द्वारा क्रमशः इन्हें सौंदर्य और गांभीर्य की चरम सीमा पर पहुँचा दिया।

२—'प्राकृत' शब्द के अर्थ में समय समय पर अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। किंतु सामान्यतः प्राकृत का अभिप्राय सदैव उन मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाओं से रहा है जो लोकप्रचलित थीं तथा उस देववाणी संस्कृत से पृथक् थीं जो अपने संस्कारयुक्त रूप में केवल इनेगिने धीमानों और श्रीमानों द्वारा उपयोग में लाई जाती थी। भारतवर्ष के इतिहास में यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि समस्त प्राचीनतम शिलालेख प्राकृत में ही लिखे हुए पाए गए हैं, और विक्रम की चौथी-पाँचवीं शताब्दी तक भी प्राकृत में ही बहुधा शिलालेख लिखे गए हैं। अशोक और खारवेल के शिलालेख इस बात के सुप्रसिद्ध प्रमाण हैं। अशोक के लेख, कम से कम उनमें से कुछ, शाश्वत सदाचार के उत्कृष्ट उपदेशरूप हैं। संस्कृत नाटकों में प्राकृत भाषाओं का उपयोग प्रायः नीच पात्रों द्वारा कराया गया है। इसीसे हमें भाषासंबंधी यथार्थ सामाजिक परिस्थिति का पता चल जाता है और यह बात सिद्ध हो जाती है कि वे शिलालेख जनता के हित के उद्देश्य से ही लिखाए गए थे। इस प्रकार यह बात असंदिग्ध रूप से कही जा सकती है कि प्राकृत ही जनता की भाषा थी और संस्कृत का उपयोग उच्च श्रेणी के लोगों तक ही सीमित था। सामान्य अर्थ में पाली भी प्राकृत के भीतर आ जाती है और आज भी भाषाशास्त्री प्रायः इसी विस्तृत अर्थ में 'मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा' शब्द का प्रयोग करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


३—यहाँ हमारा उद्देश्य जैनों द्वारा रचित प्राकृत साहित्य का सिंहावलोकन करना है। महावीर और बुद्ध इन दोनों श्रमणनायकों का ध्येय प्राणिमात्र के हित की दृष्टि से मानुषिक तत्त्वों का प्रचार करना था। अतः यह उचित ही था कि उन्होंने जनता की भाषा में ही उपदेश देना प्रारंभ किया। महावीर और उनके शिष्यों के उपदेश हमें छोटे बड़े पैंतालीस ग्रंथों में संगृहीत मिले हैं। यही साहित्य अर्धमागधी और जैन आगम कहलाता है। इस आगम के छः विभाग हैं—अंग, उपांग, प्रकीर्णक, छेदसूत्र, संकीर्ण और मूलसूत्र। आगम के भीतर विविध विषय चर्चित हैं और वे अपने समय के मानवीय ज्ञान की सब धाराओं में प्रवाहित हैं। *आचारांग*, *दसवेमालिय*, *पिंडनिर्युक्ति* आदि ग्रंथों में मुनि-जीवन की छोटी से छोटी बातों पर भी विचार किया गया है और तदनुकूल नियम बनाए गए हैं। *जीवाभिगम* आदि रचनाओं में जीव एवं जगत् संबंधी सभी विषयों का ऊहापोह किया गया है। *उवासगदसाओ*, और *पण्हावागरणाइं* में गृहस्थ-जीवन के आदर्श उपस्थित किए गए हैं। *नायाधम्मकहाओ*, *विवाग*, *निरयावली* आदि ग्रंथों में नीतिसंबंधी धार्मिक आख्यान पाए जाते हैं। *सूरपण्णत्ति* आदि में विश्वरचना का विचार किया गया है। *सूयगडं* और *उत्तरज्झयणं* में बड़े ही सुंदर नैतिक उपदेश पाए जाते हैं। इनके कुछ खंड तो प्राचीन भारतीय संत-काव्य के मनोहर उदाहरण हैं। *नंदी* आदि ग्रंथों में जैनों की ज्ञानमीमांसा विस्तृत रूप से पाई जाती है। *भगवती* जैसे ग्रंथ अपने विषय-बाहुल्य की दृष्टि से ज्ञानकोष ही कहे जा सकते हैं।

४—जैन आगम का वर्तमान स्वरूप बहुत पीछे अर्थात् महावीर के निर्वाण से ९८० वर्ष पश्चात् का है। जैन-मान्यतानुसार विक्रम से ४७० वर्ष पूर्व महावीर का निर्वाण हुआ था। अतः आगम के वर्तमान स्वरूप प्राप्त करने का काल विक्रम संवत् ९८०–४७०=५१० सिद्ध होता है। किंतु निष्पक्ष और विवेकपूर्ण अध्ययन से पता चलता है कि *आचारांग* जैसे ग्रंथ उक्त समय से पूर्व की रचनाएँ हैं। आगम पहले से लिखित न होकर मौखिक परंपरा द्वारा प्रचलित रखा गया जिससे उसमें अनेक विकार उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक था। आगम की सबसे प्रथम व्यवस्था पाटलिपुत्र की वाचना द्वारा हुई, जिसका समय ई० पू० चौथी शताब्दी पाया जाता है। इसके पश्चात् दूसरी बार मथुरा में भी वाचना हुई कही जाती है जिसे 'माथुरी वाचना' कहते हैं; और अंत में आज के उपलब्ध रूप में उसकी व्यवस्था वल्लभी वाचना द्वारा हुई जिसका काल निर्वाण से ९८० वर्ष पश्चात् अर्थात् वि० सं० ५१० माना जाता है। आगम के इस इतिहास से ही स्पष्ट है कि उसकी व्यवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और रचना में समय समय पर परिवर्तन हुए हैं। समालोचक विद्वान् आगम में प्राचीन और नवीन रचनाओं का विवेक करने का प्रयत्न कर रहे हैं। प्राचीन खंडों की प्राकृत में हमें भाषा की प्राचीन प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। पीछे की रचनाओं में तदनुसार पीछे की प्राकृतों की विशेषताएँ मिलती हैं। यद्यपि कुछ विद्वान्-लेखकों ने आगम का स्थूल परिचय कराया है, तो भी अभी समस्त आगम के परिपूर्ण और सूक्ष्म रीति से अध्ययन की आवश्यकता बनी हुई है। जब ऐसा अध्ययन किया जायगा तभी आगमों के भीतर निहित सामग्री का, भारतीय संस्कृति और साहित्य को सब दिशाओं में समझने के लिये, उपयोग हो सकेगा।

५—अर्धमागधी आगम पर प्राचीनतम टीकाएँ भी प्राकृत में ही लिखी गईं, जैसे पाली त्रिपिटक ग्रंथों पर भी पुरानी टीकाएँ पाली में ही लिखी पाई गई हैं। कोई दश ग्रंथों पर हमें पद्यात्मक टीकाएँ प्राप्त हैं जो *निर्युक्ति* कहलाती हैं। कुछ ग्रंथों पर गद्य में टीकाएँ हैं जो *चूर्णि* कहलाती हैं। ये सब अभी तक पूर्णतः प्रकाशित भी नहीं हुई हैं। *विशेषावश्यक भाष्य* सरीखी रचनाएँ बड़ी विशाल हैं और अपना एक पूरा साहित्य ही अलग रखती हैं। उनमें अनेक छोटी-मोटी ऐसी बातें मिलती हैं जो सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण और रोचक हैं। आगम पर संस्कृत टीकाओं का काल आठवीं शताब्दी में *हरिभद्र* से प्रारंभ होता है।

६—उपर्युक्त अर्धमागधीभाषात्मक समस्त आगम केवल श्वेतांबर संप्रदाय में ही प्रचलित और मान्य है। दिगंबर संप्रदाय में इस आगम की प्रमाण रूप से मान्यता नहीं है। दिगंबर जैन परंपरा के अनुसार कहा जाता है कि महावीर के उपदेशोंवाला मौलिक आगम सर्वथा नष्ट हो गया। अभी तक जो कुछ परिमित अध्ययन दोनों संप्रदायों के मान्य ग्रंथों का किया गया है उससे पता चलता है कि किसी समय दोनों का एक ही साहित्य था, क्योंकि दोनों के ग्रंथों में बहुत सी बातें उन्हीं शब्दों में कही पाई जाती हैं। दिगंबर संप्रदाय द्वारा मान्य शिवार्यकृत *भगवती-आराधना* और कुंदकुंदकृत *प्रवचनसार* आदि ग्रंथों में इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि उनमें ऐसी बहुत सी बातें हैं जो एक समय सर्वमान्य थीं। शिवार्य और कुंदकुंद ईसा की प्रथम शताब्दी में हुए अनुमान किए जाते हैं। श्वेतांबरों का मत है कि *दृष्टिवाद* नाम का बारहवाँ अंग नष्ट हो गया। किंतु प्रो० हीरालाल जी ने बतलाया है कि स्पष्टतः दृष्टिवाद के कुछ अंश विषयरूप से *सत्कर्मप्राभृत* और *कषायप्राभृत* में रक्षित हैं। इन्हीं पर क्रमशः *धवला* और *जयधवला* नामक विशाल टीकाएँ प्राकृत में (और कहीं कहीं कुछ संस्कृत में) वीरसेन और जिनसेन द्वारा नवीं शताब्दी में रची गईं जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अब प्रकाश में आ रही हैं। इन रचनाओं में उस कर्म-सिद्धांत का बड़ा सूक्ष्म विवेचन पाया जाता है जो भारतीय धर्मों में जैन शासन की एक अनुपम निधि है।

७- कर्म-सिद्धांत से संबंध रखनेवाला अधिकांश जैन साहित्य श्वेतांबर और दिगंबर दोनों संप्रदायों में प्राकृत में ही विरचित पाया जाता है; जैसे शिवशर्मकृत *कम्मपयडी*, चंद्रर्षिकृत *पंचसंग्रह*, प्राचीन और प्राचीनतर *छह कर्मग्रंथ* श्वेतांबरों में, तथा नेमिचंद्रकृत *गोम्मटसार*, *लब्धिसार*, और *क्षपणसार* दिगंबरों में। इनमें के अधिकांश छप चुके हैं, किंतु उनका विवेकपूर्वक तुलनात्मक अध्ययन अब भी शेष है। इसकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

*भगवती-आराधना* मुनि-धर्म पर एक बड़ी महत्त्वपूर्ण प्राकृत रचना है। कुंदकुंद जैनसिद्धांत के एक मतविशेष पर सर्वोपरि प्रमाण माने जाते हैं। उनकी प्राकृत रचनाएँ आगम के पश्चात्काल का एक विशेष साहित्यांग हैं। पर वे प्रायः परंपरागत कुछ मान्यताओं के संग्रहरूप हैं। कुंदकुंद के *पंचास्तिकाय*, *प्रवचनसार*, *समयसार* और *षट्पाहुड* नामक ग्रंथों में जैन धर्म संबंधी विषयों का निरूपण किया गया है। यहाँ न्याय और तर्कशैली का अवलंबन नहीं पाया जाता; ग्रंथकार प्रायः धर्मोपदेशकों के समान केवल मतविशेष का प्रतिपादन मात्र करते हैं। जैन विश्वतत्त्व की जो परंपरा दिगंबरों में आई उसका प्रतिपादन यतिवृषभ की *तिलोयपण्णत्ति*, पद्मनंदि की *जंबुद्दीवपण्णत्ति* एवं नेमिचंद्रकृत *तिलोयसार* में पाया जाता है।

जिनभद्र का *विशेषावश्यक भाष्य*, सिद्धसेनकृत *सम्मतितर्क* आदि ग्रंथ अपने ढंग के अद्वितीय हैं। इनमें विशेष मतों का निरूपण मात्र नहीं है, अपितु तर्क द्वारा समर्थन का प्रयत्न किया गया है, जैसा कि विरोध आने पर वे नैयायिक करते हैं जिन्हें किसी मतविशेष को सिद्ध करना होता है।

श्वेतांबर संप्रदाय में ग्रंथ-रचना के लिये प्राकृत भाषा का अवलंबन कुछ दीर्घ काल तक बना रहा, जिसके फलस्वरूप हरिभद्र और उनके उत्तराधिकारियों द्वारा लिखे गए *प्रकरणों* की एक धारा हमारे सामने आती है। किंतु दिगंबर संप्रदाय में इसी बीच प्राकृत का उपयोग कम हो गया और संस्कृत का प्रयोग बढ़ गया। फिर भी कुमारकृत *कत्तिगेयाणुवेक्खा*, वट्टकेरकृत *मूलाचार* तथा देवसेनकृत *दर्शनसार*, *भावसंग्रह*, *आराधनासार* आदि ग्रंथ प्राकृत में रचे हुए पाए जाते हैं। यह प्रवृत्ति दशवीं शताब्दी तक कुछ प्रबल रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८—जैन लेखकों की सदैव यह अभिलाषा रही है कि जैन धर्म के नैतिक और सदाचार-संबंधी उपदेश, जितना अधिक हो सके, जनसाधारण तक पहुँचें। जैन ग्रंथकारों, विशेषतः गुजरात के निवासियों ने भारतीय प्राकृत साहित्य को अपनी कथात्मक रचनाओं द्वारा खूब संपन्न बनाया। इन रचनाओं में किसी न किसी शलाका पुरुष अर्थात् उत्तम पुरुष के चरित्र का वर्णन किया गया है। भद्रबाहुकृत *वसुदेव-चरित*, पादलिप्तकृत *तरंगवती* आदि ग्रंथ हमें प्राप्त हैं। विमलसूरिकृत *पउमचरिय* चौथी शताब्दी की रचना है जिसमें जैन दृष्टि से राम के चरित्र का प्राकृत पद्य में वर्णन किया गया है; अतएव उसे प्राचीनतम जैन रामायण कह सकते हैं। इसकी रचना ऐसी हुई है कि न तो उसे श्वेतांबर संप्रदाय की कह सकते और न दिगंबर संप्रदाय की; वह जैन समाज की ही संपत्ति कही जा सकती है। संघदास और धर्मदासकृत *वसुदेवहिंडी* प्राकृत गद्य का एक विशाल ग्रंथ है जिसमें वसुदेव के परिभ्रमणों का रोचक वर्णन हुआ है। यह जैन रचना गुणाढ्यकृत बृहत्कथा के तुल्य कही जा सकती है। बृहत्कथा नष्ट हो गई, पर वसुदेवहिंडी जीवित है। यह छठी शताब्दी से पूर्व की रचना है। हरिभद्र ने *समराइच्चकहा* आठवीं शताब्दी में लिखी थी। यह गद्य आख्यान की एक बड़ी सुंदर रचना है। हरिभद्र के प्रायः समकालीन उद्योतनसूरि ने अपनी *कुवलयमालाकथा* वि० सं० ८३६ में लिखी। इसकी विशेषता यह है कि इसमें विभिन्न प्राकृतों का उपयोग किया गया है। शीलाचार्यकृत *महापुरुषचरित* तो जैन पौराणिक कथाओं की खान ही है।

दशवीं शताब्दी से लेकर कोई तीन सौ वर्ष से भी अधिक काल प्राकृत साहित्य के लिये बड़ा समृद्धिशील रहा। इसी काल में हेमचंद्र हुए जिनका *प्राकृतव्याकरण* भारतीय व्याकरण-साहित्य में एक सीमानिर्धारक सिद्ध होता है। इसी समय में धनेश्वर की *सुरसुंदरीचरिय*, महेश्वर की *पंचमीकहा*, गुणभद्र का *महावीरचरित्र*, देवचंद्र का *शांतिनाथ चरित*, हेमचंद्र का *कुमारपालचरित*, लक्ष्मणगणी का *सुपासणाहचरिय*, सोमप्रभ का *कुमारपालप्रतिबोध* आदि ग्रंथ रचे गए। *समराइच्चकहा* एवं *महावीरचरिय* चरित्र-वर्णन मात्र नहीं हैं, प्रत्युत ऐसे काव्य हैं जो उसी कोटि के संस्कृत काव्यों से अच्छी समता कर सकते हैं। पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक भी जिनहंस, शुभचंद्र जैसे लेखक प्राकृत रचनाएँ करते रहे, किंतु प्राकृत के लिये यह काल अवनति का था।

९—जैन प्राकृत साहित्य में उपदेश और सुभाषित पद्य की भी कमी नहीं है। *उपदेशमाला*, *पुष्पमाला*, *उपदेशचिंतामणि*, *वज्जालग्ग* आदि इसके सुंदर उदाहरण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्राकृत में छोटे-बड़े अनेक स्तोत्र भी हैं; जैसे *ऋषिमंडलस्तोत्र*, *महावीरस्तव* आदि। कुछ स्तोत्र संस्कृत, महाराष्ट्री, मागधी, शौरसेनी, पैशाची और अपभ्रंश—इन छहों प्रसिद्ध भाषाओं में रचे गए हैं; जैसे धर्मवर्धनकृत *पार्श्वजिनस्तवन* ( बारहवीं शताब्दी ) और जिनपद्मकृत *शांतिनाथस्तवन* ( चौदहवीं शताब्दी )।

१०—जैसा ऊपर कहा जा चुका है, जैनों ने यथार्थतः केवल अपने धर्म को जनता तक पहुँचाने के ध्येय से ही प्राकृत भाषाओं को साधन रूप से अपनाया था। कालांतर में लेखक संस्कृत रचना की ओर मुड़ गए। तथापि प्राकृत भाषा और साहित्य के परिपोषक रूप में जैन ही प्रमुखता से हमारे सम्मुख उपस्थित हैं। प्राकृत का सर्वप्रथम कोष *पाइयलच्छीनाममाला* हमें धनपाल से मिला है। हेमचंद्र तो समस्त प्राकृत संसार के महापुरुष ही हैं। उनका *प्राकृतव्याकरण* और *देशीनाममाला* नामक कोष मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के विकास को समझने के लिये अनुपम साधन हैं। त्रिविक्रम कृत प्राकृत-व्याकरण भी कुछ बातों में बहुत महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। शुभचंद्र का प्राकृत-व्याकरण भी उपलब्ध है। इन दोनों को व्यवस्थित रूप से प्रकाश में लाना अभी शेष है।

११—इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राकृत साहित्य को जैनों की देन विशाल भी है और महत्त्वपूर्ण भी। उसमें ऐसी भाषा-सामग्री सन्निहित है जैसी अन्यत्र कहीं नहीं पाई जाती। भाषाशास्त्री के लिये इन ग्रंथों का उपयोग अमूल्य है। उनमें ऐसी विविध सूचनाएँ मिलती हैं जिनसे भारतवर्ष के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक इतिहास के अनेक अंधकारमय स्थलों पर प्रकाश पड़ता है और बहुत सी उलझनें सुलझती हैं। उनके लेखकों का दृष्टिकोण मानुषिक और उदार रहा है। उन्होंने हमें केवल राजप्रासादों के ही दर्शन नहीं कराए हैं, प्रत्युत दीन-दरिद्र जनों के मैले-कुचैले गली-कूचों की ओर भी वे हमारी दृष्टि ले गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वसुदेवहिंडी

## जैन कथा-साहित्य का महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथ

[ श्री अगरचंद नाहटा ]

भारत का विशाल कथा-साहित्य अनुपम और अद्वितीय है। उसकी विविधता एवं विशालता विस्मयजनक है। एक-एक कथा पर विभिन्न ग्रंथकारों के सैकड़ों तक ग्रंथ पाए जाते हैं। इससे कुशल कहानी-लेखकों के हाथों मूल कथा में परिवर्तन होकर इतने अधिक रूपांतर हो गए हैं कि मूल कथावस्तु को खोज निकालना एक कठिन समस्या है। वेद, उपनिषद्, पुराण आदि संपूर्ण प्राचीन साहित्य कथाओं के भांडार हैं। रामायण, महाभारत तथा अन्य सैकड़ों उच्च कोटि के स्वतंत्र काव्यों का निर्माण हमारी लोककथाओं और पौराणिक आख्यानों के ही आधार पर हुआ है। बृहत्कथा जैसे कथानकों के संग्रहग्रंथों की भी कमी नहीं है।

इन कथाओं द्वारा केवल मनोरंजन ही नहीं होता, अपितु ज्ञानवृद्धि भी होती है। धर्म और नीति के उपदेशों का हृदयपटल पर गहरा प्रभाव अंकित होने से जीवन-निर्माण में भी इनका बड़ा हाथ है। बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी इनको सुनने के लिये उत्सुक रहते हैं। रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों का तो पुनः पुनः पारायण करते भी लोग, अघाने को कौन कहे, अपने को धन्य और कृतकृत्य मानते हैं। तुलसीकृत रामायण जैसे एक ही कथा-ग्रंथ ने लाखों-करोड़ों व्यक्तियों को प्रभावित कर देश के नैतिक जीवन के निर्माण में कितना बड़ा काम किया, यह तो सर्वविदित ही है।

साहित्य, संस्कृति एवं इतिहास की दृष्टि से हमारा कथा-साहित्य अत्यंत मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उसके सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व की ओर ध्यान बहुत कम दिया गया है। हमारा नवशिक्षितवर्ग प्रायः इन ग्रंथों को गपोड़ों से अधिक महत्त्व नहीं देता, और पुराने पंडितों के पास एक श्रद्धा ही संबल है। फिर वैज्ञानिक दृष्टि से इनका उचित मूल्यांकन करे कौन? लोकरुचि दिनोंदिन पौराणिक कथाओं से हट रही है। अतः यदि अब भी इनका वास्तविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


महत्त्व प्रकाश में नहीं आया तो पठन-पाठन के अभाव में इस विशाल साहित्य का विनाश अवश्यंभावी है।

भारतीय कथा-साहित्य में जैन कथा-साहित्य का स्थान कई दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसके संबंध में जैन साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् मुनि जिनविजय जी का कथन है—

"जैन कथा-साहित्य लोकजीवन को उन्नत एवं चरित्रशील बनानेवाली नैतिक शिक्षा की प्रेरणा का एक उत्कृष्ट वाङ्मय है। जैन कथाकारों का एकमात्र लक्ष्य जनता में दान, शील, तप और सद्भावस्वरूप सार्वधर्म का विकास और प्रसार करना रहा है।...जैन कथाकारों ने सद्धर्म एवं सन्मार्ग के जो ये चार प्रकार बतलाए हैं वे संसार के सभी मनुष्यों का सदा कल्याण करनेवाले हैं। चाहे परलोक को कोई माने या नहीं, चाहे स्वर्ग और नरक को कोई माने या नहीं, चाहे पुण्य और पाप जैसा कोई शुभाशुभ कर्म और उसका अच्छा या बुरा फल होनेवाला हो या नहीं, लेकिन यह चतुर्विध धर्म इसके पालन करनेवाले मनुष्य या मनुष्य-समाज के जीवन को निश्चित रूप से सुखी, संस्कारी और सत्कर्मी बना सकता है।...ये गुण सार्वभौम इसलिये हैं कि इनका पालन संसार का हर कोई व्यक्ति बिना किसी धर्म, संप्रदाय, मत या पक्ष के बंधन या बाधा के कर सकता है।...सनातन इसलिये हैं कि संसार में कभी कोई ऐसी परिस्थिति नहीं उत्पन्न हो सकती जिसमें इन गुणों का पालन मनुष्य के लिये अहितकर या अशक्य हो सकता हो। यह है इन जैन कथाग्रंथों का श्रेष्ठतम नैतिक महत्त्व।

"इसी प्रकार सांस्कृतिक महत्त्व की दृष्टि से भी इन कथाग्रंथों का वैसा ही उच्चतम स्थान है। भारतवर्ष के पिछले ढाई हजार वर्ष के सांस्कृतिक इतिहास का सुरेख चित्रपट अंकित करने में जितनी विश्वस्त और विस्तृत उपादान-सामग्री इन कथाग्रंथों से मिल सकती है उतनी अन्य किसी प्रकार के साहित्य से नहीं। इन कथाओं में भारत के भिन्न भिन्न धर्म, संप्रदाय, राष्ट्र, समाज, वर्ण आदि के विविध कोटि के मनुष्यों के नाना प्रकार के आचार, विचार, व्यवहार, सिद्धांत, आदर्श, शिक्षण, संस्कार, नीति, रीति, जीवनपद्धति, राजतंत्र, वाणिज्य, व्यवसाय, अर्थोपार्जन, समाज-संगठन, धर्मानुष्ठान एवं आत्मसाधन इत्यादि के निर्देशक बहुविध वर्णन निबद्ध किए हुए हैं, जिनके आधार पर हम प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास का सर्वांगीण और सर्वतोमुखी मानचित्र तैयार कर सकते हैं।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मनी के प्रोफेसर हर्टेल, विंटरनित्स, लॉयमान आदि भारतीय विद्या एवं संस्कृति के प्रखर पंडितों ने जैन कथा-साहित्य के इस महत्त्व का मूल्यांकन बहुत पहले ही कर लिया था और उन्होंने इस विषय में अनेक मार्गदर्शक संशोधन, अन्वेषण, समालोचन और संपादन आदि का उत्तम कार्य भी कर दिखाया था। लेकिन दुर्भाग्य से कहो या अज्ञान से, हमारे भारतवर्ष के विद्वानों का इस विषय की ओर अभी तक स्थूल दृष्टिपात भी नहीं हो रहा है।

"इस जैन कथावाङ्मय का इतिहास उतना ही पुराना है जितना जैन तत्त्वज्ञान और जैन सिद्धांत का इतिहास। अनेकानेक जैन कथाएँ तो जैन वाङ्मय का सबसे प्राचीन भाग समझे जानेवाले आगमों में ही वर्णित हैं। इन आगमसूचित कथाओं की वस्तु का आधार लेकर बाद में होनेवाले आचार्यों ने अनेक स्वतंत्र कथा-ग्रंथ रचे और मूल कथावस्तु में फिर अनेक अवांतर कथाओं का संयोजन कर इस साहित्य को खूब विकसित और विस्तृत बनाया। इन कथा-ग्रंथों में कुछ तो पुराणों की पद्धति पर रचे हुए हैं और कुछ आख्यायिकाओं की शैली पर। उपलब्ध ग्रंथों में पुराण-पद्धति पर रचा हुआ सबसे प्राचीन और सबसे बड़ा कथा-ग्रंथ "वसुदेवहिंडी" है, जो प्राकृत भाषा में गद्यबहुल आकर कथा-ग्रंथ है। इस ग्रंथ की कथा के उपक्रम का आधार तो हरिवंश अर्थात् यदुवंश में उत्पन्न होनेवाला वसुदेव दशार है जो संस्कृत पुराण महाभारत और हरिवंश में वर्णित वासुदेव कृष्ण का पिता है। परंतु गुणाढ्य की बृहत्कथा की तरह इसमें सैकड़ों ही अवांतर कथाएँ गुंफित कर दी गई हैं जिनमें प्रायः सभी जैन तीर्थंकरों के तथा अन्यान्य चक्रवर्ती आदि शलाका पुरुषों के एवं अनेक ऋषि, मुनि, विद्याधर, देव-देवी आदि के चरित्र भी वर्णित हैं। वसुदेवहिंडी की कथाएँ प्रायः संक्षेप में और साररूप में कही गई हैं। इन कथाओं में से कुछ को चुन-चुनकर पीछे के आचार्यों ने छोटे बड़े अनेक स्वतंत्र कथा-ग्रंथों की रचना की और उन संक्षिप्त कथाओं को और भी अधिक पल्लवित किया। वसुदेवहिंडी नामक ग्रंथ जो वर्त्तमान में उपलब्ध है उसकी संकलना संघदास क्षमाश्रमण नामक आचार्य ने की है जो विक्रम की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में हुए मालूम होते हैं।"

उपर्युक्त उद्धरण में मुनि जी ने जिस महत्त्वपूर्ण प्राचीन, पौराणिक कथा-ग्रंथ 'वसुदेवहिंडी' का निर्देश किया है उसी का संक्षिप्त परिचय यहाँ उपस्थित किया जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


'वसुदेवहिंडी' का अपर नाम 'वसुदेवचरित' है। इसमें पुरुषोत्तम कृष्ण के पिता वसुदेव की प्रणय-कथा की प्रधानता है। प्राकृत एवं गुजराती में 'हिंड' धातु का अर्थ 'चलना, फिरना, परिभ्रमण करना' है। प्रस्तुत ग्रंथ के अनुसार वसुदेव ने यौवनावस्था में गृह त्यागकर १०० ( २९ + ७१ = १०० ) वर्षों तक परिभ्रमण करते हुए अनेक मानव एवं विद्याधर कन्याओं से विवाह किया और विविध अनुभव प्राप्त किए थे। इस ग्रंथ में उन्हीं के वर्णन की मुख्यता होने से यह 'वसुदेवहिंडी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मूल ग्रंथकार द्वारा प्रदत्त नाम तो 'वसुदेवचरित' है, पर पीछे अपर नाम 'वसुदेवहिंडी' ही विशेष रूप से प्रसिद्ध हो गया।

प्रस्तुत ग्रंथ का उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रंथकारों ने बड़े आदर के साथ किया है। कई विद्वानों ने इसकी कथाओं पर स्वतंत्र ग्रंथ रचे हैं। उल्लेख करनेवाले सर्वप्रथम आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण हैं जिन्होंने 'विशेषावश्यक महाभाष्य' नामक विशिष्ट एवं विस्तृत ग्रंथ का निर्माण वि० सं० ६६६ ( शाके ५३१ ) में चैत्र शुक्ल १५, बुधवार को किया था। इनके 'विशेषणवती' नामक प्रकरण में 'वसुदेवचरित' का दो बार निर्देश है।

इसके पश्चात् वि० सं० ७३२ में 'नंदीचूर्णि' बनानेवाले जिनदासगणि के आवश्यक चूर्णि में श्री ऋषभदेव के चरित्र-निरूपण में वल्कलचीरी और प्रसन्नचंद्र के कथा-प्रसंग में प्रस्तुत ग्रंथ के सोल्लेख उद्धरण दिए हैं। इससे सातवीं-आठवीं शताब्दी में इसकी सुप्रसिद्धि होने का स्पष्ट पता चलता है।

जैन साहित्य में इस ग्रंथ के बहुत प्रसिद्ध होने पर भी बृहदाकार होने के कारण इसका पठन-पाठन सीमित ही रहा। इसके सुंदर और श्रमसाध्य संपादन का कार्य मुनि चतुरविजय जी एवं उनके विद्वान् शिष्य पुण्यविजय जी ने बीस वर्ष हुए प्रारंभ किया था और संघदासगणि-रचित प्रथम खंड श्री जैन आत्मानंद सभा से प्रकाशित हो चुका है। फिर भी प्राकृत भाषा में होने के कारण यह ग्रंथ सर्वजनसुलभ नहीं हो सका। अभी दो वर्ष हुए उक्त सभा ने ही प्रो० भोगीलाल साँडेसरा से गुजराती में इसका प्रामाणिक अनुवाद करा के प्रकाशित किया है जिसमें अनुवादक ने एक विद्वत्तापूर्ण उपोद्घात भी लिखकर ग्रंथ के महत्त्व को भली भाँति स्पष्ट किया है। उसी के आधार पर ग्रंथ का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वसुदेवहिंडी' का प्रथम खंड छः विभागों में विभक्त है—(१) कथा की उत्पत्ति, (२) पीठिका, (३) मुख, (४) प्रतिमुख, (५) शरीर और (६) उपसंहार। प्रथम तीन विभागों को तो कथा का प्रास्ताविक ही समझना चाहिए, यद्यपि प्रथम विभाग में तपश्चर्या के फलस्वरूप बत्तीस कन्याओं से विवाह कर सुख-भोगनेवाले धम्मिल्ल सार्थवाह की विस्तृत कथा दी गई है, जो विषयांतर सी लगती है।

चौथे अर्थात् प्रतिमुख नामक विभाग से ही मूल कथा का आरंभ समझना चाहिए। कथा के प्रारंभ का प्रसंग इस प्रकार है—पुरुषोत्तम कृष्ण के रुक्मिणी रानी से उत्पन्न सांबकुमार का विवाह भामा के पुत्र सुभानु के लिये एकत्र हुई १०८ कन्याओं से हो गया। तब प्रद्युम्न ने वसुदेव जी से कहा कि आपने तो सौ वर्षों तक भ्रमण करके विवाह किए, पर सांब को देखिए, उसे अनायास ही १०८ पत्नियों की प्राप्ति हो गई। यह सुनकर वसुदेव जी ने प्रद्युम्न से कहा कि सांब तो कुएँ के डुंडुभ के सदृश सहज-प्राप्त पत्नियों एवं भोग-विलास से संतुष्ट है। मैंने परि-भ्रमण कर जिन सुख-दुःखों का अनुभव किया वे किसी बिरले व्यक्ति को ही प्राप्त हुए होंगे। इसपर प्रद्युम्न को वसुदेव जी के भ्रमण-वृत्तांत सुनने की उत्कंठा हुई और तब वसुदेव जी ने वह संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया, जो ग्रंथ में वर्णित है।

वसुदेव जी की आत्मकथा का वास्तविक विस्तार तो पाँचवें विभाग से होता है। लंभक-संज्ञक अध्यायों का प्रारंभ भी यहीं से होता है। उपलब्ध प्रथम खंड अट्ठाईस लंभकों का है, जिनमें से मध्य के दो लंभक (१९,२०) प्राप्त नहीं है और अट्ठाईसवाँ अपूर्ण मिलता है। उसके आगे का 'उपसंहार' नामक छठा विभाग भी अनुपलब्ध है जिसकी खोज होना आवश्यक है। अनुपलब्ध लंभकों में एक का नाम 'प्रियदर्शना' लंभक होना चाहिए, क्योंकि अंतिम 'देवकी' लंभक में वसुदेव की पत्नियों के नाम दिए हैं जिनमें प्रियदर्शना का नाम है, किंतु प्राप्त लंभकों में उसकी प्राप्ति की कथा नहीं मिलती।

ग्रंथ में वसुदेव की प्रणय-कथा की प्रधानता होनेपर भी अवांतर रूप से प्रसंग-प्रसंग पर अनेक अन्य कथानक एवं जैन तीर्थंकरों, चक्रवर्त्तियों के चरित भी दिए गए हैं। पीठिका में पुरुषोत्तम कृष्ण, उनकी पटरानियों तथा सांब प्रद्युम्नादि पुत्रों का वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्राचीन जैनागमों में श्रीकृष्ण के संबंध में महत्त्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। परंतु आगमों के परवर्ती साहित्य के रूप में कृष्ण-चरित संबंधी सामग्री इसी ग्रंथ में प्राप्त होती है। कृष्ण के ऐतिहासिक जीवनचरित के लेखन में इससे बहुमूल्य सहायता मिल सकती है, क्योंकि परवर्ती ग्रंथों में बहुत सी कल्पना से उद्भावित बातें घुल-मिल गई हैं। इनकी प्रामाणिकता की जाँच प्राचीन साहित्य के आधार पर ही की जा सकती है। ग्रंथ का अंतिम अर्थात् अट्ठाईसवाँ 'देवकी' लंभक समग्र रूप में प्राप्त होने पर, संभव है, कृष्ण-जन्म संबंधी महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर भी नया प्रकाश पड़े। अनेक परवर्त्ती कथानकों का प्राचीन रूप इस ग्रंथ में प्राप्त होने के कारण इसका महत्त्व बहुत अधिक है।

अप्रकाशित मध्यम खंड—

'वसुदेवहिंडी' का प्रथम खंड संघदासगणि वाचक रचित है। वैसे तो वह ग्रंथ पूर्ण ही है, पर उसके अठारहवें 'प्रियंगु सुंदरी' लंभक के अनुसंधान में धर्मसेन गणि महत्तर नामक जैनाचार्य ने ७१ लंभकों और १७००० श्लोक-परिमाण वाले मध्यम खंड का निर्माण कर इसके साथ जोड़ दिया है। ग्रंथ की मध्यवर्त्ती कथा के अनुसंधान में रचने के कारण ही इसका नाम 'मध्यम खंड' रखा गया है। वसुदेव ने सौ वर्ष तक भ्रमण कर विवाह किए, यह बात तो प्रथम खंड (मूलग्रंथ) में लिखी है; पर सौ विवाह किए और सौ लंभकों का ग्रंथ बनाने का संघदास वाचक का उद्देश्य था, इसका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। अतः धर्मसेनगणि ने ग्रंथ (प्रथम खंड) के अंत में उपसंहार देख ग्रंथ का द्वितीय खंड रचने का तो अवकाश पाया नहीं, मध्यम खंड यह कहते हुए जोड़ दिया कि वसुदेव जी ने सौ वर्षों के पर्यटन में सौ विवाह किए थे, जिनमें से उनतीस का वर्णन तो पूर्व ग्रंथकार कर चुके हैं, अवशिष्ट इकहत्तर पत्नियों के विवाह-संबंध का वर्णन मैं कर रहा हूँ।

जैनेतर ग्रंथों से इस ग्रंथ का तुलनात्मक अध्ययन करने में सुभीता हो, इसलिये यहाँ प्रथम खंड में उल्लिखित वसुदेव की उनतीस पत्नियों के नाम तथा पुरुषोत्तम कृष्ण की पत्नियों एवं पुत्रों के नाम दिए जाते हैं।

लंभक-नाम—

(१) श्यामाविजया, (२) श्यामली, (३) गंधर्वदत्ता, (४) नीलयशा, (५) सोमश्री, (६) मित्रश्री, धनश्री, (७) कपिला, (८) पद्मा, (९) अश्वसेना, (१०) पुंड्रा, (११) रक्तवती, (१२) सोमश्री, (१३) वेगवती, (१४) मदनवेगा, (१५) वेगवती, (१६) बालचंद्रा, (१७) बंधुमती, (१८) प्रियसुंदरी, (१९) ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२०) × (२१) केतुमती, (२२) प्रभावती, (२३) भद्रमित्रा, (२४, २५) पद्मावती, (२६) लज्जितश्री, (२७) रोहिणी, (२८) देवकी।

कृष्ण की रानियाँ—

(१) सत्यभामा (पुत्र भानुकुमार), (२) पद्मावती, (३) गौरी, (४) गांधारी, (५) लक्ष्मणा, (६) सुसीमा, (७) जांबवती, (पुत्र सांबकुमार) (८) रुक्मिणी (पुत्र प्रद्युम्नकुमार)।

ग्रंथ के अनुवादक प्रो० भोगीलाल साँडेसरा ने अपने विस्तृत उपोद्घात में इस ग्रंथ के विविध महत्त्व की सांगोपांग चर्चा की है। बृहत्कथा से इसकी तुलना, इसकी भाषा, और इसमें प्राप्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक उल्लेखों की तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण विवेचना है। यहाँ केवल इसकी भाषा और शैली के विषय में उनके मंतव्य के कुछ अंश का (गुजराती से) अनुवाद प्रस्तुत किया जाता है—

केवल प्रथम खंड के विषय में कहा जाय तो भी भाषा की दृष्टि से 'वसुदेवहिंडी' जैन साहित्य का एक विरल ग्रंथ है। इतने प्राचीन काल में लिखा गया लगभग साढ़े दस हजार श्लोक-परिमाण का कथात्मक प्राकृत गद्य-ग्रंथ समस्त भारतीय साहित्य में अब तक कोई दूसरा नहीं मिला है। गद्य में रचे होने के कारण भाषा-विषयक अन्वेषण की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है।

वि० आठवीं शती में सूत्र-ग्रंथों पर रची गई चूर्णियों में जो कथाएँ हैं वे, कुछ को छोड़कर, साहित्यिक सौंदर्य की दृष्टि से नहीं लिखी गई हैं। मिताक्षरी शैली का प्रयोग होने के कारण उन्हें वे ही पाठक समझ सकते हैं जो उसके कथा-भाग से पूर्व-परिचित हैं। इसके विपरीत कथा-वर्णन की दृष्टि से 'वसुदेवहिंडी' के विस्तार और योजना की विपुलता प्राचीन जैन साहित्य में बेजोड़ है। लेखन-शैली संक्षिप्त अथवा शुष्क नहीं; उसमें जीवित भाषा की लाक्षणिक शक्ति से पुष्ट अत्यंत सरस चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। सामान्यतः उसकी भाषा सरल, रूढ़ एवं व्यावहारिक है। प्राकृत जब जन-समाज में बोली जाती रही होगी उस काल की लिखी होने के कारण, पिछले काल के साहित्यिक प्राकृत ग्रंथों की तुलना में, 'वसुदेवहिंडी' की भाषा अत्यंत स्वाभाविक जान पड़ती है। संवाद तो प्रायः एकदम बोलचाल की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भाषा में लिखे जान पड़ते हैं। ऐसा होते हुए प्रसंगानुसार अलंकारमय तथा समास-प्रचुर भाषा का भी प्रयोग मिलता है। यह प्रधानतः गद्य ग्रंथ हैं, परंतु बीच बीच में पद्य भी आए हैं।

'वसुदेवहिंडी' में प्रयुक्त कितने ही शब्द किसी भी कोश में नहीं मिलते। उसमें शब्दों के ऐसे प्राचीन रूप मिलते हैं जो पिछले काल के प्राकृत ग्रंथों में भी श्राम्य से ही दिखलाई पड़ते हैं।

इस ग्रंथ का सबसे अधिक महत्त्व यह है कि इससे गुणाढ्य की बृहत्कथा की शैली आदि का पता चलता है।

पुस्तकालय 11.07.33 गुरुकुल कांगड़ी ... हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भक्त अखा

[ श्री गंगाशंकर बलदेवशंकर पंड्या ]

ईसा की सत्रहवीं शती का पूर्वार्द्ध भारत के सांस्कृतिक इतिहास में एक विशेष स्थान रखता है। किसी भी प्रांत में देखिए, कोई न कोई कवि एक नवीन स्फूर्ति और नवीन प्रेरणा से प्रभावित होकर जनता के दृष्टिकोण को नए साँचे में ढाल रहा है। हिंदी-भाषाभाषी प्रांतों में तुलसी और सूर का अमर कवित्व समाज में प्रकाश फैलाता है, तो गुजरात में अखा, प्रेमानंद और शामल—ये तीन प्रसिद्ध कवि मिलकर एक नई विचारधारा प्रवाहित करते हैं।

गुजरात में अखा के पहले भी कवि हुए जिनकी कविता का आदि स्रोत ईश्वरानुभूति थी। परंतु नरसी मेहता और मीरा ने जिस मार्ग को अपनाया, अखा की दृष्टि में वही मार्ग प्रगतिशील समाज के लिये पर्याप्त न था। हिंदी साहित्य में सगुण भक्तों के पहले ज्ञानमार्गी कवि कबीर और नानक ने समाज के दोषों को दूर करने का प्रयास किया था। इस प्रयास का प्रसाद हमें उनकी कविता में यत्र-तत्र दृष्टिकोण होता है। गुजरात में ज्ञानमार्गी निराकार-भक्त अखा साकार-भक्त नरसी मेहता के बाद हमें दर्शन देते हैं। वहाँ जैन धर्म के कारण ज्ञान का मार्ग सर्वसुलभ हो चुका था। इसी कारण जैन आचार्यों के बाद सगुणोपासक मीरा और नरसी और इनके बाद निर्गुणोपासक अखा का आविर्भाव हम गुजरात में देखते हैं।

भक्त अखा का जन्म ऐसे समय में हुआ जब जनता का झुकाव, प्रांत और देश की समृद्धि के कारण, धीरे धीरे अनश्वर को छोड़ नश्वर की ओर हो रहा था। जनता की रुचि को सनातन सत्य की ओर मोड़ना एक महान् कार्य था। अखा के सदृश अनुभवपुष्ट असामान्य व्यक्तित्व ही इस कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता था।

अखा का काल ई० सन् १६१५ से १६७४ तक माना जाता है। सच्चे भक्त के नाते अखा ने अपने जीवन के विषय पर विशेष प्रकाश नहीं डाला। फिर भी यह निर्विवाद है कि कवि ने अहमदाबाद के सन्निकट जेतलपुर गाँव में एक सोनार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के घर जन्म लिया और सोलह वर्ष की अवस्था में अहमदाबाद में आकर डेरा डाला। बीस वर्ष की अवस्था में वे पितृविहीन हुए और कुछ समय बाद अपनी छोटी बहिन और अनंतर पत्नी को खोकर घर और संसार से विरक्त हो गए। इस काल को हम कवि का वानप्रस्थाश्रम कह सकते हैं, क्योंकि अब भी संसार-त्याग में उनका निश्चय दृढ़ नहीं हुआ था। एक पड़ोसिन को कवि ने धर्म-बहिन के रूप में स्वीकार किया; परंतु जब उसने भी भक्त पर अविश्वास किया, तब उन्हें सांसारिक संबंधों से पूर्ण रूप से घृणा हो गई। इसके बाद कवि का भ्रमण-काल आरंभ होता है।

युगधारा के अनुसार अखा को मथुरा-वृंदावन के प्रति आकर्षण हुआ। परंतु उनकी मानसिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वे मीरा के समान इन भक्तिक्षेत्रों में शांति लाभ कर सकते। शांकर अद्वैत मत के अनुयायी को भला मथुरा-वृंदावन का वातावरण कैसे अनुकूल लगता? अखा के गुरु-संबंधी अनुभव को उन्हीं के शब्दों में देखिए—

गुरु कर्या[1] में गोकुलनाथ, नुगरा[2] मन ने घाली नाथ।
मने मनावी सगुरु थयो[3], पण विचार नगुरा नो नगुरो रह्यो॥

परंतु गुरु की खोज में कवि को काशी-क्षेत्र में सफलता मिली। मणिकर्णिका घाट पर छिपे छिपे उन्होंने खरे वेदांती गुरु ब्रह्मानंद के उपदेशामृत का पान किया। फलस्वरूप ब्रह्मानंद से उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से गुरुदीक्षा पाई और उनके जीवन में गुरु, सखा और सहायक के रिक्त स्थान पर ब्रह्मानंद आ विराजे।

ज्ञानमार्गी के लिये गुरु एक साधन मात्र था, साध्य नहीं। अखा के गुरु ने उन्हें अपने में केंद्रीभूत न कर ईश्वरोन्मुख किया। यही बात कबीर के विषय में कही जा सकती है। रामानंद ने कबीर को 'चेताया', परंतु कबीर गुरु-गान करने के पश्चात् रामानंद के व्यक्तित्व से अभिभूत न हो निराकार परमेश्वर की ओर ही झुके। हाँ, ब्रह्मानंद के बिना अखा और रामानंद के बिना कबीर के जीवन में साथकता न आती। इसी लिये गुरु का साक्षात्कार इन दोनों के जीवन में एक विशेष स्थान रखता है।

गुरु से दीक्षा लेकर अखा गुजरात को लौट आए और विचारों में परिपक्वता आने पर उनके उपदेश कविता-रूप में प्रवाहित हुए। अखा की आठ रचनाएँ—

---

१—करिया, किया। २—निगुरा। ३—भयो, हुआ।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छप्पय, अखेगीता, चित्तविचारसंवाद, पंचीकरण, गुरुशिष्यसंवाद, अनुभवबिंदु, कैवल्यगीता और परमपदप्राप्ति—गुजराती में हैं। परंतु वे हिंदी की सार्वदेशिकता से प्रभावित हुए बिना न रह सके और उन्होंने दो ग्रंथरत्न—पंचदशीतात्पर्य और ब्रह्मलीला—हिंदी में लिखकर राष्ट्रभाषा का समादर किया।

गुजरात में वापस आकर अखा समाज में प्रविष्ट हो गए। उनकी कविता में विरक्ति के दृष्टिकोण के स्थान पर समाज में रहकर आत्मशुद्धि के प्रयास की भावना ही विशेष स्पष्ट है। उनकी काव्य-शैली इस बात की द्योतक है कि न तो अखा ने समाज का साथ छोड़ा और न समाज ने अखा का। इसी लिये वे समाज के सुधारक बन सके। गुजरात के दूसरे कवियों के टक्कर में अखा का विशिष्ट स्थान उनके विस्तृत सांसारिक अनुभव और उनकी तीक्ष्ण निरीक्षण-शक्ति पर आधारित है।

अखा ने कभी अपने आपको कवि कहने का दुःसाहस नहीं किया—

ज्ञानी नी[४] कविता न गणीश ;
किरण सूर्य ना[५] केम[६] वरणीश ?

कदाचित् अखा को हावभाव वर्णन करनेवाली दूषित काव्य-शैली पसंद न थी। शब्द ही अर्थ या भाव को अभिव्यक्त करने के साधन हैं। यदि कविपरंपरा के अनुयायी शृंगारी शब्दयोजना या शैली के मसाले से भक्तिभावरूपी स्वास्थ्यप्रद भोजन को दूषित करें तो अखा जैसे व्यक्ति को यह कैसे रुचिकर हो सकता था ? संस्कृत भाषा के प्रति भी कवि की उदासीनता का यह एक कारण हो सकता है। संस्कृत साधारण जनता के संपर्क से तो दूर थी ही, मध्यकाल में उसके आश्रय में जिस शृंगारप्रधान रचना का पोषण हुआ, पीछे उसने एक ऐसा विकृत रूप धारण किया जो जनता के मानसिक स्वास्थ्य में बाधक हुआ। भारत के अन्य प्रांतों में भी भक्तिकाल के कवि संभवतः इसी कारण जनभाषा का आश्रय लेकर चले। कबीरदास को ही लीजिए—

संस्किरत है कूपजल, भाषा बहता नीर।
भाषा सतगुरु सहित है, सतमत सरल गंभीर ॥

इसी प्रकार की अखा की भी उक्ति है—

संस्कृत बोले ते शुँ[७] थयुँ[८] ?
काईं प्राकृत माँ थी नाशी गयुँ ?

४—की। ५—का। ६—कैसे। ७—क्या। ८—भयो, हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इस तीव्र कटाक्ष को संस्कृत के भक्त अनुचित कहें, परंतु इसका कारण स्पष्ट है। हिंदी साहित्य के कठिन काव्य के "प्रेत" कवि केशवदास भी, जिनके घर में शुक-सारिकाएँ तक संस्कृत बोलती थीं, 'भाषा' में लिखने को बाध्य हुए। जनता तक अपनी बात पहुँचाने का इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही न था। बौद्ध साहित्य के पूर्वकाल का प्राकृत और पाली के प्रति मोह भी जनता की अभिरुचि और कवियों के जनता के निकट पहुँचने के एक स्तुत्य प्रयास का ही प्रतीक है।

अखा की कृतियों की साहित्यिक दृष्टि से परीक्षा करें तो वह शांतरसप्रधान है। कवि की शैली में समाज की कुरीतियों का उपहास दृष्टिगत होता है। कहा जाता है कि अखा गुजराती भाषा में व्यंग्य-काव्य के आद्य लेखक हैं और हिंदी कवि कबीरदास के समान इन्होंने समाज के अंधविश्वासों की अनूठे ढंग से खिल्ली उड़ाई है। पहले तो अखा से निज के प्रयासों का ही उपहास लीजिए—

तिलक करतां त्रेपन वह्यां[९]; जपमाला ना नाकां गयां।
तीरथ फरी फरी[१०] थाक्या चर्ण; तोअे न पहुँच्या हरि ने शर्ण॥

साथ ही कवि ने कबीर के समान, 'पोथी पढ़-पढ़कर मरनेवाले जग' के किताबी कीड़ों की तीव्र शब्दों में आलोचना की है—

ओछुं पात्र ने अदकुं भण्यो[११], वढ़कणी वहुए दीकरो[१२] जण्यो।
मारकणो साँड चोमासुं महाल्यो, करडकणा कुतरा ने हड़कवा हाल्यो।
मरकट ने वली मदिरा पीए, अखा ए थी सऊ को बीए[१३]॥

अर्थात् नीचवृत्तिवाले 'पंडित' से सभी को सावधान रहना चाहिए। लड़नेवाली स्त्री का मान क्या पुत्र-जन्म से बढ़ जायगा? मरकहे साँड़ को बरसात की हरी घास खिलाने से क्या लाभ? कटहे कुत्ते की पागल होने पर और बंदर की उसे मदिरा पिलाने पर जैसी अवस्था होगी, वैसी ही पढ़े-लिखे दुर्वृत्त मनुष्य की भी समझनी चाहिए। इस प्रकार ज्ञानमार्गी कवि ने स्पष्ट शब्दों में ढोंगियों और बकवादियों से जनता को सचेत किया है। अखा के समय में भले ही इसकी आवश्यकता विशेष रूप से रही हो, किंतु वर्तमान काल में हमारी उदार दृष्टि इन कठोर शब्दों में अनावश्यक तीव्र प्रहार ही देखती है। पर एक निराकार-भक्त के लिये सांसारिक पचड़ों का आज भी यही नग्न रूप है।

---

९—तीन पन बिताए। १०—फिरि फिरि। ११—पढ़्यो। १२—बालक। १३—डरे, डरता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त अखा के शब्दों की तीक्ष्णता का प्रधान कारण उनका आत्मविश्वास था। उनसे १५० वर्ष पहले इसी मार्ग पर गुजरात में मांडण कवि भी चल चुके थे। मांडण में शब्दचातुर्य और कलानिपुणता का अभाव नहीं। तब भी उनकी अखा जैसी प्रसिद्धि न हो सकी। विषय एक होते हुए भी अखा के कहने का ढंग अनूठा था। बोलचाल की भाषा में परिचित उपमाओं और प्रचलित कहावतों का उपयोग करके कटाक्ष-चित्र खींचने में अखा को मांडण से अधिक सफलता मिली। राजनीति के क्षेत्र में एक ओर पुस्तकज्ञानी तत्त्ववेत्ता और दूसरी ओर आग से खेलनेवाले अनुभवधनी में जो अंतर है, वही इन दो कवियों की कविताओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कबीरदास के समान इन दोनों भक्तों ने रूढ़िमार्ग की कटु आलोचना की है, परंतु इन दोनों में से अखा कबीर के अधिक निकट जान पड़ते हैं।

अखा की रचना में सामयिक परिस्थिति की विश्लेषणात्मक टीका के साथ साथ एक प्रकार की उदासीनता की मानसिक प्रतिक्रिया का चित्र खींचा हुआ मिलता है। गुजरात के वैष्णव संप्रदाय पर कवि की यह कठोर उक्ति है—

शुं थयुं नाम वैष्णव धरे,
परसाद टाणे पत्रावलां भरे ?

इस कथन से भक्त का दृष्टिकोण हमें स्पष्ट रूप से विदित हो जाता है। तब भी, यह कहना कि अखा वैष्णव संप्रदाय के कट्टर विरोधी थे, उनका अपमान करना है। वैष्णव संप्रदाय का बाह्य आडंबर उन्हें पसंद न हो, परंतु उनका हृदय सच्चे तन्मय भक्त की भक्ति को पहचान सकता था। इस भक्ति का साक्षात्कार कवि के शब्दों में ही व्यक्त होता है—

गद्‌गद कंठे गाते थके रोमांचित होये गात्र;
हर्ष आँसु बहु हेत हृदय प्रेम केरूं ते पात्र।
खातो पीतो बोलतो देखतो ते सगले राम;
बेध्युं, मन रहे तेहनुं शिथिल संसारी काम॥

ये शब्द हमें अखा को रामाश्रयी शाखा के श्रेष्ठ भक्त कवियों में विशिष्ट स्थान देने को बाध्य करते हैं। जहाँ कवि को कटु होने की आवश्यकता जान पड़ी वहाँ उसने कठोर शब्दों का प्रयोग किया। परंतु परमेश्वर के सामने उसका हृदय मुग्ध होकर नाचने लगता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानी विहारी गोपी जशा, तेज[14] ज्ञानी जेने[15] गोपी नी दशा ।
गोपी भूली घर ने[16] बार, गोपी भूली कुटुंब परिवार ।
पोतानी[17] देह पण भूली गई, प्रसन्न अखा कामनी कुलवंत थई[18] ।

कदाचित् चुस्त से चुस्त वैष्णव इस प्रकार के प्रेमोन्माद का ऐसा सजीव वर्णन न कर सकता । अखा जैसे विशुद्ध ज्ञानी गोपी-भक्ति के अनुयायी हों; यह आश्चर्य की बात नहीं; कारण, भक्तों की संसार के प्रति उदासीनता के पीछे भगवत्प्रेम की भावुकता का एक सागर लहराता रहता है । भक्त के जीवन की इसी में सार्थकता और महत्ता है, जैसा कबीर की अनूठी उपमा से व्यक्त होता है—

सुमिरन की सुधि यों करे, ज्यों गागर पनिहार ।
हाले डोले सुरति में, कहे कबीर विचार ॥

अखा ने वेदांती मार्ग क्यों अपनाया, इसका उत्तर उन्हीं के शब्दों में लीजिए—

पड़े नहीं जे पृथ्वी सुवे, कने नहीं ते शुं खुवे ॥
टाढुं ऊँनुँ तोश्रे आकाश, प्राणी मां नहिं माखण छाश ॥
ब्रह्मज्ञान एवुं छे[19] अखा, ज्याँ नहिं स्वामी सेवक सखा ॥

कवि ने यहाँ निराकार-भक्ति की अनुभवगम्य श्रेष्ठता स्पष्ट शब्दों में व्यक्त की है । कवि का तात्पर्य स्पष्ट है—साकार-भक्ति में विकृति हो सकती है, परंतु निराकार-भक्ति का मार्ग शुद्ध है । यह दृष्टिकोण गुजराती साहित्य में एक नवीन दिशा का निर्देशक है । कवि ने मीरा और नरसी का चर्वित-चर्वण करके संतोष-लाभ नहीं किया । अपने को गोपीरूप मानकर कृष्ण की उपासना करने के स्थान पर भक्त अखा ने यथार्थ-दर्शन में अधिक संतोष पाया है । इस यथार्थ-दर्शन के भीतर द्वित्व नहीं; कारण, अखा का यथार्थ-दर्शन आत्म-दर्शन का रूप ले लेता है और यहाँ वे उपनिषत्कारों के बहुत निकट आ जाते हैं ।

अखा की उत्कृष्ट भक्ति का दूसरा पक्ष हम उनके—और अपने भी समय की छुआछूत पर प्रकट किए गए उद्गारों में देख सकते हैं । प्राचीन भक्तों के प्रति भी कवि के आदर-वचन हमारे कानों में गूँज उठते हैं—

शबरी शुं संस्कृत भणी हती[20] भाई ;
क्याँ वेद वाच्याँ कर्माबाई ।

---

१४—वही । १५—जिसको । १६—और । १७—[illegible] । १८—भई ।
१९—ऐसा है । २०—पढ़ी थी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याध ते शुं भण्यो हतो वेद ;
गणिका शुं भणी हती भेद ।
वली श्वपचनी समझो रीत ;
अखा हरि तेना जेनी[२१] साँची प्रीति ॥

गुजराती भाषा माधुर्यगुण-परिपूर्ण मानी गई है। परंतु अखा की वाणी में हमें इस भाषा की शक्ति का प्रथम परिचय होता है। व्यंग्यात्मक हास्य के साथ ही साथ अकाट्य तर्क और तलदर्शी दार्शनिकता का सुयोग हमें आश्चर्यान्वित कर देता है। एक और बात भी हमें ध्यान में रखनी चाहिए—अखा ने कवियशःप्रार्थी होकर कवि बनने की चेष्टा नहीं की, अपने हृदय की वाणी को व्यक्त करने के लिये उन्हें कवि बनना पड़ा। इस प्रक्रिया में उनकी पुरानी परिपाटी में हमें जो मौलिकता मिलती है, वही उनकी महान् काव्य-सिद्धि है।

इतना सब होते हुए भी यदि हम अखो को "गुजरात का अक्षयरस" और "संत-संप्रदाय की विभूति" मानते हैं तो वह उनकी वाणी के माधुर्य के कारण ही। अखा चाहे अपने को भक्त या ज्ञानी कहकर ही संतोष मान लें, परंतु यथार्थ में हमारे हृदय का स्पर्श तो उन्होंने कवि बनकर ही किया है और वह भी शस्य-श्यामला गुर्जरभूमि के मधुर ( माधुर्य-गुणयुक्त ) कवि के रूप में--

जेम वर्षा ऋतु जाय शरद ऋतु रूड़ी दीसे ;
दामिनी दोड़ी पलाय वाय मन मलवा हीसे ।
चहुँ दिशि चमके चंद द्वंद बहु मननो भागे ;
तेम भागे भवभीति कांति जेम द्वितीया आगे ॥
विमल वपु होय वारि, चतुर लिंग देखी बहे ।
चिदाकाश चिन्मय अखा, ध्याता ध्येय समरस रहे ॥

ऋतु-वर्णन के साथ साथ कवि ने ब्रह्म-साक्षात्कार की अवस्था कितने मोहक शब्दों में प्रकट की है ? काव्यमयी भाषा में सत्य का दर्शन कराना—यही तो कवि का कार्य है। साथ ही भक्तिकाल के कवियों की विशिष्टता तत्त्वज्ञान के सूत्रों को काव्य के रंग में रँगकर दर्शनीय बनाने में है। सचमुच भक्त अखा गुजरात में ही नहीं, अपितु भारतवर्ष के कवियों और भक्तों में एक विशेष स्थान रखते हैं।

---

२१—उसका, जिसकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वैदेहीपुत्र अजातशत्रु और उसकी कूटनीति

[ श्री रत्नशंकर प्रसाद ]

शैशुनाक वंश के प्रतापी राजा बिंबिसार की लिच्छवि रानी से ( जिसका नाम कूणिका[1] और चेल्लना[2] भी था ) उत्पन्न कुमार अजातशत्रु मगधराज श्रेणिक बिंबिसार का उत्तराधिकारी हुआ। बौद्ध साहित्य के दीघनिकाय प्रभृति ग्रंथों में कहीं कहीं अजातशत्रु के साथ 'वैदेहीपुत्र' विशेषण लगा मिलता है ( वैदेहीपुत्तो अजातसत्तु )। इस विशेषण के पीछे मगध-लिच्छवि संबंध का पूरा इतिहास है।

प्राग्बौद्ध काल के दो राज्य विदेह और लिच्छवि बुद्ध के पूर्व ही एक हो चुके थे। यह संलयन विदेह में हुई राज्यक्रांति के परिणाम स्वरूप हुआ जिसमें बलात्कार के अभियोग में राजा को प्राणदंड[3] देकर विदेहों ने जनक-परंपरा का अंत कर दिया। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार अंतिम विदेह राजा ( जनक ) कराल तथा विष्णुपुराण[4] के अनुसार अंतिम जनक कृत थे। अस्तु, विदेह और लिच्छवि एकतंत्र हो गए। यह संयोग किंवा संलयन ऐसा हुआ जिसमें विदेहों की स्थिति कुछ गौण थी। यह कहना अधिक उचित होगा कि स्वेच्छाचारी राजतंत्र से मुक्ति पाकर विदेहों ने अपने को लिच्छवियों में विलीन कर दिया। जैन ग्रंथ निरयावली सूत्र के उल्लेखानुसार वैशाली के लिच्छविराज चेटक की भगिनी क्षत्रियाणी त्रिशला[5] ( विदेहदत्ता, प्रियकारिणी ) तीर्थंकर महावीर की माता तथा चेटक की पुत्री चेल्लना मगधराज बिंबसार की रानी थी।[6] महावीर लिच्छवियों

---

१—मौर्य साम्राज्य का इतिहास, पृ० ७२; परखम मूर्ति के विषय में श्री जायसवाल की स्थापना, जर्नल ऑव बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, भाग ५ पृ० ५५० तथा भाग ६ पृ० १७३; कथाकोष।

२—निरयावली सूत्र। ३—करालश्च वैदेहः, कौ० अर्थ० १।७

४—कृतौ संतिष्ठतेयं जनकवंशः, ४।५।१३

५—जैकोबी, 'जैनसूत्राज़', एस० बी० ई० वॉल्यूम २२ पृ० १६३

६—वही, भूमिका, पृ० १३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ज्ञातृ-शाखा में थे। कुछ अर्वाचीन विद्वान् वर्तमान जैथरिया भूमिहारों को उसी ज्ञातृकुल का अवतंस मानते हैं। अब भी जैथरियों का उक्त प्रदेश में प्रामुख्य है।

लिच्छवि राजधानी वैशाली के पार्श्ववर्ती नगर कुंडग्राम या कुंडपुर[७] तथा वाणिज्यग्राम और उससे पूर्वोत्तर में स्थित कोल्लाग[८] ज्ञातृबहुल थे। इन स्थानों में चैत्य-पूजा विशेष रूप से होती थी। तीर्थंकर महावीर कोल्लाग-निवासी थे।[९] कोल्लाग के उपकंठ पर स्थित द्विपलाश चैत्य विशिष्ट रूप से उल्लेख्य है, जो 'नायसंडे उज्जाने' (ज्ञातृखंडे उद्याने) अवस्थित था। अवश्य ही यह स्थल व्रात्य-बीज कहा जा सकता है, जहाँ के निवासी अहिंसक अमांसभोजी जीवन व्यतीत करते हुए चैत्योपासना में प्रवृत्त थे।[१०]

बौद्ध वाङ्मय में प्राप्त उल्लेखों द्वारा लक्षित होता है कि बिंबिसार युद्धेच्छु शासक नहीं था। अन्य राजाओं के साथ उसका भाव सदा मैत्रीपूर्ण ही रहा। उसने अंग विजय किया, पर वह एक ऐसा अपवाद था जैसे अशोक द्वारा कलिंग-विजय। अंग-विजय[११] को छोड़ उसे जीवन में कोई ऐसा युद्ध नहीं करना पड़ा जिसमें मगध की प्रतिष्ठा अथवा उसके जय-पराजय का प्रश्न निहित होता।[११] महावग्ग इसके लिये भी एक कारण देता है। बिंबिसार के पिता भातिय (दीपवंश) को अंगराज ने हराया था। बिंबिसार ने, जो 'महावंश' के अनुसार अपने पिता के द्वारा पंद्रह वर्ष की अवस्था में ही अभिषिक्त हुआ था, केवल पिता के पराजय के प्रतिकार स्वरूप अंग विजय किया; शेष जीवन उसने अविग्रह की स्थिति में बिताया। श्री भांडारकर के स्थापनानुसार बिंबिसार ने वज्जियों पर भी चढ़ाई की थी, जिसके उपरांत उसने लिच्छवि रानी से परिणय किया (कारमाइकल लेक्चर्स, सन् १९१८)। किंतु परिस्थितियाँ कुछ और संकेत करती हैं।

---

७--बसाढ़ के निकट वर्तमान वसुकुंड, कैंब्रिज हिस्ट्री ऑव इंडिया, जिल्द १, पृ० १५७।

८--डा० हार्नली, उवासगदसाओ, जिल्द २, पृ० ४ पादटिप्पणी।

९--मज्झिमनिकाय के सामगाम सुत्त के अनुसार वे नालंदावासी थे--म० नि० अ० क० ४४१, पादटिप्पणी।

१०--जै० सू० भाग २, एस० बी० ई० वॉल्यूम ६५, पृ० ४१६

११--A death-struggle was going on between Magadh and Champa.--रिज़ डैविड्स, बुद्धिस्ट इंडिया, पृ० २६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग राज्य गंगा के उत्तर और दक्षिण दोनों ओर था जिसके उत्तरी भाग की संज्ञा बौद्धकाल में अगुत्तराप ( अंग + उत्तर + आप ) थी, जो निश्चय ही कौशिकी-सदानीरा के मध्य में होने से उपनिषत्कालीन विदेह राज्य में था, जैसा बृहद् विष्णुपुराण में आए 'कौशिकीं तु समारभ्य···मिथिला नाम नगरी' से भी स्पष्ट है। जब मगध ने अंग ( चंपा ) विजय किया तो स्वाभाविक था कि लिच्छवि उसे प्राकृतिक सीमा का अतिक्रमण कर गंगा के उत्तर में धनधान्यपूर्ण अगुत्तराप की ओर बढ़ने से रोकते और विदेह की प्राचीन भूमि ( अगुत्तराप ) को पुनः लेने की चेष्टा करते जो उनके हाथों से निकल गई थी। किंतु जब बिंबिसार ने चंपा को विजय कर लिया तो अंग के गंगोत्तरीय प्रदेश अगुत्तराप को क्यों छोड़ता, जिसके केवल आपण नामक निगम में ही बीस सहस्र दूकानें थीं।[१२] अवश्य बिंबिसार को अंग-विजय के परिणामस्वरूप लिच्छवियुद्ध करना पड़ा, जिसमें लिच्छवियों को अगुत्तराप पर मगध का अधिकार स्वीकार करते हुए कन्योपायन देकर संधि करनी पड़ी। युद्ध का और कोई कारण नहीं जान पड़ता। अस्तु, उदीयमान मगध के राजा बिंबिसार को प्रबल और प्रतिष्ठित लिच्छवियों से कन्योपायन पाकर उसी प्रकार गर्व का अनुभव हुआ होगा जिस प्रकार शताब्दियों बाद गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त को अपने को लिच्छवि-दौहित्र कहलाने में; और इसी श्रैष्ठ्य किंवा गर्व का द्योतन अजातशत्रु कुणीक के 'वैदेहीपुत्र' विशेषण में भी निहित है। यह विशेषण न लगाने से बृहदारण्यक के काश्य अजातशत्रु से भी भ्रम संभव है।[१३]

बिंबिसार ने प्रात्यंतिक शक्तियों से वैवाहिक संबंध स्थापित कर अविग्रह की स्थिति को दृढ़ किया। पश्चिम में कोशलनरेश महाकोशल की पुत्री तथा तत्कालीन कोशल-नृप प्रसेनजित की भगिनी वासवी या कोसला और मद्रराज की पुत्री क्षेमा से तथा उत्तर में लिच्छवि राजा चेटक की पुत्री कूणिका या चेल्लना से विवाह कर उसने उत्तरापथ की दो महान् शक्तियों से ऋजु संबंध बनाया। पूर्व में अंग मगध के अंगीभूत हो चुका था। कलिंग का कोई महत्त्व न था। यद्यपि कथासरित्सागर में सोमदेव ने कलिंगराज कलिंगदत्त और उसकी पुत्री कलिंगसेना का वर्णन किया है, पर तात्कालीन साहित्य में कलिंग को कोई महत्त्व नहीं प्राप्त है। इस प्रकार परोक्ष में की गई इन संधियों द्वारा आक्रमण-भय से रहित मगध के लिये वह उन्नति का

---

१२—मज्झिमनिकाय पोतलिय सुत्तंत ( अट्ठकथा )

१३—सहोवाचाजातशत्रुं काश्यं ब्रह्म ते ब्रवाणीति—बृ० उप०, ३।२।१


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथ बना चुका था। आगे आनेवाले समय की राजनीति में भी इन विवाहों का महत्त्व क्रियाशील रहा। बौद्ध साहित्य में बिंबिसार की रानियों में से केवल क्षेमा और कोसला का उल्लेख है। वासवी कोसला का मूल नाम था। यह तिब्बती दुलवा में प्राप्त है और तिब्बती साहित्य के आधार पर रॉकहिल द्वारा लिखित 'लाइफ़ ऑव बुद्ध' (पृ० ६३, ६४) में उल्लिखित है। कोसला नाम का संबंध कोशल राज्य और वासवी के पिता महाकोशल से ही मानना चाहिए। जिस प्रकार कोशलराज की कन्या वासवी 'कोसला' नाम से प्रतिष्ठित थी, निस्संदेह उसी प्रकार विदेह और लिच्छवियों के संयुक्त राज्य की कन्या कूणिका या चेल्लना 'वैदेही' नाम से संबोधित होती थी। वासवी से कोई पुत्र न था (बौद्ध साहित्य में अजातशत्रु को कोसला का ही पुत्र कहा है)। कूणिका से अजातशत्रु उत्पन्न हुआ; इसी से उसका नाम कुणीक हुआ, जैसे ब्राह्मणी रूपसारी से उत्पन्न बुद्ध के अग्रश्रावक उपतिष्य का सारिपुत्र।

तात्कालीन बौद्ध साहित्य में अजातशत्रु कुणीक को अविकल रूप से 'वैदेहीपुत्र' कहा गया है, किंतु बाद की रची अट्ठकथाओं में तथ्य उलट दिया गया और 'वैदेहीपुत्र' का अर्थ करते हुए शास्त्रीय कर्षणा द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई कि कुणीक महाकोशल की पुत्री का पुत्र था, न कि लिच्छवि रानी का; यही नहीं अपितु यह भी कि बिंबिसार के कोई लिच्छवि रानी ही न थी। अट्ठकथा समझाती है कि जिस अर्थ में आनंद (जो शाक्य थे) को 'विदेह मुनि' कहा गया है उसी अर्थ में कोसला का नाम 'वैदेही' था। वेद (=ज्ञान) का जो ईहन (=प्रयत्न) करे वह वैदेह।[१४] इसे ठीक मानने की रुचि संभव थी, पर तत्कालीन वाङ्मय में न होकर इसका परवर्ती बौद्ध साहित्य में होना संदेहजनक है। इस प्रकार तो इसकी और भी व्याख्याएँ हो सकती हैं। तैत्तिरीय संहिता के भाष्य में वैदेही का अर्थ 'विशिष्ट देह संबंधिनी' आया है।[१५] यही क्यों, कौटिल्य के 'वाणिजको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो वैदेहकव्यंजकः'[१६] से तो अजातशत्रु की माता को वणिक्पुत्री भी बनाया जा सकता है! निश्चय ही तीर्थंकर महावीर की रक्तसंबंधिनी लिच्छवि राजकन्या के मगध राजकुल में आने के तथ्य को उच्छिन्न कर शाब्दिक भ्रमजाल द्वारा सत्य को बाँधने

१४—दीघ० (महाबोधि सं०) पृ० १७, पादटिप्पणी।

१५—वैदिक इंडेक्स, जिल्द २, पृ० २९८

१६—अ० शा० १।११।१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा परवर्ती प्रतिवादिभयंकर बौद्धाचार्यों ने की, और उस समय की जब कि बौद्ध-संघ में वज्जीपुत्तकों (वैशालिक भिक्षुओं) का विद्रोह प्रबल हो गया था और उन्हें यत्नपूर्वक अलग किया जा रहा था। श्री भांडारकर के मौलिक स्थापनानुसार, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, बिंबिसार का लिच्छवि कुमारी से विवाह अवश्य हुआ था, और वह मगध-लिच्छवि युद्ध के परिणाम-स्वरूप हुआ था।[१७] श्री विमलचरण ला ने इसका खंडन किया है परंतु अभय राजकुमार की कथा के आधार पर बिंबिसार-लिच्छवि युद्ध का होना वे भी स्वीकार करते हैं।[१८] अस्तु, अजातशत्रु के वैदेहीपुत्र होने में कोई संदेह नहीं।

अजातशत्रु की कूटनीतिज्ञता के परिचय के लिये तत्कालीन राजनीतिक कलह के साथ साथ चलनेवाले सांप्रदायिक कूटचक्र को भी जानना आवश्यक है, जो आगे की पंक्तियों से क्रमशः स्पष्ट होगा। ऊपर कहा जा चुका है कि लिच्छवि रानी कूणिका तीर्थंकर की रक्तसंबंधिनी थी; अतः उसमें जैन भावना और निर्ग्रंथवाद के प्रति सहानुभूति स्वाभाविकी थी।[१९] इधर वासवी तथा खेमा पर बौद्ध श्रमणवाद की छाया स्पष्ट थी। वासवी का, पति के साथ पितृकुल भी तथागत में श्रद्धावान् था और खेमा को तो बुद्ध ने महाप्रज्ञाओं में प्रधान माना था।[२०] इस प्रकार बिंबिसार के कुल में दो परस्पर विरोधी तत्त्वोंवाली धाराएँ वर्तमान थीं। वैदेहीपुत्र अजातशत्रु कुणीक में लिच्छवि रक्त तो था ही, उसमें अबौद्ध किंवा बुद्धविरोधी भावना भी थी, भले ही राजनीति की दृष्टि से आवश्यक मात्रा में ही रही हो। बौद्ध साहित्य में देवदत्त-कुणीक अभिसंधि द्वारा तीन बार बुद्ध-हत्या का उपक्रम भी दर्शित है।[२१] उसमें कुणीक का चित्रण सदैव अधार्मिक और पापेच्छु राजा के रूप में हुआ, यहाँ तक कि उसे पितृघात का भी दोषी ठहराया गया है। बौद्ध ग्रंथों के कतिपय स्थलों पर आए विवरणों द्वारा ज्ञात होता है कि मल्लों के निगम अनूपिया में आकर प्रव्रजित शाक्य देवदत्त आयुपर्यंत बुद्ध से अविग्रह की स्थिति में रहा और कुणीक उसका सत्कार

---

१७—कारमाइकल लेक्चर्स, १९१८, पृ० ७४

१८—'सम क्षत्रिय ट्राइब्ज़ ऑव एंशंट इंडिया', पृ० १०६-११०

१९—ना० प्र० पत्रिका, भाग १० अंक ४, पृ० ५८६

२०—एतदग्गवग्ग, बु० च०, ४७१

२१—विनयपिटक चुल्लवग्ग संघभेद स्कंधक, ४८४-८५, ८६-८७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता था।[२२] देवदत्त भिक्षु-संघ पर अधिकार करना चाहता था और अपना यह मंतव्य उसने बुद्ध पर प्रकट भी किया था।[२३] श्रामण्यफलसूत्र और महापरिनिर्वाण-सूत्र में अजात का बुद्ध के प्रति आकर्षण लक्षित है, पर बौद्ध धर्म से वह अपने विचारों का कभी हार्दिक समन्वय नहीं करा सका।[२४] परंतु इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें धर्मजिज्ञासा या पुण्येच्छा का अभाव था। उसमें पुण्येच्छा थी और स्वाभाविकी थी, इसका द्योतन वही श्रामण्यफलसूत्र करता है जो अंत में उसे मलिनहृदय और पापात्मा घोषित करता है। हाँ, उसकी महत्त्वाकांक्षा सदैव अपराजित रही। एक वाक्य में, उसके हृदय पर बुद्धि का अंकुश प्रबल रहा। श्रामण्यफलसूत्र में अजातशत्रु शारदीय पूर्णिमा की रात्रि में प्रासाद के ऊपरी तल पर बैठी अपनी परिषद् से कहता है—'अहो, कैसी रमणीय कौमुदी है...किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्संग करूँ जो हमारे चित्त को प्रसन्न करे।' अमात्यों और पार्षदों ने एक-एक कर सभी तत्कालीन मताचार्यों की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहा। पूर्ण काश्यप के अक्रियावाद से वेलट्ठिपुत्त के अनिश्चिततावाद तक की चर्चा हुई, पर उसे कोई पक्ष न रुचा। अवश्य ही वह इन सभी वादों से परिचित रहा होगा, इसकी पुष्टि भी उसी सूत्र से होती है। जीवक (कौमारभृत्य) के श्रमण गौतम की ओर संकेत करने पर वह बुद्ध के दर्शन को गया और उनसे सभी मताचार्यों[२५] के वाद बताए।[२६] दीघनिकाय का महापरिनिर्वाण सूत्र धर्मों के प्रति कुणीक के सद्भाव के प्रमाण में एक और कड़ी जोड़ते हुए सूचित करता है कि बुद्ध के निर्वाण के बाद उनकी पवित्र धातु (अस्थियाँ) ले जाकर उसने सत्कारपूर्वक उनपर स्तूप निर्माण किया। अट्ठकथा तो उसका पूरा विवरण देते हुए यह भी बताती है कि कितने सत्कारपूर्वक अस्थियाँ कुशीनगर (कुसीनारा, वर्तमान कसया) से राजगृह ले जाई गईं और उनपर स्तूप-निर्माण हुआ।[२७] किंतु इन सब कार्यों से उसकी लोकसंग्रहपरक धर्मचिकीर्षा की ही भावना सिद्ध होती है। उसका त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म, संघ) के प्रति सम्यक् आत्मसमर्पण का भाव तत्कालीन साहित्य में प्राप्त नहीं। बुद्ध-मुख से श्रामण्यफलसूत्र का उपदेश पाने पर भी बौद्ध श्रमणवाद में

---

२२—विनय, ४८०
२३—वही, ४८२
२४—दीघ श्रामण्यफलसूत्र।
२५—दिव्यावदान, १२।१४।१४४
२६—दीघ, पृ० १६
२७—वही, पृ० १५१, पा० टि०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी आस्था नहीं हुई। वस्तुतः कुणीक की आन्वीक्षिकी सिद्धियों पर बौद्ध धर्म भी खरा न उतरा।[२८]

अस्तु। ऊपर दिए विश्लेषणों से स्पष्ट होता है, और आगे और भी स्पष्ट होगा कि मातृपक्षीय लिच्छवि रक्तवाले कुणीक की त्रिरत्न के प्रति विशिष्ट आस्था नहीं थी। फिर भी उसने नीति की दृष्टि से यथावसर बुद्ध और उनके संघ का सत्कार किया और आवश्यकतानुसार बुद्धद्रोही देवदत्त को भी प्रश्रय दिया। बौद्ध पिता से राज्य लेने के समय उसने देवदत्त की ओर विशेष अभिरुचि दिखाई और उस समय उसने मातृकुल के ज्ञातृविशिष्ट वैशालिक अभिमत, मगध की अबौद्ध जनता[२९] तथा बुद्धद्रोही देवदत्त और उसके समुदाय ( वह ५०० भिक्षुओं को लेकर संघ से अलग हुआ था ) को अपनी ओर संग्रथित कर एक महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न किया। बुद्ध-द्रोही देवदत्त से कुणीक की अभिसंधि, कुणीक द्वारा उसके सम्मान[३०] और देवदत्त द्वारा संघ-भेद[३१] किंवा बुद्ध-देवदत्त मतभेद के कारणों को सम्मुख रखने पर ऐसी ध्वनि निकलती है कि कुणीक ने देवदत्त की सहायता से एक बार ऐसा प्रयत्न भी

---

२८—वह जब बुद्ध के पास से चला आया तो बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा कि इस राजा के संस्कार अच्छे न थे, अन्यथा उसे यहीं धर्म-चक्षु उत्पन्न हो जाता। परंतु यह उनके कथन और विचार का अपना ढंग मात्र था। उनके महापुरुषोचित चरित्र में त्याग और निर्लिप्ति के साथ एकराट् चक्रवर्तित्व और अपनेपन की भावना का अद्भुत मिश्रण मिलता है जो भारत के किसी अन्य महापुरुष में दुर्लभ है। निर्वाण के पूर्व आनंद पूछते हैं—"भंते तथागत के शरीर को हम कैसे करेंगे ?" (अंत्येष्टि आदि)। तब बुद्ध उत्तर देते हैं—"जैसे आनंद, राजा चक्रवर्ती के साथ करना होता है" ( दीघ० म० प० सु० )। कतिपय अन्य स्थलों पर भी उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति चक्रवर्ती के रूप में की है। ऐसे ही जब कोशल का नवीन राजा विरुद्धक ( विड्डभ ) शाक्यों से प्रतिशोध लेने उनकी सीमा पर पहुँचता है तो बुद्ध को शाक्य-सीमा में एक विरल छायावाले वृक्ष के नीचे बैठे देख कहता है—"भंते, इस गर्मी में इस विरल छायावाले वृक्ष के नीचे क्यों बैठे हैं ? चलें, मेरी सीमा में उस घनी छायावाले वृक्ष के नीचे विहार करें" तब उसे उत्तर मिलता है—'ठीक है महाराज, ज्ञातकों की छाया शीतल होती है।' (बु० च०, ४७३ )

२९—विनय महावग्ग के चतुर्थ माणवार में मागध असंतोष दर्शित है। (वि० १००)

३०—विनय, ४८०

३१—वही, चु० व० संघभेद स्कं०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया था जिससे एक ओर तो बौद्ध-संघ ज्ञातृपुत्रीयों ( जैनों ) की भाँति समाज से अदृष्ट रूप में अलग रहे और दूसरी ओर बौद्ध मध्यमार्ग पर नैर्ग्रंथिक अतिवाद का भी प्रभाव पड़े तथा बौद्ध धर्म को चैत्यपूजक अमांसभोजी व्रात्य विचारधारा के अधिकाधिक अनुकूल बनाया जा सके। संभव है, इसमें उसकी लिच्छवि माता का भी हाथ रहा हो। इसी लिये देवदत्त ने आग्रहपूर्वक बुद्ध से अनुरोध किया कि 'विनय' में संशोधन कर भिक्षुओं को आदेश दिया जाय कि वे आरण्यक, पिंडपातिक पांसुकूलिक, वृक्षमूलिक और अमांसभोजी रहें।[३२] पर बुद्ध ने इसे स्वीकार नहीं किया। इस प्रसंग में यह कह देना अनुचित न होगा कि बुद्ध ने गृह-त्याग के उपरांत छः वर्षों तक कृच्छ्र व्रतोंवाला कायक्लेशमय तप किया ( मज्झिम निकाय, बोधि राजकुमार सुत्तंत), जो सांख्य विचारों से अनुप्राणित होते हुए अपने उत्तरकाल में जैनों के ध्यानमय उपवास किंवा मौन कायोत्सर्ग की परिपाटी पर चलने लगा था। अवश्य ही उन्होंने तत्कालीन अन्य दर्शनों की आध्यात्मिक साधना-प्रणालियों का भी यथारुचि परीक्षण-प्रयोग किया, परंतु प्रतीत होता है कि इन छः वर्षों के अंतिम दिनों में उन्होंने जैन-साधना भी की। आठवीं शती के जैन विद्वान् देवसेनाचार्य के दर्शनसार में आए उल्लेखानुसार वे सरयू-तट पर स्थित पलाशनगर में पिहिताश्रव के शिष्य होकर रहे थे और उनका उस समय का नाम बुद्धकीर्ति था।[33]

देवदत्त और कुणीक का प्रयत्न यह था कि बुद्ध को बोधिमार्ग वा मध्यममार्ग से हटाकर जैन तत्त्वों की ओर ले जाया जाय और क्रियात्मक रूप में बौद्ध संघ की संचालिनी शक्ति देवदत्त के हाथों में आ जाय; इस प्रकार उनकी उदीयमान प्रतिभा का दुरुपयोग कर कार्य सिद्ध किया जाय। देवदत्त ने एक स्थल पर कुणिक से कहा भी कि तुम बिंबिसार को मारकर राजा बनो और मैं बुद्ध को मारकर संघ का शास्ता बनूँ।[३४] इधर गौतम बुद्ध ने अपने युग की आवश्यकता को ठीक ठीक पहचान लिया था। उनकी क्रांतदर्शिनी मेधा ने भली भाँति समझ लिया था कि निर्ग्रंथ नग्न-

---

३२—विनय ४८८।

३३—सिरि पायासणाह तित्थे सरयूतीरे पलासणयरथो पिहियसवस्स सिस्सो महासुदो बुड्ढकित्ति मुणी। बहुत संभव है कि जैनधर्म के महत्त्व-द्योतन के लिये ऐसा लिखा गया हो। किंतु इतना अवश्य है कि बुद्ध ने जैनधर्म का विधिवत् अंगीकार भले ही न किया हो, पर उनकी क्रियाओं का प्रयोग तो अवश्य किया, जैसा बो० रा० सु० से प्रकट है।

३४—विनय, ४८२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुंचनवादी जैन यति प्रजा से अलग होते जा रहे हैं तथा कायक्लेश की अद्भुत भूमिका में रहते हुए वे केवल आश्चर्य की दृष्टि से देखे जा रहे हैं; उनका अतिवाद इन्हीं का उच्छेद कर रहा है। ब्राह्मणों के हिंसामय-यज्ञों की भाँति उनका कायक्लेश-मग्न चातुर्याम संवर भी लोकहृदय पर अधिकार पाने में असमर्थ है। उस समय वस्तुतः किसी बीच के ऋजु मार्ग की माँग थी जो मज्झिमा प्रतिपदा के आलोक में ही दिखाई पड़ता था। बुद्ध ने संबोधि के बाद ही ऋषिपत्तन मृगदाव ( सारनाथ, बनारस ) में पंचवर्गीय भिक्षुओं के संमुख दिए अपने प्रथम उपदेश में कहा—'भिक्षुओ, इन दो अंतों ( अतियों ) का प्रव्रजितों को सेवन नहीं करना चाहिए—अनार्य अनर्थों से युक्त काम-भोग करना तथा कायक्लेश में लगना। भिक्षुओ, तथागत ने इन दोनों के बीच का मध्यमार्ग आविष्कृत किया है जो चक्षुप्रद, ज्ञानप्रद, उपशमनार्थ, अभिज्ञार्थ, संबोध्यर्थ निर्वाण के लिये है' ( संयुक्त निकाय )। और वहीं उन्होंने उन भिक्षुओं को दीक्षित कर ( तथा गृहपति यश को भी ) उद्घोषित करते हुए कि 'मैं सभी दिव्य और मानुष पाशों से मुक्त हूँ', आदेश दिया—

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकंपाय अत्थाय सुखाय देव मनुस्सानं···आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं···केवल परिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ।

बुद्ध लोकानुकंपाय, जीवों के सुख-हित के लिये, अपने पर्यवदात ब्रह्मचर्य वाले मध्यमार्ग के प्रतिष्ठार्थ किंवा व्यवहारार्थ वा प्रकाशनार्थ, लोक से न बहुत निकट न बहुत दूर, "आत्मदीप आत्मशरण" किंतु संवेदनशील होते हुए घुले-मिले रहना चाहते थे। इसलिये उन्होंने अतिवादविहीन मध्य मार्ग का आविष्कार किया, जिसकी सार्थकता को लोक आग्रहपूर्वक स्वीकार कर रहा था और जिसके द्वारा हिंसामय यज्ञवाद तथा पीड़ामय नग्नलुंचनवाद—परक्लेश और आत्मक्लेश के प्रतीक इन दोनों अतियों से प्रताड़ित प्राणियों की भावना का आदर हो सका। ऐसी अवस्था में वे देवदत्त के उस आग्रह ( दुराग्रह ) को कैसे स्वीकार कर सकते थे जो अतिवाद की प्रेरणा देता था?[३५] यदि वे उसकी उपर्युल्लिखित पाँच माँगों

---

३५—आगे चलकर देखा जाता है कि समान रूप से विरोधी परवर्ती ब्राह्मण भी निर्ग्रंथों के प्रति ही अधिक असंतुष्ट थे। 'न गच्छेत जैनमंदिरम्' तक कह डाला, सो भी साधारण स्थिति की तो बात ही क्या, 'हस्तिना ताड्यमानेऽपि'। फिर बौद्ध क्यों लुप्त हो गए और जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को स्वीकार कर लेते तो उसका मात्र फल यही होता कि बौद्ध मध्यमार्ग और जैन अतिवाद में नाममात्र का भेद रह जाता और बौद्ध समाज के अंग न होकर दूरस्थ आश्चर्य की वस्तु रह जाते। उनका अलौकिक जीवन जिज्ञासापूर्ण कुतूहल बनकर स्वाभाविक समवेदना खो देता।

बुद्ध ने अपना रक्त बहाकर[३६] भी देवदत्त के कुचक्रों के सामने आत्मसमर्पण नहीं किया। उसकी सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हुईं। फिर भी, जैसा विनय के संघभेद स्कंधक में दर्शित है, वह संघ-भेद में कुछ अंशों तक सफल रहा। यहाँ भी वही लिच्छवि समुदाय जिसपर पूर्वकालिक ज्ञातृपुत्रीय प्रभाव था, कलह में पहले प्रवृत्त हुआ, और यहीं से उन "वज्जीपुत्तकों" (वैशालिक भिक्षुओं, लिच्छवि प्रव्रजितों) के उस वर्ग की स्थापना हुई जिसकी परंपरा ने आगे चलकर बौद्ध धर्म में वाद-विभेद को प्रोत्साहन दिया तथा अपनी सुविधा के अनुकूल यानों का निर्माण किया। अट्ठकथा बिलकुल ठीक कहती है कि श्रमण धर्म में जो भी उपद्रव हुए, वज्जीपुत्तकों (वैशालिक भिक्षुओं) को लेकर हुए। बुद्ध के जीवन-काल[३७] में और बाद में भी[३८] रह-रहकर बौद्ध धर्म में दीक्षित लिच्छवि समुदाय विद्रोह कर उठता था। बुद्ध-निर्वाण के सौ वर्ष बाद तो वैशालिक भिक्षुओं ने अपने धर्म का नितांत अपलापन कर दिया था, जिससे क्षुब्ध होकर संघ को वैशाली में द्वितीय संगीति करनी पड़ी।

---

बने रहे? इसका उत्तर यह है कि बौद्धों के वज्रयानी भ्रष्टाचार (जो उन्हें बुद्धवर्जित अतिवाद की ओर ले गया) तथा विदेशी तत्त्वों के प्रति उनकी आस्था ने उन्हें लोकदृष्टि में इतना गिरा दिया कि उनका उच्छेद समय की एक आवश्यकता सिद्ध हुआ। हाँ, भौतिक रूप में उनका नाश पाँचवीं शताब्दी के उन हूणों तथा हूण बर्बरता के उन उत्तराधिकारियों ने किया जिनका स्मरण आज मानवता के नृशंस हतकों के रूप में किया जाता है, न कि कुमारिल या शंकराचार्य जैसी भावितात्माओं ने वा किसी सुधन्वा ने। यही क्यों, सबके साथ समन्वय कर विद्रोही तत्त्वों को भी क्षमा करनेवाले ब्राह्मणों ने तो बुद्ध को अवतार मानकर उस अत्यंत विरोधी, किंतु महान्, आत्मा के प्रति आदर का भाव दिखाया। हाँ, उन्हें अवतार मानने का श्रेय ब्राह्मण धर्म की महानता, बुद्ध की क्रांतदर्शिनी मेधा और मध्य काल में पुनः ब्राह्मण धर्म अपनानेवाले उन बौद्धों को जो बुद्धोपासना का मोह न छोड़ सके थे, समान रूप से प्राप्त है।

३६—विनय, ४८५ ३७—वही, ४८० ३८—बु० च०, ५५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सिंगिलोनकप्प आदि अवैध क्रियाओं को फिर से अग्राह्य बताते हुए धर्म और संघ का परिशोधन करना पड़ा।

जैसा पहले कहा जा चुका है, बौद्ध पिता से राज्य लेने के समय कुणीक ने देवदत्त, लिच्छवि अभिमत और अबौद्ध मागधों को अपनी ओर मिलाया, किंतु जब लिच्छवि राज्य लेने का समय आया तब उसने बुद्ध-सत्कार से अपना पक्ष प्रबल बनाया। जैसा महापरिनिर्वाण सूत्र से स्पष्ट है, उसने अपने अमात्य और महामात्य सुनीध और वर्षकार को बुद्ध के पास भेजकर लिच्छवियों के पराभव के उपाय[39] पुछवाए। उस समय तक बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव तथा प्रजा में उसके प्रति आदर की भावना कुणीक की दृष्टि में बौद्ध धर्म की अनिवार्यता स्पष्ट कर चुकी थी। तब क्यों न इसे वह लोकसंग्रह के एक अच्छे उपाय के रूप में ग्रहण करता? कूटनीति के अच्छे पंडित की भाँति वह अधिकाधिक लोक-संपर्क में रहकर प्रजापक्ष दृढ़ रखना चाहता था, जिसमें वह सफल रहा। इतिहास सिद्ध करता है कि उसने एक ऐसे साम्राज्य मगध की नींव दृढ़ की, एक ऐसे नगरक पाटलिग्राम को राजनीति का केंद्र बनाना प्रारंभ किया जो अनेक शताब्दियों, अनेक वंशांतरों की आँधी झेलकर भी सर्वोच्च शक्ति-केंद्र बना रहा। कुणीक के समय ही मगध का राज्य पूर्व में अंग, उत्तर में वज्जी और पश्चिम में काशी, यही क्यों, वरन् श्री जायसवाल प्रभृति विद्वानों के प्रौढ़-मतानुसार मथुरा तक विस्तृत था। श्री जायसवाल इसके प्रमाणस्वरूप परखम मूर्ति (ल्यूडर्स सूची, सं० १५०) का लेख[40] उपस्थित करते हैं और उस मूर्ति को वे अजातशत्रु कुणीक की प्रतिमा मानते हैं जिसका साम्राज्य मथुरा तक था।

---

३९—दीघ ११७

४०—परखम प्रतिमा को कनिंघम यक्ष प्रतिमा मानते थे। श्री जायसवाल ने उसपर टंकित लेख का पाठ-शोध करते हुए उसे अजातशत्रु कुणीक की प्रतिमा सिद्ध किया। बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी की पत्रिका (खंड ५ सन् १९१९, पृष्ठ ५५०) में उन्होंने प्रारंभिक विश्लेषण के साथ उक्त लेख "निभद प्रशेनि अज (।) सत्रु राजो (सि) (रि) र कुणिक शेवासिनागो माग (धा) नं राजा" दिया है। स्टेनकोनो (इं० ऐंटि०, १९०९, पृ० १४७), रामप्रसाद चंदा (इं० ऐंटि० १९१९ पृ० २१-३२), ओ० सी० गांगुली (माडर्न रिव्यू १९१९) और वोगल (कैटेलाग ऑव मथुरा म्यु०, पृ० ८३) के भी उक्त प्रतिमा विषयक शोध प्रकाश में आए, जिनका समुचित उत्तर श्री जायसवाल ने बि० उ० रि० सो० पत्रिका

५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजातशत्रु के उपर्युक्त साम्राज्य-निर्माण के कार्य का महत्त्व स्पष्ट रूप से समझने के लिये मगध को पड़ोसी राज्यों के साथ भारत के तत्कालीन अन्य राज्यों की भूमिका में देखना आवश्यक है। वह समय सोलह महाजनपदों का युग कहा

---

( खंड ६ भाग २, पृ० १७३-२०४, सन् १९२० ) में दिया। इससे उनकी स्थापना निश्चय ही प्रौढ़ सिद्ध हुई। म० म० डाक्टर गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने नागरीप्रचारिणी पत्रिका में और म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने बि० उ० रि० पत्रिका ( जिल्द ५ भाग ४, पृ० ५५२-६३ ) में उनकी स्थापना का विस्तारपूर्वक समर्थन किया। स्टेनकोनो प्रभृति विद्वानों को मूल भ्रम कनिंघम के उक्त प्रतिमा को यक्ष प्रतिमा कहने से हुआ। कनिंघम ने उसे देव-पूजा की प्रतिमा के रूप में इंगुर-सिंदूर लगी हुई पाया और ग्रामीण जनश्रुति के आधार पर तथा पूर्वनिर्धारित मतों से प्रभावित होकर यक्ष मान लिया। न तो टंकित लेख का शोध किया, न उसके ऐतिहासिक महत्त्व की ओर गए। आधारवेदी के अगले भाग का लेख भी उनकी दृष्टि में नहीं आया। उनके सामने तो उस समय की यही प्रबल धारणा थी कि भारत में यवन आक्रामकों के साथ ही मूर्तिकला का प्रवेश हुआ। किंतु यह मत भ्रमपूर्ण था, क्योंकि ऋग्वेद के सांखायन ब्राह्मण में प्रतिमाओं का उल्लेख है ( यदिडामुपह्वयते यन्मार्जते···पाणी प्रतिच्छेद तस्मै हिरण्मयौ प्रतिदधुस्तस्माद्धिरण्यपाणिरिति) तथा उसी ब्राह्मण में रात्रि कालदेव की प्रतिमाओं का भी उल्लेख है। और भी, शुंगकाल में खारवेल अपनी प्रशस्ति (कुमारीपर्वत अर्थात् खंडगिरि उदयगिरि, उड़ीसा, ई० पू० १७५ ) में कलिंग की उस जिनमूर्ति का उल्लेख करता है ( ना० प्र० पत्रिका भाग ८, पृ० ३१६ ) जिसे नंद ४५८ ई० पू० पाटलिपुत्र ले गया। महावीर-निर्वाण के कुछ दशकों बाद ही भारतीय प्रतिमाओं का यह भौतिक प्रमाण तथा परखम मूर्ति का प्रौढ़ कलापूर्ण वस्त्र-विन्यास आदि सूचित करता है कि भारत में यह कला उस समय ( बुद्ध-काल में ) उन्नत थी। अवश्य ही उसे प्रौढ़ होने में कम समय न लगा होगा और वह प्रतीकोपासना के साथ साथ चली होगी, जब कि अन्य बहुत सी सभ्यताएँ भविष्य के गर्भ में रही होंगी; यह नहीं कि उसका आयात विदेशी आक्रामकों द्वारा हुआ। युवानच्वांग तो शाक्यों में प्रचलित ईश्वरदेव की प्रतिमा की उपासना का भी विवरण देता है ( वाटर्स ऑन युवान-च्वांग, जिल्द २ पृ० १३ )। अस्तु, पाश्चात्य विद्वान् कनिंघम की उक्त मान्यता से प्रभावित होकर अपने भ्रामक मतों की पुष्टि का प्रयास करते थे और पाश्चात्य स्थापनाओं पर अपने सिद्धांतों को जीवित रखनेवाले आधुनिक विद्वान् भी ( सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, पृ० ९५ ) अब तक उस भ्रम का आदर करते हैं। पर यह अयुक्त है और परखम प्रतिमा कुणीक की है जिसने मथुरा तक का प्रदेश अपने साम्राज्य में मिलाया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है ( जंबूद्वीपे षोडश जनपदेषु[41]...), जब सांस्कृतिक इकाई एक होने पर भी जंबूद्वीप शासन के कई क्षेत्रों में विभक्त होकर विभिन्न प्रकार के तंत्रों द्वारा शासित था। ये इस प्रकार थे—अंग, मगध, काशी, कोशल, कुरु, पांचाल, वृजि, मल्ल, चेदि, वत्स अश्मक, अवंति, मत्स्य, शूरसेन, गांधार और कांबोज। इन सोलह महाजनपदों को छोड़ कुछ अन्य शासनक्षेत्र भी थे जो स्थानीय जातियों द्वारा शासित होते थे. यथा पश्चिम में शिवि, सौवीर, मद्र, यौधेय, कुकुर तथा उत्तर में बुलिय, कालाम, कोलिय, मोरिय, शाक्य। उक्त सोलह जनपदों सहित इन सभी राज्यों में गणाधीन, राजाधीन, सचिवायत्त, उभयायत्त, वैराज्य, भोज्य आदि नाना प्रकार के तंत्र गतिशील रहे। जान पड़ता है जंबूद्वीप ( भारत ) उस समय अनेक प्रकार के तंत्रों का प्रयोग कर अपने सर्वाधिक अनुकूल शासनतंत्र की खोज में था। इन विविध प्रकार के तंत्रों में राजतंत्र और गणतंत्र[42] ही ऋद्ध थे। कोशल और मगध के राजतंत्रों से वैशाली का गणतंत्र किसी भी प्रकार न्यून न था, अपितु किन्हीं गुणों में श्रेष्ठ भी था। किंतु राजतंत्रों की शक्ति और अपने अंतर्द्वंद्वों[43] तथा उत्तरदायित्वहीनता के कारण गणतंत्र क्षीणबल होते जा रहे थे और 'सकल जंबूदीपस्स एक रज्जम्' की भावना बलवती हो रही थी। कोशल शाक्य-ध्वंस की चेष्टा में था और मगध वृजि (लिच्छवि विदेह) पर अपनी दृष्टि गड़ा रहा था। शाक्य और वृजि उस समय यशःप्राप्त गणतंत्र ( राजशब्दोपजीवी ) थे—शाक्य अपने इक्ष्वाकुवंशीय आभिजात्य तथा बुद्ध-गौरव के कारण, और वृजि अपनी सांस्कृतिक उन्नति एवं बल-वैभव के कारण। अस्तु, उपर्युक्त सूचियों में उत्तरापथ के मध्यमंडल और पश्चिमी दक्षिणापथ में आठ गणतंत्र ( अल्लकप्प के बुलिय, केसपुत्त के कालाम, रामगाम के कोलिय, पिप्पिलीवन के मोरिय, कपिलवस्तु के शाक्य, वैशाली के लिच्छवि, कुसीनारा के मल्ल तथा पावा के मल्ल ) और चार राजतंत्र ( मगध, कोशल, वत्स, अवंति ) थे। कौटिल्य द्वारा अर्थशास्त्र में दिए गणतंत्रों के दो भेद उस समय किंवा उससे पूर्व भी प्रचलित थे—'वार्ताशस्त्रोपजीवी' और 'राजशब्दोपजीवी' ( कांबोजसुराष्ट्रक्षत्रिय श्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविनः लिच्छविक वृज्जिक मल्लक मद्रक कुकुर कुरुपांचालादयः

---

४१—ललित विस्तर ( लैफमैन संपादित ) पृ० २२

४२—केचिद्देशा गणाधीना केचिद्राजाधीना...अवदानशतक, जिल्द २ पृ० १०३ ( एडवर्ड स्पेयर, पेट्रोग्राड )।

४३—एकैक एव मन्यते अहं राजा...। —ललितविस्तर, जिल्द १ पृ० २१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजशब्दोपजीविनः—अर्थशास्त्र, संघवृत्तम्)। 'वार्ताशस्त्रोपजीविनः' के 'वार्ता' शब्द का स्पष्टीकरण अर्थशास्त्र में ही है—कृषि पशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता (१।४।१)। गणतंत्रों में केवल वृजि (लिच्छवि विदेह) ही ऐसा शक्तिमान् था जिससे उत्तरापथ के राजतंत्र भी स्पर्धा रखते थे। आर्थिक दृष्टि से समृद्ध, सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नत और यौद्धिक दृष्टि से प्रबल वैशाली मगध और कोशल के सामने एक प्रश्न बनी थी। लिच्छवि संघटित होकर एक मत से शासन चलाते थे। उनके इस ऐक्य की प्रशंसा बुद्ध ने भी की थी।[४४] उनके शील और ऐश्वर्य की तुलना उन्होंने देवताओं से की थी।[४५]

लिच्छवियों की दुर्जेयता के प्रसंग में उनके प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालना उचित होगा। लिच्छवियों का वर्णन वैदिक साहित्य में नहीं पाया जाता। इतिहास की प्राप्त सामग्रियों में उनका उल्लेख जैन और बौद्ध ग्रंथों में ही सबसे पहले हुआ। इसके पूर्व विदेह का वर्णन अवश्य मिलता है, जिससे अलग होकर लिच्छिवियों ने अपना बलशाली गणतंत्र बनाया। बृहद्विष्णुपुराण में विदेह की सीमा पूर्व में कौशिकी (कोसी), पश्चिम में उससे २४ योजन पश्चिम सदानीरा (गंडक), दक्षिण में गंगा और उत्तर में गंगातट से सोलह योजन दूर हिमालय की तलहटी थी (कौशिकीं तु समारभ्य...मिथिला नाम नगरी तत्रास्ति लोकविश्रुता)। विष्णु-पुराण द्वारा किए विदेह के सीमा-निर्धारण में वृजि प्रदेश अंतर्निहित हो गया है और उसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दर्शित है। तीर्थंकर महावीर विदेहवासी, विदेह राजकुमार, विदेहदत्ता के पुत्र, विदेह में तीस वर्ष रहे। मिथिला उनकी प्रिय नगरी थी जहाँ वे छः मास रहे।[४६] पहले स्पष्ट किया चुका है कि महावीर का मूल स्थान कोल्लाग था। अतः निश्चय ही कोल्लाग को विदेह प्रदेश में होना चाहिए। डा० हार्नली भी कहते हैं—कुंडपुर के आगे और उत्तरपूर्व में कोल्लाग स्थित था जहाँ के प्रधान निवासी संभवतः उस 'नाय' या 'ज्ञातृ' कुल के क्षत्रिय थे जिसमें महावीर हुए थे।[४७]

---

४४—दीघ ११८, ११६ ४५—वही, १२८

४६—जैकबी, जैनसूत्राज़, जिल्द २२ भाग १, पृ० २५६, २६४

४७—Beyond Kundpur in a further north-easterly direction lay the suburb of Kollag, which appears to have been principally belonged by the Kshatriyas of Naya or Jñatris' clan to which Mahavir belonged.

—उवासगदसाओ, खंड २, पृष्ठ ४ पादटिप्पणी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार देखा जाता है कि बुद्ध और महावीर के समय में भी कौशिकी से लेकर वैशाली के निकट पूर्व तक का प्रदेश विदेह कहा जाता था। अतः वैदिक साहित्य में लिच्छवियों की अप्राप्ति तथा बुद्धकाल में भी विदेह की भौगोलिक व्याप्ति स्पष्ट करती है कि मूलतः सदानीरा से कौशिकी तक का प्रदेश विदेह था, जिसकी सदानीरा-तटवाली लिच्छवि शाखा विदेह राजतंत्र से पहले विद्रोह कर अलग हुई और विदेह बाद में, किंवा अर्थशास्त्र में दिए करालजनक वा विष्णुपुराण के कृत के समय में, विद्रोह कर राजतंत्र से मुक्त हुए। अवश्य ही इस विद्रोह-प्रणाली को सदानीरा-तटवाले लिच्छवियों ने ही प्रारंभ किया, जिन्होंने बाद में भी राजतंत्र न सहन कर गणतंत्र स्थापित किया।

शतपथ ब्राह्मण में कथा आई है कि विदेघमाथव (विदेहमाधव) ने अपने मुख में अग्नि वैश्वानर का संवहन किया और उनके मुख से निष्पन्न अग्नि वैश्वानर सरस्वती के तट से सदानीरा के तट तक व्याप्त ( पूर्व में बढ़ते हुए ) हुआ। विदेघमाथव तथा उनके पुरोहित गोतम राहूगण ने अग्नि वैश्वानर का अनुगमन किया। मार्ग में पड़ने वाली सब नदियाँ उस अग्नि से प्रभावित हुईं, किंतु सदानीरा दीप्त नहीं हुई। उसके तट पर रुककर विदेहमाधव ने पूछा—'मैं कहाँ रहूँ ?' अग्नि ने उत्तर दिया—'सदानीरा के पूर्व' (एव ते प्राचीनं भुवनमिति)। प्राची ( = पूर्व ) में बहुधा ब्राह्मण सदानीरा का अतिक्रमण नहीं करते थे, क्योंकि वह अग्निवैश्वानर द्वारा अनास्वादित थी। अग्निवैश्वानर के उत्तर ने यह शंका मिटा दी और उन्होंने सदानीरा के तट पर वास स्थिर किया तथा सदानीरा कोसल विदेह की मर्यादा ( = सीमा ) हुई—

> विदेघो ह माथवोऽग्निं वैश्वानरं मुखे बभार तस्य गोतमो राहूगण ऋषिः पुरोहित आस नेन्नमेऽग्निर्वैश्वानरो मुखान्निष्पद्याता इति।...तर्हि विदेघोमाथव आस। सरस्वत्या स तत एव प्राङ् दहन्नभीयायेमां पृथिवीं तं गोतमश्च राहूगणो विदेघश्च माथवः पश्चाद्दहन्त मन्वीयतुः स इमाः सर्वा नदीरतिददाह सदानीरेत्युत्तराद् गिरेर्निर्धावति ता हैव नातिददाह ता ह स्म तां पुरा ब्राह्मणा न तरन्त्यनतिदग्धाऽग्निना वैश्वानरेणेति। स होवाच विदेघो माथवः काहं भवानीत्यत एव ते प्राचीनं भुवनमिति होवाच सैषाप्येतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा ते हि माथवाः। —शुक्ल यजु० मा० शतपथ १।४।१०,१४,१७

इससे भी स्पष्ट होता है कि विदेह की पश्चिमी सीमा सदानीरा ( गंडक ) थी और वृजि ( लिच्छवियों ) का उस समय अस्तित्व न था।[४८]

---

४८—जुलियस एगलिंग का तो यहाँ तक कहना है कि कोसल-विदेह भी एक थे ( श० ब्रा० जिल्द १२, प्रस्तावना पृ० ६२,६३ )। ऐसे स्पष्ट संकेत का वास्तविक और पुष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि वैश्वानर के इस प्राच्य अभियान का ऐतिहासिक महत्त्व और सांकेतिक अर्थ है। इससे स्पष्ट होता है कि विदेहमाधव आर्यों के पूर्वी अभियान के नायक थे जिन्होंने सारस्वत प्रदेश से जाकर पूर्व में कौशिकी तक के प्राच्य प्रदेश में आर्य संस्कृति के प्रतीक अग्नि वैश्वानर की प्रतिष्ठा कर आर्यों के प्राच्य विस्तार की नींव डाली थी। परवर्ती काल में भी वहाँ यज्ञवाद प्रबल रहा। उदाहरण के लिये ऐक्ष्वाक निमि के सहस्रवर्षीय सत्र ( वि० पु० ४।५।१ ) और जनक द्वारा किए बहुदक्षिण यज्ञ ( बृहदारण्यक ३।१ ) जैसे महामखों को रखा जा सकता है। जातकों में भी विदेहराजों के यज्ञ-यजन का उल्लेख है। लिच्छवि, जो व्रात्य थे[४९], कब और कैसे अपनी व्रात्य विचारधारा लेकर रंगमंच पर प्रकट हुए, यह एक रहस्य है। अस्तु; उपर्युक्त अभियान के अग्रदूत विदेहमाधव की ऐतिहासिक स्मृति को स्थिर रखने के लिये सदानीरा और कौशिकी के बीच का प्रांत विदेह कहा गया, जिसमें रहने-बसने की सांकेतिक अनुज्ञा अग्निवैश्वानर ने दी थी। इसी विदेह की राजधानी मिथिला में जनकों की परंपरा स्थापित हुई जो दीर्घकाल तक चलकर बुद्ध के पहले ही समाप्त हो गई।

ऊपर कहा जा चुका है कि व्रात्य लिच्छवियों का ब्राह्मण ग्रंथों में अस्तित्व नहीं है और वे विदेहों से ही फूटकर निकले। मनु लिच्छवियों को व्रात्य शाखा में रखते हैं और व्रात्य की परिभाषा में कहते हैं—'द्विजों की समानवर्णा स्त्रियों में उत्पन्न संतान जो संस्करणविहीन रहती है व्रात्य कही जाती है।'[५०] म० म० हरप्रसाद शास्त्री

---

आधार प्राप्त नहीं। शतपथ के 'सैषाप्येतर्हि' को देखकर उन्होंने अनुमान लगाया कि कोसल-विदेह की सीमा-रेखा उस समय बँधी जब शतपथ ब्राह्मण का प्रणयन हुआ और इस भाँति उन्होंने मान लिया कि इसके पूर्व कोसल विदेह एक में थे। इसे मानने में असुविधा है। शतपथ में ही वहीं पर आए 'तां पुरा ब्राह्मणा न तरन्त्यनतिदग्धाग्निना' से स्पष्ट है कि शतपथ जिस घटना का उल्लेख करता है उसके पहले सदानीरा के पूर्व में आर्यों का विशेष आवागमन न था; न कोई आर्य राज्य था। ऐसी स्थिति में एक होने का प्रश्न असंगत है। हाँ, जब सदानीरा के पूर्व आर्य अभियान हुआ तो विदेह प्रदेश की स्थापना के साथ ही सदानीरा कोसल-विदेह की सीमा-नदी मान ली गई। यह भी ध्यान देने योग्य है कि शतपथ का इस घटना का उल्लेख अति प्राचीन काल की ओर संकेत करता है जब आर्य-विस्तार पूर्व में गतिशील हो रहा था, न कि उस समय की ओर जब शतपथ का प्रणयन हुआ था।

४९—बुहलर : लॉज़ ऑव मनु, ४०६। ५०—वही, ४०५-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


की व्रात्य की परिभाषा है कि वे अंतर्देश के चातुर्दिक रहनेवाले वैदिक परिधि के बाहर के आर्य थे। उनका कोई निश्चित आवास न था। वे झुंडों में घूमते और ब्राह्मण संस्कृति से विरत रहते थे तथा वैदिक आर्यों से युद्ध भी करते थे; किंतु आर्यों की सभी सुविधाओं के द्वार उनके लिये उन्मुक्त थे। उनके यज्ञ-याग करने, ब्राह्मणों के उनके द्वारा प्रस्तुत भोजन करने, यहाँ तक कि उनके मंत्रदर्शन करने और ब्राह्मण ग्रंथों की रचना करने पर भी कोई प्रतिबंध न था।'[51] ये दोनों ही विश्लेषण समान रूप से यह स्थापना करते हैं कि व्रात्य वैदिक संस्कारों में रुचि नहीं रखते थे। म० म० हरप्रसाद शास्त्री का यह कहना कि उनमें आर्य-संस्कृति की कमी थी, और मनु का यह कहना कि वे संस्करणविहीन हैं, समान अर्थ रखते हैं। मनु ही नहीं बौधायन, गौतम, वशिष्ठ, आपस्तंब—उनके पूर्ववर्ती स्मृतिकार भी यही ध्वनि देते हैं। अवश्य ही लिच्छवियों की व्रात्य विचारधारा ने जैन धर्म का प्रजनन किया जो अथ से इति तक वैदिक संस्कृति के प्रतिकूल है।

बौद्ध और जैन ग्रंथ लिच्छवियों को समान रूप से क्षत्रिय मानते हैं। महापरिनिर्वाण सूत्र के अनुसार धातु-विभाजन के समय लिच्छवियों ने कहा— 'भगवापि खत्तियो अह्माकम्पि खत्तियो'। भगवान् (बुद्ध) भी क्षत्रिय थे, हम (लिच्छवि) भी क्षत्रिय हैं, अतः हमारा भी चिता-भस्म में भाग होता है। महावीर की माता लिच्छवि राजा चेटक की भगिनी त्रिशला क्षत्रियाणी थीं। शबरस्वामी पूर्वमीमांसा की टीका में 'राजा' शब्द को ही क्षत्रिय का पर्याय मानते हैं। अवश्य ही ७७०७ राजाओं वाली वैशाली क्षत्रियबहुला रही। इसका समर्थन यह बौद्ध आख्यायिका[52] भी करती है—पूर्वकाल में काशिराज की अग्रमहिषी से एक मांस-पिंड प्रसूत हुआ जिसे पात्र में रख गंगा को समर्पित कर दिया गया। एक मुनि ने उसे निकालकर (पाटलिग्राम के निकट ?) अपने आश्रम में रखा, जहाँ तीन पक्ष बीतने पर उस मांस-पिंड ने कुमार-कुमारी की दो आकृतियाँ धारण कर लीं और विभक्त होकर एक बालक और एक बालिका हुई। दोनों का शरीर इतना पारदर्शी था कि किया हुआ भोजन भी उसमें से दिखाई देता था। अपने इस गुण के कारण वे 'निच्छवि' अर्थात् त्वचाविहीन कहे जाने लगे। कुछ उन्हें अंतर्लीन त्वचावाले मानकर 'लीनच्छवि' कहते थे, उसीसे 'लिच्छवि' हुआ। सिंहली बौद्ध रचना

---

५१—जे० ए० बी० एस० एनुअल ऐड्रेस, न्यू सीरीज, जिल्द १७ सं० २, १९२१

५२—खुद्दक पाठ की टीका परमार्थज्योतिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पूजावलीय' भी कुछ इसी प्रकार का विवरण देती है। आगे चलकर परमार्थ-ज्योतिका कहती है कि उक्त कुमार-कुमारी का विवाह हुआ और उनसे सोलह बार पुत्र-पुत्रियों की यमक संततियाँ हुईं। इस प्रकार लिच्छवि कुल बढ़ने लगा। लिच्छवि-पर्याय 'वज्जी' के विषय में परमार्थज्योतिका कहती है कि वे मांस-पिंड से उद्भूत कुमार-कुमारी अन्य समवयस्क बालकों को पीड़ित करते थे, इसलिये लोग उन्हें वर्जितव्य कहते-समझते थे; और उसी 'वर्जितव्य' से 'वज्जी' की उत्पत्ति हुई। इन अनुश्रुतियों का, यद्यपि ऐतिहासिक महत्त्व विवादग्रस्त है, पर यह 'वर्जितव्य' शब्द कुछ सत्य की ओर संकेत करता है जिसका विवेचन आगे होगा।

ऐसा लगता है कि लिच्छवि व्रात्य होने के कारण विशिष्ट आर्यों द्वारा वर्जितव्य थे और उन्हीं अंतर्देशीय विशिष्ट आर्यों ने परवर्ती काल में उन्हें यह उपनाम दिया जो पाली में 'वज्जी' के रूप में आया है। अतः ऊपर कहा जा चुका है कि व्रात्यों को सभी आर्य अधिकार प्राप्त थे और उनके आनुवंशिक तथा रक्तीय अभिजात्य के प्रति कोई शंका न थी—वे केवल संस्करणविहीनता के दोषी थे। अतः संभव है यह 'वर्जितव्य' विचिकित्स्य लगे; पर उसका निराकरण 'वर्जितव्य' और 'वर्ज्य' का अर्थ-भेद किंवा भाव-भेद कर देगा और 'वर्जितव्य' शब्द में निहित उपेक्षा की भावना की मात्रा भी स्पष्ट हो जायगी। लिच्छवि व्रात्य विशिष्ट आर्यों के ऐसे समरक्त भाई थे जो वैदिक आचारों के प्रति निष्ठावान् न रहने के कारण उपेक्षणीय होते हुए भी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दाय के, अपने उन आचारनिष्ठ भाइयों (अंतर्देशीय आर्यों) की भाँति ही अधिकारी बने रहे जिन्होंने बराबर उनका दाय स्वीकार किया। निश्चय ही उनका दाय छीना नहीं गया। वे 'वर्जितव्य' भले ही रहे हों, पर 'वर्ज्य' नहीं हुए। उनका सावित्री-पतित होना भी उनके किसी अधिकार को कीलित न कर सका। विदेहराज निमि द्वारा होतृकर्म के लिये वसिष्ठ का वरण,[५३] मौद्गल्यायन द्वारा लिच्छवियों को 'वासेट्ठ' (वासिष्ठ) संबोधन तथा महावस्तु के कतिपय स्थलों पर लिच्छवियों का 'वासिष्ठ' कहा जाना[५४] निश्चित करता है कि वे वशिष्ठगोत्रीय थे। सूर्यवंशीय ऐक्ष्वाकों के पुरोहित वशिष्ठ परंपरावाले ब्राह्मण हुआ करते थे। ऐतरेय ब्राह्मण का निर्देश है कि क्षत्रिय का गोत्र-प्रवर उसके पुरोहित के गोत्र-प्रवर से होता है।[५५] वाल्मीकीय रामायण के बालकांड[५६] में वैशाली की

---

५३—विं० पु० ४।५।१। ५४—'लाइफ़ ऑव बुद्ध' (तिब्बती दुलवा) के आधार पर।
५५—७।३४।२५ ५६—४७।१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उत्पत्ति के प्रसंग में कहा गया है कि इक्ष्वाकुवंशी विशाल ने वैशाली की स्थापना की। राकहिल के 'लाइफ़ ऑव बुद्ध'[५७] से ज्ञात होता है कि शाक्य जो इक्ष्वाकु को अपना पूर्वपुरुष मानते थे, तीन भागों में विभक्त थे—शाक्य, लिच्छवि और पर्वतीय। प्रथम तिब्बती शासक शाक्य था। इस विवेचन से यह भी स्पष्ट होता है कि लिच्छवि इक्ष्वाकुवंशी थे और उन्होंने व्रात्य-भाव ग्रहण कर लिया था। वैशाली भी उसी प्रकार इक्ष्वाकुवंशियों की नगरी थी, जिस प्रकार मिथिला (वर्तमान जनकपुर)। जनक-परंपरा का अंत होने पर मिथिला जो याज्ञवल्क्य के काल में संपूर्ण जंबूद्वीप के आध्यात्मिक केंद्रस्वरूप प्रतिष्ठित थी, निष्प्रभ हो गई। वैशाली और उसके उपकंठों के सन्निवेश राजनीतिक महत्त्व के साथ दार्शनिक श्रैष्ठ्य भी ग्रहण करने लगे। जहाँ ब्रह्मवादी जनकों के युग में महामखोंवाली मिथिला आर्य दर्शन की मीमांसिका बनकर कुरु-पांचाल के विद्वानों को मूक करती हुई तत्कालीन भारतीय अध्यात्म की सम्राज्ञी बनी हुई थी, वहाँ उसी सदानीरा और कौशिकी के मध्यदेश में चैत्यपूजक लिच्छवि व्रात्यों की नगरी वैशाली अब वैभव और बुद्धि में उसका स्थान ग्रहण कर रही थी और वहाँ जैन तथा बौद्ध धाराएँ टकरा-टकरा कर वैदिक मर्यादा के कूलों का ध्वंस कर रही थीं।

लिच्छवियों की वैशाली जिस प्रकार विदेह की प्रथम राजनीतिक विद्रोहिणी हुई उसी प्रकार उसने सांस्कृतिक विप्लव भी किए। मिथिला की शक्ति के प्रति विद्रोह कर विदेह के पश्चिमी भाग सदानीरातट वाले लिच्छवि विदेह-शक्ति से पहले अलग हुए और उन्हीं की व्रात्य विचारधारा ने पहले जैनों की अवैदिक मान्यताओं को प्रश्रय दिया, फिर बाद में बौद्धों की भी। मिथिला तो अनुगामिनी बनी हुई थी। व्रात्य लिच्छवियों ने वैशाली की सीमा भी चैत्यों से बाँधी थी; भीतर कितने चैत्य रहे होंगे, इसका अनुमान कठिन है। बौद्ध और जैन ग्रंथों में वहाँ के कतिपय चैत्यों का उल्लेख मिलता है। दीघनिकाय के पथिकसुत्त में अचेल कोरमट्टक प्रतिज्ञा करता है—'मैं वैशाली के पूर्व में उदयन चैत्य, दक्षिण में गोतमक चैत्य, पश्चिम में सप्ताम्रक चैत्य और उत्तर में बहुपुत्रक चैत्य के आगे न जाऊँगा।' अवश्य ही ये उस नगर के सीमासूचक चैत्य थे। और भी चैत्य जैसे कपिनाह्य, मर्कटह्रदतीर, चापाल, सारंदद आदि वहाँ थे। ये चैत्य केवल वास्तु द्वारा निर्मित न होकर कभी कभी वृक्षों के रूप में भी हुआ करते थे।[५८] बहुधा यक्षों किंवा अमनुष्यों के प्रीत्यर्थ इनकी उपासना

५७—उक्त ग्रंथ में सेनांगसैटसेन के 'हिस्ट्री ऑव ईस्टर्न मंगोल्स' का उद्धरण।

५८—रिज़ डैविड्स : डायलॉग्ज़ ऑव बुद्ध, पृ० ११० पा० टि०।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


होती थी।[५९] इस व्रात्य विचारधारा वाले सभी क्षेत्र जैन धर्म के लिये उर्वर सिद्ध हुए। सौराष्ट्र, नीलगिरि, वज्जी आदि इसके उदाहरण हैं, जो प्राचीन काल में अंतर्देश के प्रत्यंत और उपकंठ माने जाते थे।

वैशाली में रहनेवाले लिच्छवि राजा मणि-हिरण्य में अन्य जनपद-निवासी उच्च कुलों से समृद्ध थे। उनके बल-वैभव से ही उनका राजशब्दोपजीवी गणतंत्र भौतिक ऋद्धि की पराकाष्ठा को प्राप्त था। तत्कालीन साहित्य में शाक्यों की भाँति कहीं कहीं वज्जियों के लिये भी चंड, कठोर आदि शब्द आए हैं और उन्हें असहिष्णु दिखाया गया है।[६०] पर उनकी शासन-प्रणाली अद्भुत थी। विश्व के इतिहास में शक्ति के विकेंद्रीकरण और साथ-साथ अभिन्न संघटन का वह अनूठा उदाहरण है। उनके शासन में जिस प्रकार प्रतिनिधित्व था उसी प्रकार न्याय में भी वृजि संघ की सभी ज्ञातियों का प्रतिनिधित्व होता था। अष्टकुलकों का संघटन इसका साक्षी है। जनपद में निवास करनेवाली आठों जातियों ( लिच्छवि, ज्ञातृ, वैदेह, तीरभुक्ति प्रभृति ) से एक एक प्रतिनिधि लेकर अष्टकुलक का निर्माण होता था।[६१] वैशाली में संस्थागार उनका शासकीय गृह था, जहाँ समानाधिकार प्राप्त लिच्छवि ( वज्जि ) जुटकर मंत्रणा करते थे। संस्थागार में आवश्यकतानुसार सन्निपात भेरी बजाकर सभाएँ होती थीं। नियमानुसार प्रस्ताव की प्रज्ञप्ति और पुनर्वाचन ( अनुश्रावण ) होता था। शलाकाग्रहापक की सहायता से रंगीन शलाकाओं द्वारा मतामत ( छंद ) का निराकरण होकर प्रस्ताव की स्वीकृति या अस्वीकृति ( धारणा ) होती थी। ऐसी ऋजु और प्रांजल होने के कारण ही वृजियों की शासनप्रणाली की प्रशंसा बुद्ध ने भी की थी। बुद्ध ने, जो स्वयं एक राजशब्दोपजीवी गणराज्य के शासक के पुत्र थे, अपनी संघ-व्यवस्था में इसी जनतंत्रात्मक पद्धति का अवलंब लिया। वैशाली की अभिषेकमंगल पुष्करिणी[६२], जहाँ कोसल का सेनापति अपनी दोहदवती स्त्री मल्लिका को ले गया था,[६३] एक ऐतिहासिक स्थल था। वहाँ नवीन राजाओं का

---

५९—वही, भाग २ पृ० ८०, टि०।

६०—एक पण्णजातक।

६१—कनिंघम, एंशंट ज्याग्रफी ऑव इंडिया, ४४७

६२—वेसालिनगरे गणराजकुलानां अभिसेकमंगल पोक्खरिणीम्।

—फासबाल, जातक जि० ४, पृ० १४८

६३—बु० च० ४७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


केवल अभिषेक होता था। उन्हें छोड़ वहाँ जानेवाला व्यक्ति दंड का भागी होता था। उक्त पुष्करिणी के चतुर्दिक् लगे लौह अवरोध की रक्षा प्रहरी करते थे। खाई और प्राचीरों से रक्षित वैशाली एक अ-योध्या नगरी थी जिसके भीतर राजगृह और श्रावस्ती को कँपानेवाले दुर्जेय लिच्छवि रहते थे।

अस्तु; अजातशत्रु यह समझ गया था कि ऐक्य और बल-वैभव में समृद्ध लिच्छवि अभेद्य हैं, अतः उन्हें पराजित करने के लिये गूढ़ कूटनीति का आश्रय आवश्यक है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, उसे लिच्छवि-शक्ति से आशंका थी। उसके कुछ गंगातटीय क्षेत्र लिच्छवियों द्वारा आक्रांत भी रहा करते थे। यह स्पष्ट संकेत करता है कि वह इस ओर से चिंतित रहता था। राज्य-प्रसार के साथ ही रक्षा का प्रश्न भी सामने था। अतः उसने अपने अमात्यों को बुद्ध के निकट गृध्रकूट भेजा[६४], जहाँ उन अमात्यों ने लिच्छवियों के संबंध में वार्ता की। उनके द्वारा भी यह जानने पर कि लिच्छवि ऐक्य के कारण बलवान् हैं (सत्तअपरिहानिधम्म), कुणीक ने निश्चित रूप से अपना कूटचक्र चालित कर दिया और हम देखते हैं कि बुद्ध से वार्तालाप कर लौटते ही उसके अमात्य मगध के उत्तरी सीमांत-पुर पाटलिग्राम के संव्यूहन के लिये चल दिए। ऐसा इसलिये कि बुद्ध की उस अंतिम चारिका का पथ गृध्रकूट ( राजगृह )-अंबलट्ठिका-सिग्गालव ( सिलाव )-नालंदा ( बड़गाँव पटना )-पाटलिग्राम-वैशाली (बसाढ़) था।[६५] इस भाँति महापरिनिर्वाण सूत्र में देखा जाता है कि गृध्रकूट में मिले मागध अमात्य बुद्ध को पाटलिग्राम में नवकर्म आदि कराते मिले हैं--लिच्छवि-प्रतिरोध की प्रेरणा से।[६६] पाटलिग्राम भी बहुधा आक्रांत रहता था, समय-समय पर लिच्छवि वहाँ भी उपद्रव करते थे।[६७] पाटलिग्राम (पाटलिपुत्र) की पुष्टि मगध की रक्षा के लिये सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थी, जिसे कुणीक ने अविलंब प्रारंभ करा दिया और यह पुर उसके भावी अभियान का स्कंधावार बनने लगा। अंततः, सदानीरा और कौशिकी के बीच बसनेवाले प्रजातंत्रात्मक प्रवृत्ति के लोगों पर अंकुश रखने के लिये पाटलिग्राम कुणीक और उसके उत्तराधिकारियों के लिये सुदृढ़ दुर्ग बना।

इसके अनंतर कुणीक ने अपने महामात्य वर्षकार ( विनिश्चय महामात्य ) से कृत्रिम झगड़ा कर उसे निर्वासित कर दिया।[६८] उसपर दोष यह लगाया कि वह

---

६४—दीघ० ११८ ६५—वही, ११८-२४ ६६—वही, १२४

६७—उदान अट्ठकथा, ८।६ ६८—दीघ०, ११९ पा० टि०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लिच्छवियों के प्रति सहानुभूति रखता है। निर्वासित वर्षकार थोड़े समय में ही वज्जियों का विश्वासपात्र बन गया और वैशाली में भी वह विनिश्चय महामात्य के कर्त्तव्य पूरा करने लगा। अपने प्रति विश्वास दृढ़ कर उसने कलह-बीज बोना प्रारंभ किया, जिसने अंकुरित हो मागध सेनाओं के भावी आक्रमण को अपनी छाया में विश्राम दिया। लिच्छवि कंचन, कामिनी, कादंब, कूटनीति ( मागध ), कलह और कुमति के षट्कोण में फँसकर अपना व्यक्तित्व खो बैठे और अचिर ही वृजिगण मगध का अंग हो गया।[६९]

लिच्छवि-विजय में कुणीक की कूटनीति का दूसरा भी महत्त्वपूर्ण पक्ष है जो शाक्य और कोशल से संबंध रखता है और जिसमें भी वह पूर्णतः सफल रहा; पर विस्तार-भय से वह यहाँ उपस्थित नहीं किया गया।

अस्तु। उपर्युक्त विवेचन द्वारा हम यह देखते हैं कि महात्वाकांक्षी अजातशत्रु कुणीक विशुद्ध कूटनीतिक भाव-पीठिका पर तत्कालीन विवेचित वातावरण में स्थिर रहते हुए ब्राह्मण-काल के उस आदर्श के लिये भयानक रूप से प्रयत्नशील था जो निम्नलिखित उद्धरण में निहित है—

सर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठ्यमतिष्ठां पारमतां गच्छेत् साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यमाहाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात्सार्वभौम सार्वायुष आन्तादापरार्धात्पृथिव्यै समुद्र-पर्यन्ताया एकराडिति। ( ऐतरेय ८।४।१ )

---

६९—भगवतीसूत्र में लिच्छवि-कुणीक युद्ध 'महाशिलाकंटक' नाम से आया है जिसके कारण कुछ दूसरे नाम आए भी हैं ( शतक ७ उद्देशा ९ )।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विमर्श

## गुप्त सम्राट् और विष्णुसहस्रनाम (समीक्षा)

ना० प्र० पत्रिका के संवत् २००६ के प्रथम अंक में डाक्टर बहादुरचंद छाबड़ा का 'गुप्त सम्राट् और विष्णु सहस्रनाम' शीर्षक एक अत्यंत विमर्शपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। उनकी मुख्य स्थापनाएँ निम्नलिखित हैं—

१—गुप्त कुल और गुप्त साम्राज्य में विष्णुसहस्रनाम का बहुत अधिक आदर था। कदाचित् गुप्त वंश के सभी स्त्री-पुरुष इसका प्रतिदिन पाठ करते रहे हों और इसी के आधार पर उन्होंने अपनी संतान के नाम भी रखे हों। गुप्त, चंद्र, समुद्र, घट, कुमार, स्कंद प्रभृति नाम विष्णुसहस्रनाम में भगवान् विष्णु के नाम हैं।

२—समुद्रगुप्त के उपनामों में जो पराक्रम, पराक्रमांक, कृतांत-परशु आदि उपाधियाँ मिलती हैं उनमें विष्णु की सत्यपराक्रम, खंडपरशु आदि संज्ञाएँ प्रतिध्वनित जान पड़ती हैं।

३—ध्रुवदेवी, अनंतदेवी, मित्रदेवी, कुमारदेवी और चंद्रदेवी—इन गुप्त महादेवियों और पटरानियों के नामों में विष्णु के ध्रुव, अनंत आदि नामों की छाया है।

४—आदित्य शब्द विष्णुवाची है। गुप्त सम्राटों के नाम प्रायः इसी लिये आदित्यांत हैं।

५—चंद्रगुप्त द्वितीय की उपाधि 'चक्रविक्रम' का स्पष्टीकरण विष्णुसहस्रनाम के इस श्लोक से होता है—

अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः।

"साथसाथ पड़े 'चक्री' और 'विक्रमी' से किस प्रकार 'चक्रविक्रम' का दोहन किया गया है!" इसी प्रकार चंद्रगुप्त द्वितीय की 'अजितविक्रम' और 'सिंहविक्रम' उपाधियाँ विष्णु के अमितविक्रम नाम की याद दिलाती हैं।

६—प्रथम कुमारगुप्त की मुद्राओं पर के उसके उपनाम महेंद्र, अजितमहेंद्र और सिंहमहेंद्र विष्णु के महेंद्र, अजित और सिंह नामों से बने हैं। 'गुह' शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विष्णु और कुमार दोनों का पर्यायवाची है। अतः उसका महेंद्रकुमार नाम भी विष्णुपरक है।

७—गुप्त सम्राट् विष्णु भगवान् के परम भक्त थे। इसलिये कोई आश्चर्य नहीं कि उनके आश्रित कवि उन्हें विष्णुरूप में प्रदर्शित करते थे। जैसे—

(क) कुमारगुप्त के सिंहमर्दन सिक्कों पर 'साक्षादिव नरसिंहः सिंहमहेंद्रो जयत्यनिशम्'—इस अभिलेख से 'उसका विष्णु का अवतार होना सिद्ध ही है।'

(ख) सं० ५२४ के मंदसोर वाले बौद्ध शिलालेख के 'गोविंदवत् ख्यातगुणप्रभावः' उल्लेख से चंद्रगुप्त द्वितीय के वैष्णव प्रभाव की ख्याति प्रतिध्वनित होती है।

(ग) चंद्रगुप्त द्वितीय के 'देवराज', 'देवगुप्त' आदि नाम भी उसके विष्णुत्व के प्रतिपादक हैं। विष्णुसहस्रनाम में 'देव' शब्द विष्णु का पर्याय है।

(घ) हरिषेणकृत प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के लिये 'लोकसमयक्रियानुविधानमात्र मानुषस्य लोकधाम्नो देवस्य', 'साध्वसाधूदयप्रलयहेतुपुरुषस्य' प्रभृति उल्लेख भी यही सिद्ध करते हैं कि कवि ने सम्राट् को जहाँ-तहाँ विष्णु मानकर उसका वर्णन किया है।

(ङ) अभिलेखों में जहाँ समुद्रगुप्त को 'पृथिव्यां अप्रतिरथः' कहा है वहाँ चंद्रगुप्त द्वितीय को 'स्वयंचाप्रतिरथः' कहा गया है। इनमें 'अप्रतिरथ' का अर्थ 'विष्णु' है। समुद्रगुप्त पृथ्वी पर विचरनेवाला विष्णु था और उसका पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय भी 'साक्षात् विष्णु'। 'अप्रतिरथ' का 'निःसपत्न' आदि अर्थ आपाततः ठीक प्रतीत होते हुए भी वास्तव में वह विष्णु के लिये ही प्रयुक्त हुआ है।

डाक्टर छाबड़ा की अनेक स्थापनाओं से सहमत होते हुए भी हम उनसे सर्वथा सहमत नहीं हो सके हैं। विष्णुसहस्रनाम संभवतः गुप्तकाल में पर्याप्त जनप्रिय था। यह संभव है कि गुप्त अभिलेखों के रचयिताओं ने उसकी सुंदर एवं सार्थक पदावली का यत्र-तत्र प्रयोग किया हो, और यह भी निर्विवाद है कि कुछ अन्य कवियों के समान गुप्तकालीन कवियों ने भी अपने संरक्षकों को देववत् प्रदर्शित किया है। किंतु इससे अधिक कहना इतिहास की दृष्टि से ठीक है या नहीं, यह अवश्य विचारणीय है।

गुप्त, समुद्र, कुमार, चंद्र, सिंह, गुह, पुरु, घट आदि क्या वास्तव में भगवान् विष्णु के नाम हैं? क्या समुद्रगुप्त आदि को ये नाम इसी लिये दिए गए कि गुप्त वंश के लोग भगवान् विष्णु के पूजक थे? कम से कम यह तो सिद्ध किया जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सन्दर्भ ग्रन्थ
विषय REFERENCE BOOK
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सकता है कि ये सब नाम—केवल चंद्र को छोड़कर—विष्णु के मुख्य नाम न थे। गुप्तकालीन प्रसिद्ध कोषकार अमरसिंह ने विष्णु के ये नाम दिए हैं—

विष्णुर्नारायणः कृष्णो वैकुण्ठो विष्टरश्रवाः ।
दामोदरो हृषीकेशः केशवो माधवः स्वभूः ॥१८॥
दैत्यारिः पुण्डरीकाक्षो गोविन्दो गरुडध्वजः ।
पीताम्बरोऽच्युतः शार्ङ्गी विष्वक्सेनो जनार्दनः ॥१९॥
उपेन्द्र इन्द्रावरजश्चक्रपाश्चणिश्चतुर्भुजः ।
पद्मनाभो मधुरिपुर्वासुदेवस्त्रिविक्रमः ॥२०॥
देवकीनन्दनः शौरिः श्रीपतिः पुरुषोत्तमः ।
वनमाली बलिध्वंसी कंसारातिरधोक्षजः ॥२१॥
विश्वम्भरः कैटभजिद्विधुः श्रीवत्सलाञ्छनः ।

NOT TO BE ISSUED

यादवप्रकाश प्रसिद्ध वैष्णव विद्वान् थे। उनके वैजयंती कोष में उपर्युक्त नामों के अतिरिक्त विष्णु के ये नाम और दिए हैं—

वभ्रु, त्रिककुत्, चक्री, श्रीवत्स, अरिष्टनेमि, अजित, श्रीधर, यज्ञपुरुष, मुंजकेश, मुररिपु, गदापाणि, अनंतशायी, वृंदाक, मुकुंद, धरणीधर, शतानंद, शतावर्त, युगावर्त, सुरोत्तम, कालकुंथ, रंतिदेव, हरि, असंपुष्, ब्रह्मनाभ, मधुसूदन।

शब्दकल्पद्रुम में विष्णु के १४३ नाम हैं। उनमें भी स्कंद, कुमार, घट आदि नामों का अभाव है।

गुप्तवंशी राजाओं ने अपनी संतान के नाम भगवान विष्णु के नाम पर ही रखे हों तो उन्हें विष्णु के मुख्य नामों से क्या द्वेष था? प्रायः लोग अपनी आस्थाओं को द्योतित करने के लिये मुख्य नामों को ही ढूँढा करते हैं। रहा विष्णुसहस्रनाम का प्रमाण। यदि उसे आधार माना जाय तो कदाचित् ही कोई देव-नाम बच सके। संपूर्ण विश्व उसके लिये विष्णुमय है। सभी देव उसकी विभूतियाँ हैं। शिव, ब्रह्मा, गुह सभी उसके रूप हैं। उसके आधार पर हम किसी भी देव-नाम को विष्णु का नाम कह सकते हैं।

गुप्तकालीन अमरकोष से सिद्ध है कि विष्णुसहस्रनाम का यह दृष्टिकोण सामान्यतः जनता में प्रचलित न था, यद्यपि जनता विष्णुसहस्रनाम से पूर्णतः अभिज्ञ रही होगी। तो क्या यह दृष्टिकोण केवल गुप्त राजाओं तक ही सीमित था कि वे अपने वैष्णवत्व को द्योतित करने के लिये अपने पुत्रों और अपनी रानियों तक के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नाम तो विष्णु के नाम पर रखें, किंतु इसके लिये वे विष्णु के मुख्य नामों को छोड़कर विष्णुसहस्रनाम से केवल गौण नामों को चुनें? कम से कम हमें तो गुप्त अभिलेखों में इसका विशेष आभास नहीं मिलता।

उदाहरणस्वरूप हम कुछ गुप्त सिक्कों पर विचार करेंगे। कुमारगुप्त को 'युद्ध में सिंहविक्रम' कहा गया है।[1] इसका अर्थ 'सिंह या विष्णु के समान पराक्रमी' हो सकता है। किंतु इस लेखवाले सिक्कों पर दी हुई सिंह की मूर्ति इस बात का निर्देश करती है कि इनका 'सिंह' केवल मृगराज सिंह ही है, विष्णु नहीं। इसी प्रकार जहाँ कुमारगुप्त को 'व्याघ्रबलपराक्रमः' बताया गया है वहाँ सिंह के स्थान पर व्याघ्र की मूर्ति है।[2]

इसी रीति से यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि गुप्त अभिलेखों में 'कुमार' शब्द से 'विष्णु' नहीं, 'कार्तिक' ही अभिप्रेत हैं। मयूरांकित मुद्राओं में जहाँ प्रथम कुमारगुप्त के लिये 'महेंद्रकुमार' शब्द प्रयुक्त हुआ है वहाँ मयूरवाहन कार्त्तिकेय की मूर्ति वर्तमान है। कई अन्य सिक्कों में भी कुमारगुप्त के इस कुमारत्व को ध्यान में रखते हुए ही संभवतः कुमार (कार्तिकेय) के वाहन मयूर की स्पष्ट या अस्पष्ट प्रतिकृति रखी गई है।[3] और यह भी असंभव नहीं कि कुमार कार्तिकेय के ही प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करने के लिये कुमारगुप्त ने अपने पुत्र का नाम स्कंद रखा हो। विष्णु के प्रति उसकी भक्ति का द्योतन विष्णु के किसी मुख्य नाम को चुनने से ही हो सकता था।

कुमारगुप्त ने 'महेंद्र' की उपाधि धारण की थी, किंतु यह भी संभवतः अपने विष्णुत्व के प्रदर्शन के लिये नहीं। अनेक यज्ञों का कर्ता होने के कारण कदाचित् उसने अपने को महेंद्रत्व का अधिकारी समझा हो। एक मुद्रा पर उसे 'महेंद्रकर्मा'[4] कहा भी गया है।

---

१—कुमारगुप्तो युधि सिंहविक्रमः।

—ऐलेन, गुप्त सिक्के, पृ० ८०

२—वही, पृ० ८१

३—वही, पृ० ७१, ७३, ७५

४—वही, पृ० ७५। इंद्र का एक नाम 'शतक्रतु' भी है। रघुवंश की यह कथा प्रसिद्ध ही है कि इंद्र ने अमर्ष के कारण दिलीप को केवल ९९ यज्ञ करने दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उसके सिंहमर्दन प्रकार के सिक्कों से भी यह सिद्ध नहीं होता कि वह अपने को विष्णु का अवतार मानता था। 'साक्षादिव नरसिंहः सिंहमहेन्द्रो जयत्यनिशम्'—इस अभिलेख में कुमारगुप्त की नरसिंह से उपमिति मात्र उत्प्रेक्षित है। एकीभाव इससे द्योतित नहीं होता।

कुमारगुप्त का एक नाम 'अजितमहेंद्र' भी था, और उसके लिये मुद्राओं में 'दिवं जयत्यजितः' शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। किंतु ऐसे प्रसंग में केवल 'अजित' शब्द के कारण विष्णुत्व की ध्वनि ढूँढ़ना समीचीन नहीं प्रतीत होता। क्या यह संभव नहीं कि मुद्रा के अभिलेख के रचयिता ने विष्णुसहस्रनाम का नहीं, प्रत्युत किसी इस प्रकार के प्राचीन प्रयोग का अनुसरण किया हो जैसा कौटिल्य के अर्थशास्त्र के निम्नलिखित उद्धरण में हुआ है—

ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम्।
जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगतशस्त्रितम्॥[५]

यही कथा प्रथम कुमारगुप्त के पितामह समुद्रगुप्त की उपाधियों की है। वह 'पराक्रमांकं' या 'पराक्रम' शब्द से प्रसिद्ध था।[६] उसे 'स्वभुजबल पराक्रमैकबंधु' कहकर प्रयाग-प्रशस्ति के रचयिता हरिषेण ने स्वयं इस उपाधि की सार्थकता दिखाई है। यहाँ हम चाहें तो 'पराक्रम' शब्द में 'विष्णु' को ढूँढ़ें, किंतु इसका यह अर्थ लेने की बात रचयिता के मस्तिष्क में संभवतः नहीं थी। समुद्रगुप्त को 'पृथिव्यां अप्रतिरथः' कहने का कारण भी इसी प्रयाग-प्रशस्ति में विद्यमान है। उसने अनेक दक्षिणी राजाओं को पकड़कर छोड़ दिया, उत्तरापथ के नौ राजाओं को समूल नष्ट किया, सब आटविक राजाओं को अपना परिचारक बनाया, समतट आदि के प्रत्यंत राजाओं और मालवादि गणों से कर प्राप्त किया और कुषाण, शक, सैंहलक प्रभृति से उपहार आदि प्राप्त किए। सर्वत्र उसके गरुड़ांकित शासनों की माँग और धाक थी; या संक्षेप में यों कहिए कि उसका 'प्रतिरथ' अर्थात् उससे मोर्चा लेनेवाला योद्धा कोई न था। वह वास्तव में 'अप्रतिरथ' था, क्योंकि समरांगण में अजेय था; इसलिये नहीं कि लोग उसे विष्णुरूप समझते थे।

डाक्टर छाबड़ा ने समुद्रगुप्त के अभिलेखों में 'अप्रतिरथ' शब्द को विष्णुवाची मानने के लिये विष्णुसहस्रनाम के अतिरिक्त एक और आधार लिया है। समुद्रगुप्त

---

५—प्रथम अधिकरण, नवम अध्याय।

६—द्रष्टव्य ऐलेन : गुप्त सिक्के, पृ० १-५ एवं समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


के धनुर्धारी प्रकार के सिक्कों में सामने की ओर एक तो है अविभक्तिक 'समुद्र' शब्द और दूसरा वृत्तबद्ध यह अभिलेख—

अप्रतिरथो विजित्य क्षितिं सुचरितैर्दिवं जयति ।

यहाँ 'अप्रतिरथ' को 'जयति' क्रियापद का कर्ता मानकर डा० छाबड़ा ने कल्पना की है कि 'अप्रतिरथ' यहाँ संज्ञापद है, विशेषण नहीं। उनके कहने का विशेष अभिप्राय यह है कि समुद्रगुप्त में अप्रतिरथ रूप विष्णु का अध्यारोप किया गया है। परंतु हमें यह युक्ति विशेष बलवती नहीं प्रतीत होती।

सुचरित द्वारा मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति करता है, भगवान् 'अप्रतिरथ' विष्णु के लिये तो वह कोई ऐसी प्राप्य वस्तु नहीं कि वे उसके लिये केवल यज्ञों का अनुष्ठान ही न करें, अपितु लोक में यह घोषित भी करें कि विष्णु इनके द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति कर रहे हैं। 'समुद्र' शब्द का भी अविभक्तिक या सविभक्तिक होना विशेष प्रयोजन नहीं रखता। उसकी उपस्थिति ही यह बताने के लिये पर्याप्त है कि अभिलेख उसी के विषय में है और उसके विशेषण एवं क्रियापद येनकेन प्रकारेण उसी से संबद्ध हैं। अभिलेखों के सामान्य अध्ययन से भी प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त को अपने अप्रतिरथत्व अर्थात् अप्रतिभटत्व का विशेष गर्व था। जहाँ छंद-विन्यास में 'अप्रतिरथ' शब्द ठीक न बैठा वहाँ उसने उसके समानार्थक समस्त पद 'अप्रतिवार्यवीर्य' का प्रयोग किया है। उसकी अश्वमेध प्रकारवाली मुद्राओं का अभिलेख इस प्रकार है—

राजाधिराजः पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्यप्रतिवार्यवीर्यः ।

स्पष्टतः इस लेख का और धनुर्धर प्रकार की मुद्राओं के अभिलेख का (जिसे ऊपर उद्धृत किया जा चुका है) अर्थ सर्वथा एक है। केवल छंद के भिन्न होने के कारण यहाँ 'अप्रतिरथ' के स्थान पर 'अप्रतिवार्यवीर्य' का प्रयोग किया गया है। उसके इस प्रयोग से हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि 'अप्रतिरथ' शब्द केवल समुद्रगुप्त के अद्वितीय वीर्य को द्योतित करने के लिये ही अभिलेखों में प्रयुक्त हुआ है। एरण के शिलालेख में भी 'अप्रतिरथ' के स्थान पर 'अप्रतिवार्यवीर्य' का प्रयोग उल्लेखनीय है।[७]

---

७—..........न भक्तिनयविक्रम तोषितेन
यो राजशब्द विभवैरभिषेचनाद्यैः ।
..........नितः परमतुष्टि पुरस्कृतेन
..........वो नृपतिरप्रतिवार्यवीर्यः ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ऊपर कहा जा चुका है कि कुछ कवियों ने गुप्त राजाओं को संभवतः देवतुल्य दिखलाने का प्रयत्न किया है। यह भावना तो गुप्तकाल से पूर्व ही भारत में प्रवर्तित हो चुकी थी। किंतु स्वयं गुप्त सम्राटों ने ऐसा ख्यापन करने का प्रयत्न नहीं किया। उनके सिक्के प्रायः उनके विक्रम के ही द्योतक हैं, उनके विष्णुत्व के नहीं; और ऐसा होना उचित भी था। यह ठीक प्रतीत नहीं होता कि जो सम्राट् अपने को परम भागवत आदि कहते हों वही अपने को भगवान् कहने लगें। भक्तिमार्ग में इस अहम्मन्यता के लिये स्थान नहीं है। कवियों ने उन्हें चाहे जो कुछ भी कहा हो, स्वयं उन सम्राटों ने राज्य भर में प्रचलित होनेवाली अपनी मुद्राओं द्वारा कभी ऐसा दावा नहीं किया।

मुद्राओं में प्रयुक्त अनेक उपाधियों के विष्णुत्व-प्रतिपादक अर्थ का हम निराकरण कर चुके हैं। यहाँ एकाध पर और विचार करेंगे। जिस प्रकार समुद्रगुप्त की 'पराक्रमांक', 'अप्रतिरथ' आदि उपाधियाँ थीं, उसी प्रकार उसका पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय भी 'विक्रमादित्य', 'विक्रमांक' आदि नामों से विख्यात था। उसके लिये मुद्राओं में 'चक्रविक्रम' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। चाहे इस नाम का दोहन विष्णु-सहस्रनाम से हुआ हो या नहीं, पर मुद्रा पर की मूर्तियों को ध्यान में रखते हुए संभवतः इसका यही अर्थ किया जा सकता है कि भगवान् ने उसे सुदर्शनचक्र का सा विक्रम प्रदान किया था।[८] इसी भगवत्प्रसाद के कारण वह 'देवगुप्त' और 'देवश्री' भी था।[९] उसने अपने पिता के समान दिग्विजय किया था। विदेशी शत्रुओं को परास्त कर भारत से खदेड़ दिया था। अतः वह भी समुद्रगुप्त की भाँति अपने शिलालेखों में 'स्वयं च अप्रतिरथः' कहलाने का अधिकारी था। अत्यंत भगवद्भक्त द्वितीय चंद्रगुप्त की पुत्री, वाकाटक-राज्ञी प्रभावती, जब अपने पिता को 'परम भागवत' कहती हुई उसे 'पृथिव्यां अप्रतिरथ', 'सर्वराजोच्छेत्ता' आदि विशेषणों से अभिहित करती है तो स्पष्ट है कि वह उसे पृथ्वी पर 'साक्षात् विष्णु'

---

इस संबंध में धर्मादित्य और गोपचंद के शिलालेखों में भी 'अप्रतिरथ' शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है।

८—इस मुद्रा के सामने की ओर जो दृश्य अंकित है वह अत्यद्भुत है। डा० अल्तेकर के शब्दों में इसमें द्वितीय चंद्रगुप्त विष्णु से एक दिव्य उपहार प्राप्त कर रहा है।

—नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५४, अंक १, पृ० ४–५

९—ये उसकी प्रसिद्ध उपाधियाँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं समझ रही है। चंद्रगुप्त का अप्रतिरथत्व इसी में था कि उसने विरोधी राजाओं को निर्मूल किया था और उसके निरुपम शौर्य की कीर्ति दिग्दिगंत में व्याप्त थी। चंद्रगुप्त की 'नरेंद्रसिंह', 'सिंहविक्रम', 'विक्रमांक', 'विक्रमादित्य' आदि अन्य उपाधियाँ भी बिना विष्णुत्व के आरोप के सुंदर अर्थ देती हैं। स्वयं 'चंद्र' शब्द का अर्थ 'विष्णु' हो सकता है, परंतु कवि तो संभवतः चंद्रगुप्त के 'चंद्र' में विष्णुत्व को न देखकर चंद्रमा के सौम्यत्व और सौंदर्य का ही दर्शन करते थे। अपने परम भागवत महाराजा को विष्णु का ध्वज स्थापित करते देखकर वे बराबर कह उठते थे—

चन्द्राह्वेन समग्र चन्द्र सदृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता।
प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः।[१०]

यह ऊपर बतलाया ही जा चुका है कि 'सिंहविक्रम' का अर्थ 'विष्णु के समान पराक्रमी' न कर 'मृगराज सिंह के समान विक्रमी' करना ही श्रेष्ठ है। रहा विक्रमादित्य विरुद; इसे तो समय-समय पर भारतीय राजाओं ने अपने विक्रम और तेज की स्थापना के लिये धारण किया ही है, चाहे वे वैष्णव रहें हों व अवैष्णव। यह भी ध्यान में रहे कि विक्रमादित्य प्रभृति शब्द में 'विक्रम' शब्द व्यक्तिवाचक नहीं, प्रायः भाववाचक संज्ञा पद है।

डाक्टर छाबड़ा की प्रत्येक युक्ति को लेने से लेख दीर्घकाय हो जायगा। इसकी विशेष आवश्यकता भी नहीं, क्योंकि जिन कारणों से हम उनसे सहमत नहीं हैं वे सामान्यतः ऊपर निर्दिष्ट हो चुके हैं। उनका अन्य युक्तियों में अतिदेश किया जा सकता है।

—दशरथ शर्मा

---

१०—चंद्र के महरौली लौहस्तंभ वाले लेख के अंतिम वृत्त की दूसरी और चौथी पंक्तियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चयन

## ले० क० सारंगधरसिंह का भाषण

गत २८ और २९ अक्तूबर को पटना विश्वविद्यालय में हुए हिंदीभाषी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों के कुलपति-सम्मेलन में उसके संयोजक उक्त विश्वविद्यालय के कुलपति ले० क० सारंगधर सिंह ने जो स्वागत-भाषण दिया था वह हिंदी द्वारा उच्च शिक्षा विषयक सामान्य अभिरुचि और महत्त्व का होने के कारण उसका मुख्यांश यहाँ उद्धृत है—

हमारे संविधान की ३४३ वीं धारा के अनुसार हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि को राष्ट्रीय भाषा और लिपि का स्थान दिया जा चुका है। संविधान की ३५१वीं धारा में यह भी स्वीकार किया जा चुका है कि हिंदी भाषा का समुचित विकास करना भारतीय संघ का कर्त्तव्य होगा। संविधान में अंग्रेजी भाषा को अपनी जगह पर बनी रहने देने के लिये १५ वर्षों की जो छूट दी गयी है उसका तात्पर्य, वास्तव में, यह है कि हम इस अवधि में अपनी भाषा को और भी धनी और समर्थ बना सकें, साथ ही अहिंदी-भाषाभाषी प्रांतों के लोग इस बीच हिंदी की जानकारी प्राप्त कर सकें। इस अवधि को अंग्रेजी का प्रभुत्व बढ़ाने के लिये अवकाश काल समझना भूल है। मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि अंग्रेजी भाषा और साहित्य के लिये मेरे मन में आदर का भाव है। अंग्रेजी बड़ी शक्ति-शालिनी भाषा है। विदेशों से विचार-विनिमय का हमारे लिये यह भाषा बहुत उपयोगी साधन है। इसका साहित्य भव्य है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि हम किसी पराई भाषा की गुलामी करते रहें।

अंग्रेजी हमारे विश्वविद्यालयों में आनेवाले सभी छात्रों के लिये अनिवार्य विषय बनी रहेगी, मैं यह आशा करता हूँ। किंतु राष्ट्रभाषा के स्थान पर अंग्रेजी के लिये वकालत करना हमारी मानसिक दासता का प्रमाण नहीं तो और क्या कहा जायगा? सुराज यदि कभी स्वराज्य के लिये हमारी भूख नहीं मिटा सकता तो कैसी भी समर्थ कोई पराई भाषा कभी हमारी राष्ट्रभाषा का स्थान नहीं ले सकती। मैं संसार के किसी भी ऐसे स्वतंत्र देश को नहीं जानता जहाँ कोई विदेशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भाषा दैनिक व्यवहार की भाषा हो, उस देश के नागरिकों की शिक्षा का माध्यम हो। हिंदी की मर्यादा कुछ कोरी भावुकता पर आश्रित नहीं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने पर भी शिक्षा का पूर्ण लाभ हम तभी उठा सकते हैं जब हमारी मातृभाषा, या हमारी राष्ट्रभाषा, उसका माध्यम हो। संविधान परिषद् ने हिंदी को राष्ट्रभाषा मानकर अपनी निष्पक्षता और दूरदर्शिता का ही परिचय दिया है। सभी बातों पर विचार करते हुए आज की परिस्थिति में, अपने विश्वविद्यालयों में हिंदी को शिक्षा का माध्यम बनाने की समस्या पर विचार करना और अपने विचारों को शीघ्र कार्यान्वित करना, हमारे लिये अब नितांत आवश्यक है।

भारतीय संघ की भाषा हिंदी तथा देश की भिन्न भिन्न स्थानीय भाषाओं के पारस्परिक संबंध को लेकर जहाँ तहाँ भ्रम है, निराधार शिकायतें की जा रही हैं। हिंदी का भारत की किसी भी भाषा से किसी प्रकार का वैर नहीं। हिंदी उनकी सहगामिनी होना चाहती है, सौत होना नहीं। अपने संकुचित दृष्टिकोण के कारण यदि हमने एकमत से हिंदी को अपना सहयोग नहीं दिया तो हम निर्विवाद ही अपने राष्ट्र का अहित कर रहे हैं।

प्रसन्नता की बात है कि इस क्षेत्र में विश्वविद्यालय-शिक्षा-कमीशन ने सिफारिश की है कि अंग्रेजी के बदले, किसी भारतीय भाषा को जितनी जल्दी संभव हो उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। ...विश्वविद्यालय-शिक्षा-कमीशन भारतीय विश्वविद्यालयों को एक या अधिक विषयों में भारतीय संघ की भाषा के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था के लिये अवसर देने के पक्ष में हैं। इंटर-युनिवर्सिटी बोर्ड की राय है—"किसी भारतीय भाषा को अंग्रेजी का स्थान तो लेना ही है, फिर भी शिक्षा के स्तर और शिक्षण-पद्धतियों को जिसमें किसी तरह की हानि न होने पाए, हमें इस दिशा में सावधानी से कदम बढ़ाना चाहिए।" इस कार्य में सोच-समझकर अग्रसर होने की आवश्यकता है, यह मैं मानता हूँ। कमीशन और बोर्ड ने इस प्रश्न पर अपनी सिफारिशों में जिस सावधानी से काम लिया है, मैं भी उसकी आवश्यकता स्वीकार करता हूँ। देश के किसी भी भाग पर उसकी इच्छा के बिना हिंदी को लादने के मैं बिलकुल विरुद्ध हूँ। पर मैं इस सत्य से आँखें नहीं मूँद सकता कि आज नहीं तो कल, अंग्रेजी के बदले किसी भारतीय भाषा को समूचे भारत में उच्च शिक्षा के माध्यम का स्थान लेना है, और न इस सत्य की अवहेलना कर सकता हूँ कि राष्ट्रीय, वैज्ञानिक तथा बहुतेरे दूसरे कारणों से हिंदी ही वह स्थान ग्रहण करने के योग्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मैं आशा करता हूँ कि अहिंदीभाषी क्षेत्रों के विश्वविद्यालय इस संबंध में उस उदारता और विवेक का परिचय देंगे जिसकी अपनी शिक्षा-संस्थाओं से हम आशा रखते हैं, और इन विश्वविद्यालयों को समयानुसार शिक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी को अपनाने में कोई आपत्ति नहीं होगी।

अहिंदीभाषी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों को हिंदी को ग्रहण करने के लिये समय की आवश्यकता हो सकती है, पर हिंदीभाषी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों को तो शिक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी को जल्द से जल्द स्थान देना चाहिए। इस उद्देश्य से हम सभी सहमत हैं। संघ की भाषा और स्थानीय भाषा—इनमें से किसको माध्यम बनाया जाय, यह उलझन हमारे लिये नहीं। संघ की भाषा हिंदी है और हमारी स्थानीय भाषाएँ भी हिंदी का ही कोई न कोई रूप हैं। हमें तो निर्विवाद, आश्वस्त होकर, इस काम को अपने हाथों में लेना है और पूरा करना है। यह आदर्श एक ओर जहाँ राष्ट्रनिर्माण के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाने की हमें प्रेरणा देनेवाला है वहाँ दूसरी ओर हमारी बुद्धिमानी और मिलजुलकर काम करने की हमारी योग्यता के लिये यह एक खुली चुनौती भी है। पारस्परिक सहयोग और सद्भाव के सहारे हम अपना यह महान् लक्ष्य सिद्ध कर सकेंगे, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं।

हिंदी को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने की दिशा में सबसे बड़ी कठिनाई पुस्तकों का अभाव है। हमारे सम्मेलन के विचार-विनिमय में इस समस्या का निश्चय ही प्रमुख स्थान होगा। दूसरा पेचीदा सवाल पारिभाषिक शब्दों का है। देश के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न विद्वान् विज्ञान, व्यवसाय, शासन आदि विषयों के पारिभाषिक शब्द प्रस्तुत करने का एक लंबे अरसे से प्रयत्न करते आ रहे हैं। इस गहन समस्या का आंशिक समाधान भी अभी संभव नहीं हो सका है। समाचारपत्रों से इधर मालूम हुआ है कि भारत सरकार के शिक्षा-विभाग ने पारिभाषिक शब्दों के निर्माण के लिये एक समिति बनाने का निश्चय किया है।* पर हिंदीभाषी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों को इतने से संतुष्ट होकर चुप बैठना कहाँ तक न्यायसंगत होगा, यह विचारणीय है। उन्हें इस काम को पूरा करने की जल्दी होनी चाहिए और इस प्रश्न पर गंभीरता से सोचना चाहिए। अंत में पैसे का प्रश्न आता है और यह निश्चय ही बड़ा टेढ़ा प्रश्न है। किसी सम्मिलित

* यह समिति अब बन चुकी है।—सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


योजना के अनुसार चलकर ही इस संबंध की अपनी कठिनाइयाँ कुछ दूर तक हम हल कर सकते हैं।

जिस विषय पर विचार करने के लिये हम आज यहाँ एकत्र हैं उसके संबंध में कुछ निश्चित सुझाव उपस्थित करने के लिये अब मैं आपकी अनुमति चाहता हूँ। इन प्रस्तावों में बहुतेरी त्रुटियाँ हैं, काफी अपूर्णता है, फिर भी आशा करता हूँ, अपने उद्देश्य की छानबीन और संशोधन-संवर्धन के बाद ये हमारे काम के हो सकेंगे। इस सम्मेलन की कार्यवाही के जैसे तैसे मसविदे के रूप में ही मैं अपनी ये सिफारिशें आपके आगे रख रहा हूँ :

( क ) हिंदी ग्रंथों के निर्माण-कार्य के लिये किसी सम्मिलित योजना में भाग लेनेवाले विश्वविद्यालयों के प्रयत्नों की देखभाल करने को एक केंद्रीय समिति बनाई जाय। इस समिति में योजना को स्वीकार करनेवाले सभी विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि रहेंगे। योजना की नीति निर्धारित करना, इस संबंध की सभी कार्रवाइयों का संचालन और निरीक्षण करना तथा केंद्रीय सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त करना और विश्वविद्यालयों में इस प्रकार प्राप्त की हुई रकम का आवश्यकतानुसार वितरण करना, ये सभी काम इस केंद्रीय समिति के हाथ में होंगे।

( ख ) भिन्न-भिन्न विषयों के पारिभाषिक शब्दों के लिये भी एक केंद्रीय समिति बनाई जाय। इस केंद्रीय समिति में भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों के भाषा-विज्ञान तथा हिंदी के विद्वान् रहेंगे और ये लोग समय समय पर जब जिस विषय के पारिभाषिक शब्दों पर विचार करेंगे तब उस विषय के जानकार हिंदीभाषी विद्वानों को सभी विश्वविद्यालयों से बुलाएँगे और मिलजुलकर इस कार्य को आगे बढ़ाएँगे। इस केंद्रीय समिति के अधीन अलग-अलग विश्वविद्यालयों में अलग-अलग उपसमितियाँ काम करें। प्रत्येक उपसमिति में भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा के कुछ विद्वान् रहें और साथ ही उन विषयों के हिंदी-भाषाभाषी विद्वान् भी, जिन विषयों में इस समिति को पारिभाषिक शब्द प्रस्तुत करने हैं। इसका आशय यह है कि इस प्रकार की एक एक उपसमिति का भार एक एक विश्वविद्यालय को सौंपा जाय और उसमें उसी विश्वविद्यालय के शिक्षकों को स्थान दिया जाय। मेरे जानते अखिलभारतीय हिंदी-साहित्य-संमेलन के किसी प्रतिनिधि को भी पारिभाषिक शब्दों की केंद्रीय समिति में हमें आमंत्रित करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


(ग) प्रत्येक विषय के लिये, जिसपर हमें पुस्तकों की आवश्यकता है, एक समिति हमें बनानी चाहिए। इस समिति का काम होगा कि वह पहले अपने विषय की उन पुस्तकों की सूची तैयार करे जिनका हिंदी अनुवाद उसकी राय में आवश्यक है। ऐसी पुस्तकों की तालिका भी यह समिति बनाएगी जिन्हें मूल रूप में वह लिखना चाहती है और इन पुस्तकों का ढाँचा भी वह लेखकों को बतलाएगी। अनुवादकों और लेखकों का चुनाव भी यही समिति करेगी। प्रत्येक विषय के लिये जो समिति बनेगी उसके सदस्यों का चुनाव इस योजना में भाग लेनेवाले सभी विश्वविद्यालयों के उस विषय के विद्वानों को ध्यान में रखकर होगा। पारिभाषिक शब्दों के लिये जहाँ मैं यह चाहता हूँ कि काम पहले अलग अलग विश्वविद्यालयों में हो और फिर उसका केंद्रीय निरीक्षण हो, वहाँ पाठ्य पुस्तकों के प्रणयन के संबंध में मैं चाहता हूँ कि यह प्रारंभ से ही सभी विश्वविद्यालयों से चुने हुए विशेषज्ञ विद्वानों की समिति को सौंप दिया जाय। मेरे जानते इन दोनों कामों के लिये ये दो प्रणालियाँ उपयोगी सिद्ध होंगी।

(घ) केवल डिग्री और एम० ए० परीक्षाओं की पुस्तकों का काम ही हम अपने हाथों में लें। इंटरमीडिएट परीक्षाओं की किताबों को अलग छोड़ देने की मैं जो राय दे रहा हूँ उसके दो कारण हैं। एक तो यह कि इंटरमीडिएट का पाठ्यक्रम विश्वविद्यालयों की पढ़ाई में सम्मिलित किया जाय या नहीं, इस संबंध में हमारे अलग अलग विचार हो सकते हैं। दूसरे इंटरमीडिएट की सरल पुस्तकों का काम हम प्रकाशकों के हाथ बिना किसी क्षति के छोड़ सकते हैं।

(च) जब पुस्तकें तैयार हो जायँ तो लेखकों और ग्रंथों का चुनाव करनेवाली समिति उन्हें केंद्रीय निरीक्षण-समिति के पास भेज दे। फिर केंद्रीय निरीक्षण-समिति इन पुस्तकों के प्रकाशन का उत्तरदायित्व भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों को सौंप दे। ऐसा करते समय केंद्रीय समिति पुस्तकों की छपाई का व्यय और उनसे होनेवाली आय, इन आर्थिक पहलुओं का भी ध्यान रखे और यदि बहुत कम बिकनेवाली कोई पुस्तकें किसी विश्वविद्यालय को दी जायँ तो उसे खास इस काम के लिये एक निश्चित रकम भी केंद्रीय समिति अपने कोष से दे।

(छ) विश्वविद्यालय अपने राज्यों की सरकारों से आर्थिक सहायता के लिये अलग अलग प्रयत्न करें।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


( ज ) पाठ्य पुस्तकों को सम्मिलित रूप से तैयार करने की कोई योजना इसी आधार पर बनाई जा सकती है कि योजना में भाग लेनेवाले विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में भी समानता रहेगी। लेखकों और विद्वानों के निर्वाचन के लिये जो विशेषज्ञ समिति बनाई जायगी वही इस काम का भी उत्तरदायित्व ले सकती है।

हमारे मार्ग की कठिनाइयाँ अनेक हैं, किंतु हमारा उद्देश्य महान् है और पारस्परिक सहयोग के सहारे हम निश्चय ही इसमें सफल हो सकेंगे। कुछ लोगों की दृष्टि में संभव है, हमारा कार्य हमारी शक्ति के बाहर प्रतीत हो, किंतु हम यह क्यों भूलें कि साहस ही सफलता की जननी है।

[ भाषण में दिए गए सुझावों के आधार पर उक्त सम्मेलन ने पाठ्य ग्रंथ तैयार कराने के लिये केंद्रीय समिति बनाने तथा पारिभाषिक शब्द-संग्रह के लिये भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयों पर भिन्न भिन्न विषयों का उत्तरदायित्व बाँट देने की सिफारिश की। —सं० ]

## सम्मेलन के सभापति का अभिभाषण

अखिल भारतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के कोटा अधिवेशन के सभापति श्री जयचंद्र विद्यालंकार के अभिभाषण ( २६ दिसंबर, १९५० ) के कुछ मुख्य अंश यहाँ उद्धृत हैं—

### *भारतीय दृष्टि से मौलिक अध्ययन की आवश्यकता*

सन् १९१४ से ही काँगड़ी गुरुकुल में आधुनिक विज्ञान के पाठ्य ग्रंथ हिंदी में तैयार कराने का प्रयत्न आरंभ किया गया। उस प्रसंग में दो चार बरस में ही यह अनुभव हो गया कि भारतीय भाषाओं में अभीष्ट वैज्ञानिक ग्रंथ युरोपी भाषाओं के सीधे अनुवाद से तैयार नहीं हो सकते। वह अनुभव अत्यंत महत्त्व का था और आज उसे हृदयंगत किए बिना हम एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते।

उदाहरण रूप में हमें अपनी भाषाओं में इतिहास-ग्रंथ चाहिएँ। पर युरोपियों के लिखे इतिहासों के अनुवादों से हमारा काम नहीं चलता। भारतीय विद्वान् देश-विदेश के इतिहास का मूल स्रोतों से भारतीय दृष्टि से अध्ययन-मनन कर अपने परिपक्व विचारों को दर्ज करें तभी उनकी कृतियाँ हमारी इतिहास वाङ्मय की आवश्यकता को पूरा कर सकती हैं। भारतीय दृष्टि से लिखे इतिहास की माँग इस समय से देश में बराबर बनी रही और उस प्रकार के अध्ययन के लिये कोई सुविधा न होते हुए भी अनेक निष्ठावान् विद्वान् इस दिशा में काम करते रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भारतीय इतिहास के पहले ही अध्याय में हमारे लिये प्रश्न उठता है कि हिमालय की सबसे बड़ी चोटी का नाम क्या है। अंग्रेजों ने एक अंग्रेज का नाम उसपर मढ़ा है और दुनिया को यह दिखाने की कोशिश की है कि परलोकचिंतक भारतीयों ने अपने देश की उस महान् प्राकृतिक विभूति पर कभी ध्यान ही नहीं दिया। पर नंगा पर्वत से नमचा बरुआ तक हिमालय की प्रत्येक चोटी को जिन भारतीयों ने नाम दिए थे वे उसकी सबसे बड़ी चोटी को ही देखने से चूक जाते, यह बात साधारण बुद्धि से मानने की न थी और जर्मन, स्वीड और फ्रांसीसी विद्वान् भारत के अंग्रेज शासकों को वह नाम छिपाने का दोष देते रहे। हमारे देश की मैकाले-युनिवर्सिटियों में वर्ड्सवर्थ और टेनिसन की अंग्रेजी पर खोजें होती रहीं, पर अपने देश के इस सीधे से प्रश्न पर ध्यान देने की किसी को न सूझी। अंत में "भारतभूमि और उसके निवासी" में यह सुझाया गया कि दूधकोसी दून में जाकर वह नाम खोजना चाहिए और एक अकिंचन सत्यान्वेषी ने सरगमाथा का नाम खोज निकाला जिसकी सचाई अन्य अनेक स्रोतों से प्रमाणित हुई। बबूराम खरदार ने अपनी यह खोज एक भारतीय भाषा की पत्रिका[1] में प्रकाशित की, अतः हमारे देश के उन साहब लोगों ने, जो अंग्रेजी की खिड़की में से ही दुनिया को देखते हैं, पिछले दस बरस से अपने को इस ज्ञान की किरण से वंचित रखा।

भारत के इतिहास को अंग्रेजों ने हिंदू, मुस्लिम और ब्रितानवी युगों में बाँटा था। पर जैसा कि मैंने इस सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन (१९३६) की इतिहास परिषद् के अध्यक्षीय भाषण में कहा था, "यदि इतिहास का प्रयोजन राष्ट्रीय जीवन के क्रमविकास को टटोलना है तो यह युगविभाग उस विकास की सर्वथा उपेक्षा ही नहीं करता, प्रत्युत उसका गलत और भ्रांत चित्र उपस्थित करता है।" उसका ठीक चित्र उपस्थित करने के लिये सर्वथा नए अध्ययन की आवश्यकता है। हमारे सल्तनत युग (११९४-१५०९) का इतिहास केवल फारसी-अरबी सामग्री के आधार पर कहा गया है, पर उसकी संस्कृत-देसीभाषा सामग्री भी उतने ही महत्त्व की है। दोनों सामग्रियों के सामंजस्यात्मक अध्ययन की माँग बराबर बनी है। राखालदास बनर्जी और गौरीशंकर ओझा ने उस प्रकार के अध्ययन के बढ़िया नमूने भी पेश किए हैं। भारतीय इतिहास के ब्रितानवी युग के वृत्तांत में अंग्रेजी

१—काठमांडू से प्रकाशित पर्बतिया पत्रिका "शारदा", १९४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लेखकों ने किस प्रकार सत्य की हत्या की है और किस प्रकार भारतीय दृष्टि से नए अध्ययन की आवश्यकता है, यह वामनदास वसु ने दिखाया है। वैसे अध्ययन के लिये दर्जनों सत्यान्वेषकों की आवश्यकता है।

इतिहास को छोड़कर अब हम समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र और राजशास्त्र पर ध्यान दें। इन विषयों पर युरोपी भाषाओं में जो ग्रंथ हैं, उनके सिद्धांत युरोपी समाज के अनुभव, युरोपी इतिहास और युरोपी संस्थाओं को लक्ष्य में रखकर निश्चित हुए हैं। जैसे वैयक्तिक संपत्ति का विकास कैसे हुआ, पूँजीपति और श्रमी वर्गों के संबंधों की परिणति कैसे हुई, विवाह की संस्था कैसे उगी, नगर-राष्ट्रों से बड़े राष्ट्र कैसे बने, इस प्रकार के प्रश्न उपस्थित होने पर युरोपी अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजशास्त्र यूनान के अनुभव से आरंभ करते और रोम और मध्यकालीन युरोप के जीवन-विकास को टटोलते हुए आधुनिक युरोप तक पहुँचते हैं। उनके लिये वैसा करना ठीक है। किंतु जब उनके ग्रंथों का शब्दानुवाद भारतीय भाषाओं में पेश किया जाता है, तब भारतीय पाठक को वह वस्तु अपनी नहीं लगती। उसके मन में आश्चर्यपूर्वक प्रश्न उठता है कि क्या भारत में संपत्ति-वर्ग-संबंधों, विवाह और राष्ट्रों का विकास नहीं हुआ, क्या भारत का ज्ञान इन विषयों में शून्य है। भारतीय भाषाओं में इन शास्त्रों की जड़ तभी जमेगी तब हमारे विद्वान् अपने देश के इतिहास, अपनी संस्थाओं और अपने स्वतंत्र चिंतन पर भारतीय सामाजिक विज्ञानों को खड़ा करेंगे। हो सकता है इस भारतीय दृष्टि के अध्ययन से वे सिद्धांत और भी पुष्ट और स्पष्ट हो जायँ जिन्हें युरोपी आचार्यों ने स्थापित किया है। हो सकता है हमें उनमें कुछ फेरफार करना पड़े। किंतु हर दशा में भारतीय जनता को इन विषयों में तभी जगाया जा सकता है जब हम भारतीय सामग्री के भारतीय दृष्टि से अध्ययनपूर्वक भारतीय भाषाओं में इन्हें पेश करें।

यह सोचा जा सकता था कि इतिहास और सामाजिक विज्ञानों पर यह बात लागू होगी, किंतु भौतिक विज्ञान तो सब देशों के लिये एक से हैं, अतः उनके ग्रंथों का युरोपी भाषाओं से सीधा अनुवाद किया जा सकेगा। पर ध्यान देने से प्रकट हुआ कि वह भी नहीं हो सकता। उदाहरण के लिये, जैसा मैंने बीरबल साहनी अभिनंदनग्रंथ में लिखा है, "वनस्पतिशास्त्र पर युरोपी भाषाओं में जो कृतियाँ हैं उसके उदाहरण प्रथमतः और मुख्यतः युरोपी वनस्पति के हैं, उनकी परिभाषाएँ युरोपी विचार की परंपरा के अनुसार निश्चित हुई हैं, और उनमें वैज्ञानिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विचार का विकास टटोला जाता है तो युरोप के वनस्पतिविषयक विचार का ही। भारतीय भाषाओं में प्रामाणिक और स्वाभाविक वनस्पतिशास्त्र तैयार हो सके, इससे पहले भारतीय वनस्पतियों के विस्तृत और बारीक अध्ययन की, उस अध्ययन के परिणामों के संकलन की, तथा भारतीयों के पुराने वनस्पतिविषयक और उससे संबद्ध ज्ञान और विचार के ऐतिहासिक शृंखला में संकलन और मथन की आवश्यकता है।"

ठीक यही बात समूचे जीवशास्त्र ( बायोलॉजी ) पर लागू होती है। आयुर्वेद को लीजिए। हमारे आयुर्वेद ने अब तक जो पाश्चात्य आयुर्वेद से पछाड़ नहीं खाई उसका कारण केवल जनता का अंधविश्वास नहीं है। जहाँ तक शरीर की रचना और उसकी भीतरी कार्यप्रक्रियाओं का प्रश्न है, उस संबंध में यदि हमारा आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञान दो विरोधी बातें कहते हैं तो दोनों ठीक नहीं हो सकतीं। उस अंश में भारतीय आयुर्वेद को निरर्थक समझा जायगा। किंतु त्रिदोष-सिद्धांत जैसी अनेक स्थापनाएँ उसमें ऐसी हैं जो व्यवहार में बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं और जिन्हें आधुनिक विज्ञान स्पष्ट गलत नहीं कह सकता। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से उनकी ठीक ठीक व्याख्या के लिये बड़े परिश्रम और मनन की आवश्यकता है। दूसरे, जिस अंश में भारतीय आयुर्वेद की स्थापनाएँ गलत सिद्ध हो भी चुकी हैं उस अंश में भी उसका ऐतिहासिक मूल्य बहुत ही ऊँचा है, और आज विज्ञान के अध्ययन में विज्ञान के इतिहास पर बहुत बल दिया जाता है। ... भारतीय भाषाओं में यदि हम नव्य आयुर्वेद का वाङ्मय उपस्थित करना चाहते हैं तो हमें प्राचीन आयुर्वेद की ऐतिहासिक तहबंदी सावधानी से करनी होगी, भारतीय ओषधियों के गुणों और प्रभावों के निर्णय के लिये अनेक परीक्षणालय स्थापित करने होंगे, उन परीक्षणालयों के परिणामों को प्रामाणिक रूप से दर्ज करने की परिपाटी चलानी होगी, और विदेशों की इस विषय की ज्ञान-प्रगति के साथ अपनी ज्ञान-प्रगति का बराबर सामंजस्य करना होगा।

× × ×

जीव जगत् को छोड़ अब हम जड़ जगत् की ओर चलें। भूगर्भशास्त्र पर यदि हमें किसी भारतीय भाषा में लिखना है तो भारत की मिट्टियों-चट्टानों के उदाहरणों को उनमें प्रथम स्थान देना होगा। उनके विषय में काफी खोज हो चुकी है और अनेक अच्छी कृतियाँ अंग्रेजी में हैं। पर उनके अनुवाद भी हम किसी भारतीय भाषा में करना चाहें तो पहले अनेक प्रकार के पत्थरों और चट्टानों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित नामों का संग्रह करना होगा। ग्रेनाइट, नीस, सोपस्टोन, कोबाल्ट आदि भारत के जिन प्रदेशों में पाए जाते हैं, वहाँ की जनता इनके नाम भी जानती है, जैसे तेलिया उरगा, गोरा पत्थर, सविता आदि। पर जनता में प्रचलित ये नाम कोशों में प्रायः नहीं पाए जाते, और इन नामों को खोजे और बटोरे बिना किसी भारतीय भाषा में भूगर्भशास्त्र पर अच्छा ग्रंथ नहीं लिखा जा सकता।

शुद्ध विज्ञान पर लिखना भी भारतीय परिस्थिति और इतिहास से बचकर नहीं हो सकता। विज्ञान और दर्शन का विचारक्षेत्र प्रायः एक ही है। दोनों में अंतर यह है कि विज्ञान में जहाँ केवल परखे सिद्धांतों का समावेश होता है, वहाँ दर्शन में तर्कना-मूलक विचार भी रहता है। दोनों में बहुत कर समान परिभाषाएँ प्रयुक्त होती हैं। भारत में दार्शनिक चिंतन काफी से अधिक हो चुका है। नए वैज्ञानिक चिंतन का उस पुराने चिंतन के साथ समन्वय किए बिना उसकी परिभाषाएँ ठीक से निश्चित नहीं हो पातीं। इसका एक अच्छा उदाहरण यह है कि अब तक जिन वैज्ञानिक परिभाषाओं को हिंदी में चलाने का यत्न किया गया उनमें से सुधाकर द्विवेदी की निश्चित की हुई गणित की परिभाषाएँ सबसे अधिक परिपक्व सिद्ध हुईं, कारण कि वे भारत के पुराने और विश्व के नए ज्ञानचिंतन का पूरा सामंजस्य कर निश्चित की गई थीं। इस अंश में तुलनात्मक अध्ययन की दिशा ब्रजेंद्रनाथ शील ने १६१५ में दिखाई थी।

यह जो विवेचना मैंने आपके सामने की है, इसके तत्त्व सन् १९१० से १९१६ तक काँगड़ी गुरुकुल में अच्छी तरह पहचान लिए गए थे...।

× × ×

*भारत की एक लिपि*

सन् १९०५ के स्वदेशी आंदोलन के समय से यह बात स्पष्ट रूप से हमारे राष्ट्रीय विचारनेताओं के सामने है कि हमारे स्वप्नों के भारत और बृहत्तर भारत की एक ही लिपि देवनागरी हो सकती है। बंगाली विचारनेता शारदाचरण मित्र ने एक लिपिविस्तार-परिषद् की स्थापना की और 'देवनागर' नाम का पत्र निकाला। १९२३ में मुलतान में पहला पंजाब प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन होने पर राजा महेंद्रप्रताप ने मुझे एक पत्र में लिखा कि एशिया की सब भाषाओं को नागरी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लिखने की पद्धति बनानी चाहिए, उसके लिये यह आवश्यक है कि नागरी-प्रेमी कुछ लाख रुपए खर्च करके उन सब भाषाओं के वाङ्मय के चुने रत्नों को नागरी में सुसंपादित कर निकालें। महेंद्रप्रताप के उस पत्र से जो मेरे पास सुरक्षित है, पता चलता है कि वे उस समय भी यह देख रहे थे कि तुर्की के नेता अरबी लिपि को छोड़नेवाले हैं और ईरानी और अफगान भी उससे ऊब रहे हैं। भारतीय क्रांतिकारियों की दूरदृष्टि का वह नमूना है।

महात्मा गाँधी के मन में भी यह आकांक्षा रही कि भारत की एक लिपि देवनागरी हो जाय। यदि वे उर्दू को समान पद देने के चक्कर में न फँस जाते तो शायद इस दिशा में कुछ कर पाते। १९३७ में भारतीय साहित्य परिषद् के मद्रास अधिवेशन में इस विषय की चर्चा उठी तो च० राजगोपालाचारी ने कहा, विभिन्न प्रांतों के लोगों को नई लिपि सिखाना कितना कठिन होगा। गाँधी जी ने कहा, प्रांतों में केवल ७% आदमी शिक्षित हैं, जब ९३% को अक्षर-ज्ञान देना ही है तो क्यों न देवनागरी द्वारा दिया जाय। इससे यह समझना चाहिए कि यदि यह सुधार करना है तो इसे करने की पूरी योजना और तैयारी हमें शीघ्र से शीघ्र कर लेनी चाहिए, अन्यथा शिक्षा का व्यापक प्रसार हो जाने पर इसे करना कठिनतर होता जायगा।

महेंद्रप्रताप की योजना की ओर पग उठाते ही हमें एक और कार्य करना होगा। ब्राह्मी वर्णमाला संस्कृत के लिये बनी थी। आज जो भाषाएँ उसमें लिखी जाती हैं उनमें कई नए उच्चारण हैं, पर उनके चिह्न नहीं हैं। उदाहरण के लिये तेलुगु में ह्रस्व एकार है। मराठी, पश्तो, कश्मीरी, पर्वतिया, असमिया में स से मिलता हुआ च है। स्वयं हिंदी में हम संस्कृत ऐ (अइ) और हिंदी ऐ (अय) का अंतर नहीं करते, और न अकार-सहित व्यंजन और अकार-रहित व्यंजन का। इन अंशों में हमारी लिपियाँ ध्वनि-सूचक और विज्ञान-सम्मत नहीं रहीं। यदि हम भारत या एशिया की सब भाषाओं की ध्वनियों का बारीकी से विश्लेषण किए बिना नागरी में इन भाषाओं को लिखने में प्रवृत्त होंगे तो कुछ ही दिन में चपला मच जायगा। हमारे देश में सिद्धेश्वर वर्मा, सुनीतिकुमार चटर्जी और विश्वबंधु शास्त्री जैसे ध्वनिविज्ञान के पंडित हैं जो प्रामाणिकता से यह विश्लेषण कर सकते हैं। इस सम्मेलन के ग्वालियर अधिवेशन (१९३३) में मेरे प्रस्ताव पर यह कार्य करना स्वीकृत हुआ था, पर सम्मेलन ने तब इसका ठीक महत्त्व न समझा। आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि हमारे मन में भारत और बृहत्तर भारत में एक ही लिपि देखने की आकांक्षा है तो अब एक दिन भी इस कार्य को न टालना चाहिए।

× × ×

*तब करना क्या है ?*

भारती की सेवा हमें केवल विनोद या गौरव के लिये नहीं करनी है, प्रत्युत उसके बिना तो आज हम जीवन-संघर्ष में भी सफल नहीं हो सकते। काव्य भले ही विनोद के लिये हो, शास्त्र तो आज हमारे जीते रहने के लिये आवश्यक है। हम राष्ट्र को जाग्रत् और शक्त बनाने की बातें भी कर लेते हैं, उसके उद्धार की बड़ी बड़ी योजनाएँ भी बनाते हैं, पर विदेशों की भाषाओं में पड़ा हुआ ज्ञान हमारी जनता को जाग्रत् या शक्त नहीं कर सकता।

हमारे पुरुत्थान के ८५-८७ वर्षों में और इस सम्मेलन द्वारा लक्ष्य की घोषणा के बाद के ४० वर्षों में जो काम हम नहीं कर सके, उसे अब हम १५ वर्षों में कर लेना चाहते हैं। सुविचारित योजना के बिना वह १५० वर्षों में भी नहीं हो सकता। किस प्रकार के आयोजन से वह हो सकता है, सो भी मैंने स्पष्ट करने का यत्न किया।...हमारी लिपि संबंधी आकांक्षाएँ भी अध्ययन के आयोजन से ही पूरी हो सकती हैं।

यह अध्ययन सहोद्योगी पद्धति पर होगा जिसमें अनेक कर्मी विभिन्न मार्गों से, किंतु एक ही लक्ष्य की ओर चलेंगे। कम से कम २००-३०० श्रमियों को इसमें अपना जीवन आरंभ से ही लगाना होगा। यह कोई कठिन कार्य तो नहीं है, यदि देश इसे करना चाहे। जिन्हें हम कल तक गुलामखाने कहते थे, पर आज जिनसे हम कल की सब बातें भूलकर चिपट गए हैं, वैसी युनिवर्सिटी कहलानेवाली बीस के लगभग संस्थाएँ देश में हैं, और प्रत्येक में प्रायः उतने कर्मी काम करते हैं। जिस अंग्रेजी से हमें छुट्टी लेनी है उसमें बोलनेवाली बीस संस्थाएँ यदि हम चला सकते हैं, तब जिस हिंदी को हमें अभिषिक्त करना है उसमें काम करनेवाली वैसी एक संस्था भी नहीं चला सकते ? यदि कोई रुकावट है तो हमारा शासन चलानेवाले नेताओं की इच्छा की।

× × ×

पर यदि आज हम सरकारी और अर्धसरकारी क्षेत्र में कुछ नहीं कर पाते तो उसके बाहर ही क्यों न करें ? क्यों न पुरानी राष्ट्रीय संस्थाएँ ही मिलकर इस ज्ञान-प्रतिष्ठान की नींव रखें और क्यों न हमारा यह सम्मेलन ही उसमें पहल करे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इन संस्थाओं के पास साधन अवश्य कम हैं, पर अनेक संस्थाओं के सहयोग से आरंभ करने योग्य साधन मिल ही सकते हैं। साहित्य के प्रोत्साहन के लिये अनेक छोटी-बड़ी संस्थाएँ और दानी सज्जन कुछ न कुछ यत्न करते ही रहते हैं। आज निरे प्रोत्साहन का दिन गया, आयोजन का दिन आया है, और वे सब संस्थाएँ और व्यक्ति अपने छोटे-मोटे साधनों को भी इकट्ठा कर दें तो उनसे कुछ कहने योग्य रचना हो सके।

आज तक जो हम केवल प्रोत्साहन से अपने वाङ्मय-भंडार की पूर्ति करना चाहते रहे हैं उसमें हम बहुत सफल नहीं हुए और हमने अनेक सुनहरे अवसर हाथ से जाने दिए हैं। ओझा, हीरालाल, जायसवाल जैसे विद्वानों में से एक एक के सहारे एक एक सच्चा ज्ञानपीठ खड़ा हो सकता था, उनमें से एक एक स्रोत से एक एक जीवनदायिनी धारा चल सकती थी, यदि हमने उनका मूल्य पहचाना होता।

× × ×

आज हम पंद्रह या चौदह वर्ष की योजना की बात कर रहे हैं। क्या मैं अपनी चौदह वर्ष पुरानी प्रतिज्ञा को दोहराऊँ? वह प्रतिज्ञा यों है—"मेरा तो यह विश्वास है कि आगामी पंद्रह बरस के भीतर हिंदी साहित्य के क्षेत्र में हम (स्वच्छ चिंतन की) उस धारा को पूरे प्रवाह से बहता देख सकते हैं यदि आज (कुछ) दृढ़व्रती विद्यार्थी इसी कार्य को अपने जीवन की एकमात्र साध बनाकर इसमें जुट जायँ। राष्ट्र को उस टुकड़ी के लिये रसद-बारूद और हथियारों का प्रबंध करना होगा।...क्या हम...सरस्वती का यह सच्चा मंदिर...खड़ा नहीं कर सकते?...यदि आज...आप इस मंदिर की स्थापना का संकल्प कर लें, तो विश्वास मानिए, आज से पंद्रह बरस के भीतर...आप अपने हिंदी के क्षेत्र में स्वच्छ और सबल...चिंतन की धारा बहती देख सकेंगे, और भारतीय राष्ट्र अपने विस्मृत आत्मा को फिर पहचानने लगेगा।"

## हिंदी साहित्य सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव

सम्मेलन के अड़तीसवें अधिवेशन (कोटा) में सब ग्यारह प्रस्ताव स्वीकृत हुए जिनमें पहले तीन शोक प्रस्ताव हैं, सातवें में भारत सरकार से सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों के अवसर पर रेल भाड़े में सुविधा की माँग की गई है, दसवें में हैदराबाद अधिवेशन में स्वीकृत चौदहवें प्रस्ताव को समाप्त कर परीक्षाओं का प्रबंध


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वर्तमान नियमावली के अनुसार करने का निश्चय किया गया है और ग्यारहवें में नियमावली तैयार करने का आदेश दिया है। शेष प्रस्ताव संख्या-क्रम से इस प्रकार हैं—

४—सम्मेलन का मत है कि अंग्रेजी राज्य-काल में स्थापित हुए विश्वविद्यालयों की शिक्षा-पद्धति राष्ट्रीयता तथा संस्कृति की भावना को उत्पन्न करने में असमर्थ है। केवल भाषा-माध्यम बदल देने से उसका राष्ट्रीयकरण नहीं होगा। अतः यह सम्मेलन भारतीय विश्वविद्यालयों के संचालकों से अनुरोध करता है कि वे भारतीय भाषाओं के माध्यम से ऐसी शिक्षापद्धति और योजना अपनाएँ, जिससे भावी स्नातकों में राष्ट्र-सेवा, भारतीय संस्कृति और नैतिकता तथा समाज-संरक्षण की भावना प्रबुद्ध हो।

५—केंद्रीय शिक्षा सचिवालय द्वारा हिंदी पारिभाषिक शब्दावली निर्माण के लिये जो आयोजन किया गया है, उसका सिद्धांततः तो यह सम्मेलन स्वागत करता है, परंतु इस कार्य के लिये जो समिति बनाई गई है, उसका रूप इस सम्मेलन की सम्मति में असंतोषजनक और अनुपयुक्त है। उस समिति में भारतीय परिभाषाएँ बनानेवालों में एक भी हिंदी का विद्वान् या ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसे हिंदी में वैज्ञानिक विषयों पर लिखने का अनुभव है। साथ ही भारतीय संघ के शिक्षा मंत्री ने जो आदेश समिति को दिया है, वह भी दोषयुक्त तथा संविधान की भावनाओं के प्रतिकूल है। हिंदी पारिभाषिक शब्दावली 'लातीनी' या अंग्रेजी पर आश्रित न होकर स्वभावतः देशी अर्थात् संस्कृत से उद्भूत होगी। शिक्षामंत्री के आदेश में संविधान की भावना का प्रत्यक्ष विरोध सम्मेलन की दृष्टि में नीतिविरुद्ध तथा निराशाजनक है। यह सम्मेलन माँग करता है कि वर्तमान समिति के स्थान पर ऐसी समिति नियुक्त की जाय, जिसमें संस्कृत तथा भारत की प्रादेशिक भाषाओं के विद्वान् रहें और हिंदी के एक से अधिक विशेषज्ञ रहें, जो हिंदी साहित्यिक जगत् को मान्य हों।

६—सम्मेलन का यह अधिवेशन अनुभव करता है कि साहित्य-निर्माण कार्य के लिये हिंदी साहित्य-निर्माण कार्य में प्रसिद्ध संस्था नागरीप्रचारिणी सभा काशी का सहयोग प्राप्त किया जाय। अतः यह अधिवेशन निश्चय करता है कि सम्मेलन नागरीप्रचारिणी सभा को साहित्य-निर्माण कार्य में अपने सहयोग के लिये आमंत्रित करे और आमंत्रण स्वीकार होने पर स्थायी समिति तदनुसार व्यवस्था करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


७—सम्मेलन का यह अधिवेशन इस बात पर असंतोष प्रकट करता है कि यद्यपि भारत सरकार ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में ग्रहण कर लिया है तथापि उसने इस ओर ऐसी प्रगति नहीं दिखलाई है कि पंद्रह वर्ष के बाद भी वह उस पद पर प्रतिष्ठित हो। सम्मेलन का यह अनुरोध है कि भारत सरकार निम्नलिखित कार्यों को अविलंब ही करे :—

(क) सभी मंत्रणालयों एवं दूतावासों के पत्रों पर नागरी लिपि में भी उनके नाम अंकित हों।

(ख) मंत्रियों एवं राज्यपालों और राज्यदूतों के कमरों की तख्तियों और नाम के कार्डों पर नागरी लिपि का भी व्यवहार किया जाय।

(ग) पासपोर्टों पर नागरी लिपि का भी व्यवहार किया जाय।

(घ) रिजर्व या इंपीरियल तथा सरकार द्वारा सम्मानित अन्य बंकों और एकाउंटेंट आफिस द्वारा नागरी में हस्ताक्षर एवं प्रमाणपत्र आदि स्वीकृत किए जायँ।

(ङ) रेलवे, डाक, रेडियो आदि विभाग के फार्म हिंदी में भी छपवाए जायँ।

८—राष्ट्रभाषा हिंदी के माध्यम से देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में उच्चतम कक्षाओं तक की शिक्षा एवं परीक्षा की समुचित व्यवस्था के उद्देश्य से राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद की प्रेरणा से हिंदी में विभिन्न विषयों के प्रामाणिक एवं उपयुक्त ग्रंथ प्रस्तुत और प्रकाशित करने के लिये पटना विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में आयोजित विभिन्न विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों के सम्मेलन ने जो सार्वदेशिक योजना बनाई है उसके संबंध में यह सम्मेलन उपर्युक्त योजना के संचालकों से अनुरोध करता है कि वे अपने उद्देश्य की सम्यक् सिद्धि के लिये विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के साथ साथ देश के विभिन्न भागों में कार्य करनेवाले अन्यान्य विद्वानों तथा साहित्यकारों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करें और इस कार्य में आवश्यकतानुसार हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, राज्य-सम्मेलनों तथा देश की अन्य सुप्रतिष्ठित हिंदी संस्थाओं की सहायता का भी उपयोग करें।

## निर्देश

### *हिंदी*

आर्यों का आदि देश कहाँ था ?—हेमचंद्र जोशी; "नयासमाज", दिसंबर १९५० [ आर्य कास्पियन सागर (जर्मन कास्पिशेस मेर, सं० काश्यप मेरु) के तट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर रहते थे। सप्तसिंधु आमू और सर नदियों के पास था। काश्मीर आने पर अपने मूल स्थान के नाम पर आर्यों ने इसका नाम भी काश्यपमेरु ( काश्मीर ) रखा। ]

एक प्राचीन नगर की सैर—पू० सोमसुंदरम्; "विशालभारत", अक्टूबर १९५० [ प्राचीन तमिल साहित्य के पंचमहाकाव्यों में शिलप्पधिकारम् का प्रथम स्थान है। समय तीसरी या चौथी शती, रचयिता चेर राजवंश के महामुनि इलंगो। इसमें चोल की राजधानी पुहार के वर्णन से तत्कालीन समृद्ध भारतीय संस्कृति का पता लगता है। ]

एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रसार—हरिदत्त वेदालंकार; नयासमाज, अक्टूबर १९५० [ श्रीलंका, मध्यएशिया, चीन, कोरिया, जापान, तिब्बत, दक्षिणपूर्व एशिया, चंपा, सुवर्णद्वीप, मलाया, बोर्नियो, बालिद्वीप में भारतीय संस्कृति के प्रसार का संक्षिप्त परिचय। ]

चंद्रगुप्त और चाणक्य—ज्योतिप्रसाद जैन; "जैनसिद्धांत-भास्कर" भाग १७ अंक १ [ प्राचीन जैन अनुश्रुति और जैन साहित्य के आधार पर दोनों का इतिहास। चाणक्य के पिता चणक जैन श्रावक, स्त्री यशोमती श्यामासुंदरी। चंद्रगुप्त बिंदुसार को राज्य देकर अपने धर्मगुरु जैनाचार्य भद्रबाहु के साथ दक्षिण गया और चंद्रगिरि पर जैन मुनि के रूप में तप करके मरा। ]

छप्पय छंद (एक समीक्षा)—विपिनविहारी त्रिवेदी; "विशालभारत", अक्टूबर १९५० [ दसवीं शती के पूर्व के ग्रंथों में अप्राप्त। दसवीं के प्राकृत ग्रंथ 'स्वयंभूछंदः' में लक्षण दिया है। इसके बाद भिन्न-भिन्न ग्रंथों में इसका वर्णन। नागरीप्रचारिणी सभा की एक खंडित हस्तलिखित पुस्तक में इस छंद के ७१ भेदों के उदाहरण हैं। ]

जैन ग्रंथों में क्षेत्रमिति—राजेश्वरीदत्त मिश्र; जैनसिद्धांत-भास्कर, भाग १७ अंक १ [ षट्खंडागम में क्षेत्रानुगम भाग है और केवल गणित के भी ग्रंथ हैं; यथा महावीराचार्य का गणितसार संग्रह और उमास्वाति का क्षेत्रसमास। लेख में त्रिभुज, चतुर्भुज और वृत्तगणित का वर्णन करते हुए यूनानी गणित से मेल और अंतर दिखाया गया है। ]

जोगीड़ा गान का ऐतिहासिक महत्त्व—श्याम परमार; "आजकल" जूलाई १९५० [ जोगीड़ा में गालियाँ ही नहीं हैं, जैसा डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


है। यह जोगियों का चिकारे पर का गान है। उज्जैन के जोगीड़ों का उदाहरण देकर बताया गया है कि यह गान काव्यात्मक भावों से शून्य नहीं है। ]

दत्तात्रेय संप्रदाय का दार्शनिक मतवाद—गोपीनाथ कविराज, "कल्याण", सितंबर १९५० [ पुराणादि में दत्तात्रेय के उल्लेखों का निर्देश करते हुए इनका इतिहास तथा इनकी रचनाओं और दर्शन का विवरण दिया गया है। ]

दर्शनशास्त्र का स्वरूप—राजेंद्रप्रसाद; "साहित्य" भाग १ अंक १ [ स्वरूप, परिभाषा, व्यावहारिकता, विशेषता, पश्चिम और पूर्व में भेद का विवेचन। ]

द्विपद नाम पद्धति—लोकेशचंद्र; "विशालभारत", अक्टूबर १९५० [ पारिभाषिक शब्दों का लैटिन से हिंदी में अनुवाद करने में, यदि शब्द विशेष्य विशेषण संयुक्त हों तो, लैटिन की भाँति विशेष्य के बाद विशेषण नहीं, बल्कि विशेषण तब विशेष्य रखना चाहिए, जैसा अंग्रेजी, जापानी, तमिल, मलयालम्, सिंहली, बंगला, गुजराती आदि में होता है। ]

नागरकवृत्त—मोतीचंद्र; "नयासमाज", अक्टूबर १९५० [ कला और विलासपूर्ण जीवन। विलासिता बढ़ने के साथ साथ ६४ कलाओं की उन्नति। नागर संस्कृति की गुप्तकाल में उन्नति। वात्स्यायन में पूरा विवरण। ]

नाद और संगीत—वारणासि राममूर्ति रेणु, "नई धारा" अक्टूबर १९५० [ कर्नाटकी संगीत विद्या का सामान्य तथा उत्तरीय से तुलनात्मक परिचय। ]

पाणिनि—वासुदेवशरण अग्रवाल; "नयासमाज", अक्टूबर १९५० [ पाणिनि का प्रारंभिक जीवन और शास्त्रनिर्माण, उनके शास्त्र का महत्त्व, उसमें लोकजीवन की झाँकी तथा राष्ट्रीय एकता का सूत्र। ]

पुंड्रवर्धन और उसकी राजधानी—मथुराप्रसाद दीक्षित; "साहित्य", भाग १ अंक १ [ पुंड्रजनपद (पूर्णिया, बिहार) की राजधानी सिक्लीगढ़ पूर्णिया शहर से २२ मील पश्चिम, बनमनखी स्टेशन के पास। प्राचीन गढ़ का वर्णन। ]

प्राचीन भारतीय साहित्य में पुरातन इराक की राजधानियाँ—अमृत पंड्या, "विशालभारत", जून १९५० [ हरिवंशपुराणोल्लिखित बाणासुर की राजधानी शोणितपुर या रुधिरपुर इराक का 'निनेवा' है। वरुणपुरी 'सुषा' (मत्स्य०) इराक का 'सुसा' है। बाणासुर संभवतः असीरियन राजवंशावली का असुर-बानी-पाल है। ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन मिसरी संस्कृत—विश्वंभरनाथ पांडे ; "विश्ववाणी" नवंबर १९५० [ मिश्रदेशीय संस्कृति का विवरण। ]

बीसलदेव रासो की नवीन प्राप्त प्रतियाँ—अगरचंद नाहटा ; "राजस्थान भारती", भाग ३ अंक १ [ ग्यारह प्रतियों का परिचय, जिनमें सबसे पुरानी फलौधी की सं० १६३३ की है। ]

मनु और याज्ञवल्क्य में शूद्रों के राजनीतिक तथा वैधानिक अधिकार—रामशरण शर्मा ; "साहित्य" भाग १ अंक १ [ दोनों स्मृतियों के निर्देशों द्वारा सिद्ध किया गया है कि शूद्रों की स्थिति अत्यंत हेय थी। ]

यहूदी धर्म और सामी संस्कृति—"विश्ववाणी", सितंबर १९५० [विवरण]

राजस्थान का एक लोकप्रिय संगीतकार 'चंद्रसखी'—मनोहर शर्मा ; "राजस्थानभारती", भाग ३ अंक १ [ व्रजभाषा के इस कवि के निवास आदि का पता नहीं, कहते हैं यह सखी संप्रदाय के किसी कवि का उपनाम था। इनकी कृष्ण संबंधी रचनाएँ बड़ी सरस और राजस्थान के नर-नारियों में खूब लोकप्रिय हैं। ]

राजस्थान के नगर एवं ग्राम ( बारहवीं-तेरहवीं शती के लगभग )-दशरथ शर्मा ; वही। [ ऐतिहासिक विवरण। ]

राठोर वीर दुर्गादास का एक पत्र—विश्वेश्वर नाथ रेउ ; वही। [ मारवाड़ के गाँव की आई माता के दीवान राजसिंह के नाम पत्र, जिससे प्रकट होता है कि औरंगजेब के पुत्र मुहम्मद अकबर ने दूसरी बार दिल्ली के राज्य के लिये अपने भाग्य की परीक्षा की थी। ]

रामकाव्य का पुनर्मूल्यांकन—केसरीकुमार सिंह ; "साहित्य", भाग १ अंक १ [ 'साकेत' की अन्य रामकाव्यों से विशेषताएँ। ]

सदयवत्स-सावलिंगा की प्रेमकथा—अगरचंद नाहटा ; "राजस्थानभारती" भाग ३ अंक १ [ बहुत प्राचीन और प्रचलित कथा। सं० १४०० के लगभग अब्दुर्रहमान कृत 'संदेशरासक" में इसका उल्लेख। गुजरात और राजस्थान में इसकी बहुत सी प्रतियाँ और विविध रूपांतर हैं। संस्कृत में 'सदयवत्सचरित्रम्' प्रकाशित हो चुका है। ]

सम्राट् संप्रति और उसकी कृतियाँ—नेमिचंद शास्त्री ; जैन-सिद्धांत-भास्कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भाग १७ अंक १ [ अशोक का पुत्र कुणाल, उसका पुत्र संप्रति। प्रियदर्शी संप्रति की कृतियाँ, शिलालेख और सिंहमूर्ति वाले स्तंभ, भ्रमवश अशोक की माने जाते हैं। ]

सोवियत रूस और भारत का सांस्कृतिक संबंध—महादेव साहा ; "संगम", जून १९५० [ संबंध बहुत पुराना है। ई० १४६६ में ही अफनासियस निकितन नामक रूसी स्थल मार्ग से विजयनगर आया था। १६२५ में कास्पियन पर अस्त्राखान में हिंदू धर्मशाला बनी। १६९५ में प्रथम पीटर का दूत सूरत आया। १७७५ में एक रूसी कलकत्ते आया और २५ वर्ष रहा। १८०१ में हिंदुस्तानी का व्याकरण लिखा। १८०५ में रूस में पहली बार नागरी टाइप ढले। ]

*अंग्रेजी*

उदयन्स क्रिटिसिज़्म ऑव सांख्य—हेमचंद्र जोशी ; जर्नल ऑव ओरियंटल रिसर्च, भाग १८ अंक १ [ उदयनाचार्य द्वारा न्यायकुसुमांजलि में सांख्य मत का खंडन। ]

ए नोट ऑन तुमेन इंस्क्रप्शन—बहादुरचंद्र छाबड़ा ; वही, १७।४ [ एपिग्राफिया इंडिका, २६, पृ० ११५–१८ में एम० बी० गर्दे द्वारा संपादित लेख के प्रथम पद्य में समुद्रगुप्त का उल्लेख न होकर विष्णु के वामन रूप की स्तुति है। इसी प्रकार संपादक से अन्य मतभेद। ]

किंग चंद्र ऑव मेहरौली आयरन पिलर—आर० सी० कर ; इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, २६।३ [ उक्त स्तंभ के लेख का राजा चंद्र, द्वितीय चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ही था। ]

गॉड पुरुषोत्तम ऐट पुरी—दिनेशचंद्र सरकार ; ज० ओ० रि०, १७।४ [एम० ए० चक्रवर्ती के अनुसार (जे० ए० एस० बी० ६७, १८९८ ई०, पृ० ३२८–३१) पुरी का पुरुषोत्तम मंदिर अनंतवर्मन चोड़गंग ने १०८२–९० में बनवाया होगा। पर उड़िया इतिहास माँदलापाँजी के अनुसार उसे अनंगभीम तृतीय ने बनवाया। हाल के ताम्रपत्र से विदित होता है कि इसने कटक में पुरुषोत्तम जगन्नाथ का मंदिर बनवाया था। ]

ग्लीनिंग्स फ्रॉम द खरतरगच्छपट्टावली—दशरथ शर्मा; इं० हि० क्वा० २६।३ [ खरतरशाखा के जैन आचार्यों का इतिहास, वि० १२११ से १३९३ तक। राजपूताने के चौहानों और दिल्ली के सुलतानों की धार्मिक नीति पर प्रकाश। ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यूरिस्डिकल स्टडीज़ इन एंशंट इंडियन लॉ—लुडविक स्टर्नबाश ; एनल्स ऑव द भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट ३०।१-२ [ प्राचीन भारत में चिकित्सकों को 'प्रैक्टिस' करने के पहले राजाज्ञा लेनी पड़ती थी। चिकित्सा में लापरवाही करने पर दंड का विधान था। ग्रंथों से प्रमाण देकर विवेचन। ]

द कंट्रिब्यूशन ऑव दि अथर्ववेद टु दि उपनिषदिक थॉट—एन० जे० शेंदे ; [ ब्रह्म, जीवन, मृत्यु, स्वर्ग, यज्ञ आदि पर अथर्ववेद में विचार। ऋग्वेद में जगत् के कर्ता और कारण पर दार्शनिक विचार हैं, परंतु उपनिषदों में निरूपित ब्रह्म और आत्मा का मूल अथर्ववेद में है। ]

द चाइनीज़ नेम्स ऑव सिलोन—एस० मेहदीहसन : वही। [ लंका के सीलोन नाम का व्युत्पत्तिक इतिहास। ]

द चीफ़ वैराइटीज़ ऑव ध्वनि—के० कृष्णमूर्ति ; क्वार्टर्ली जर्नल ऑव द मीथिक सोसायटी, ३९।३ [ आनंदवर्धन कृत ध्वनि के वर्गीकरण ( भेदों ) का मूल सिद्धांत और उनके उदाहरण। ]

द नेम इंद्र—एन इटिमॉलॉजिकल इन्वेस्टिगेशन—बी०एम० आपटे; ज० बां० यु० १९।२ [ 'इंद्र' की अनेक व्युत्पत्तियाँ दी गई हैं, पर ऋग्वेद में प्रयुक्त 'इंध' धातु से ही मानना ठीक है। इंध = चमकना, प्रज्वलित होना। 'इंद्र' वर्षा का नहीं, प्रकाश और उष्णता का देवता है। ऋग्वेद में सर्वत्र यही अर्थ है। ]

द लिजेंड ऑव पुरुरवा ऐंड उर्वशी—इंदिरा नलिन ; वही। पुरूरवा-उर्वशी की सुंदर कथा का प्राचीन रूप दोनों के वार्तालाप के रूप में ऋग्वेद १०।९५ में है। अनंतर शतपथ ब्राह्मण से लेकर विक्रमोर्वशी तक हरिवंश, महाभारत, विष्णु, पद्म, भागवत और मत्स्य पुराणों तथा कथासरित्सागर में अनेक रूपांतर। ]

द व्यूज़ ऑव जैमिनि ऐंड शबर ऑन डिफ़रंट क्लासेज़ ऑव वर्ड्स—जी० वी० देवस्थली ; ए० भं० ओ० रि० इं०, ३०।१-२ [ मुख्यतः चार प्रकार के शब्द - नाम, सर्वनाम, विशेषण और आख्यात या कर्मशब्द ; इनका विवेचन। ]

दि अकेमेनीड्स इन इंडिया—सुधाकर चट्टोपाध्याय ; इं० हि० क्वा०, २६।२ [ भारत के उत्तर-पश्चिम प्रदेश पर ई० पू० ५०० से ३३० तक अखामनी शासन। देश के इतिहास पर इसका प्रभाव, भारत का बाहरी संसार से परिचय, बौद्धिक कार्यों का विस्तार और रूढ़ियों का उच्छेद। खरोष्ठी लिपि, व्यापारिक उन्नति, मगों का भारत में बसना, कलाओं का आदान-प्रदान उन्हीं के शासन की देन। ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


देवानांप्रिय—दशरथ शर्मा ; इं० हि० का० २६।२ [ ईसाई सन् के पहले या बाद में कभी 'देवानांप्रिय' केवल शासकों की उपाधि नहीं रही। यह बहुत आदरास्पद भी नहीं, परंतु इसका अर्थ 'मूर्ख' नहीं, 'देवों का प्रिय' ही है। ]

नासिरुद्दीन खुसरूशाह—श्रीराम शर्मा ; इं० हि० का० २६।१ ; [ यह गुजराती हिंदू भंगी ( परवरी ) था जो अलाउद्दीन खिलजी के समय में दिल्ली लाया गया। मुबारक खिलजी के बाद उक्त नाम से सुलतान हुआ। उसके शासन, चरित्र आदि का वर्णन। ]

न्यू लाइट ऑन 'जयति-जयते' कंट्रोवर्सी—वी० एन० कृष्णमूर्ति शर्मा, ब्रह्मविद्या, भाग १४ अंक २ [ वैदिक साहित्य में 'जयते' का प्रयोग ९ बार है जिसमें पाँच प्रयोग संदिग्ध है और 'जयति' का ६५५ बार है। अतः 'जयते' ठीक।

प्रभाकर्स थियरी ऑव एरर—जटिलकुमार मुकर्जी; इं० हि० का०, २६।३ [ प्राभाकर लोग भ्रम नहीं मानते। शुक्ति में रजत का भास या मिठाई में पित्त का स्वाद भ्रम नहीं, पूर्णतः सत्य। यह मानसिक या इंद्रियगत विकार के कारण दो प्रकार के ज्ञान में भेद का अज्ञान है। ]

मंकीज़ ऐंड सर्पेंट्स इन दि एपिक्स—टी० आर० वेंकटरमण शास्त्री; ज० ओ० रि०, भाग १७ अंक ४ [ रामायण के कपि तथा रामायण और महाभारत के नाग, उरग, पन्नग पशु या कल्पना की वस्तु नहीं, बल्कि मनुष्य थे। ]

मिंग्लिंग ऑव इस्लामिक ऐंड इंडिजिनस ट्रेडिशंस इन इंडियन म्यूज़िक—कौमुदी; इं० हि० का०, २६।२ [भारतीय संगीत के विकास, समृद्धि और प्रचार में मुसलमानों ने बहुत योग दिया; आज भी यह कला प्रधानतः मुसलमानों के हाथ में है। ]

वेदिक गॉड्स, रुद्र-काली—हीरालाल अमृतलाल शाह ; ए० भं० ओ० रि० इं०, ३०।२ [ लेख के इस पाँचवें खंड में रुद्र और काली, इन वैदिक देवताओं के रूप-विकास का विवेचन है। ]

वेदिक स्टडीज़ इन द वेस्ट—ई० जे० टॉमस ; इं० हि० का०, २६।२ [पिछले सौ वर्षों में यूरोपीय विद्वानों ने अनेक दृष्टियों से वैदिक साहित्य का अध्ययन किया, उसका विवेचन। अभी तक के अध्ययन का फल ऐसा नहीं, जिसे दृढ़ आधार मानकर चला जाय। पद पद पर प्रत्येक बात की पूरी छानबीन की आवश्यकता। ]

हूणाज़, यवनाज़ ऐंड कांबोजाज़—एस० बी० चौधरी ; इं० हि० का० २६।२ [ अनेक साक्ष्यों के आधार पर इन जातियों का ऐतिहासिक परिचय। ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# समीक्षा

**तपोभूमि**—लेखक श्री रामगोपाल मिश्र ; प्रकाशक हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ; सं० २००७ ; आकार ८×६, पृष्ठ संख्या लगभग ४५० ; मूल्य १०)

ग्रंथकार ने ही इस ग्रंथ का 'प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल' नाम दिया है। यह प्राचीन भारत के महत्त्वशाली नगरों का, विशेषतः धार्मिक दृष्टि से गौरवपूर्ण स्थानों का, अकारादि क्रम से निबद्ध एक सुंदर कोश है। उन नगरों से संबद्ध प्राचीन इतिहास तथा तत्संबद्ध महापुरुषों का भी सुंदर वर्णन है। लेखक ने इस ग्रंथ में विशेष परिश्रमपूर्वक पुराणों में उपलब्ध सामग्री का उचित उपयोग कर प्राचीन इतिहास निबद्ध किया है। साथ ही वर्तमान दशा का भी वर्णन कर इसे और सामयिक तथा लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया है।

'सिते हि जायेत शितेः सुलक्ष्यता'—सफेद कपड़े पर काला धब्बा झट मालूम पड़ता है। विषय की विशालता तथा विस्तार के कारण, सावधानी रखने पर भी अनेक त्रुटियाँ इस रोचक ग्रंथ में आ गई हैं, जिनका निराकरण नितांत आवश्यक है। लेखक ने मूल ग्रंथों को स्वयं देखने तथा छानबीन करने का उद्योग कम किया है, अन्यथा बहुत सी मोटी भूलों को इसमें देखने का हमें अवसर न मिलता। शाक्य मुनि के गुरु का नाम आराड कलाम अवश्य था, परंतु वे वर्तमान आरा (शाहाबाद, बिहार) के निवासी थे (पृ० २७), इसमें कोई प्रमाण नहीं। पृष्ठ १६६ पर जनकपुर जाते समय रामचंद्र तथा लक्ष्मण का पटना के पास गंगा पार होने की बात लिखी है, परंतु यह बात इतिहास-विरुद्ध है। वाल्मीकि रामायण के समय पाटलिपुत्र की स्थापना नहीं हुई थी, राम ने राजगृह के पास गंगा को पार किया था। वल्लभाचार्य का जन्मस्थान चंपारण्य (बिहार) में नहीं, मध्यप्रदेश में था (पृष्ठ १८०)। पृष्ठ ६७ पर 'काञ्ची' का उल्लेख महाभारत में 'काञ्जीवरम्' के नाम से माना गया है। लेखक को पता नहीं कि 'काञ्जीवरम्', 'काञ्चीपुरम्' का अंग्रेजों के समय का विकृत अभिधान है, महाभारत में इसकी सत्ता नितांत संदिग्ध है। पृ० ७२४ पर 'त्रियुगी नारायण' का सुंदर वर्णन है, परंतु इस नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के 'त्रियुगी' पद का स्वारस्य नहीं बतलाया गया है। इसके पास ही 'शाकंभरी देवी' के विषय में नाना पुराणों की सामग्री संकलित है, परंतु सप्तशती के प्रधान निर्देश की चर्चा नहीं ; न वर्तमान समय में सहारनपुर जिले में स्थित इस स्थान के ठौर ठिकाने की ही बात कहीं है। पृष्ठ ३७० पर संबलपुर की वास्तव स्थिति गोबी रेगिस्तान में बिना किसी प्रमाण के ही मान ली गई है। इस नगर का निर्देश कल्कि भगवान् की जन्मभूमि के रूप में पुराणों में पाया जाता है। यदि सचमुच यह नगर गोबी की विकट मरुभूमि में वर्तमान हो, तो यह बड़े पते की बात सिद्ध होगी। पृष्ठ ३६ पर मीमांसक कुमारिल भट्ट को 'ज्योतिषाचार्य' बतलाना भारी भूल है। पृष्ठ २८६ पर कृष्णमूर्ति का लंबा वर्णन अधिक तथा अनावश्यक है।

लेखक ने पश्चिमी विद्वानों के द्वारा भी असिद्ध बातों पर विशेष आस्था दिखलाई है। उसे पता नहीं कि कोई भी विद्वान् आज वाल्मीकि रामायण को महाभारत से अर्वाचीन रचना नहीं मानता (पृष्ठ ३७)। रामायण भाषा तथा भाव, आचार तथा विचार, उभय दृष्टियों से प्राचीनतर प्रबंध है, इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं।[1] इतिहास तथा पुराण की विविध सामग्री से सज्जित इस पुस्तक में त्रुटियों का होना अनिवार्य है; परंतु ऊपर निर्दिष्ट अशुद्धियों के समान अन्य त्रुटियों का बिना निराकरण किए ग्रंथ की प्रामाणिकता में बाधा पहुँचती है। आशा है, इनका मार्जन अगले संस्करण में अवश्य किया जायगा। ऐसे उपादेय तथा सामयिक ग्रंथ द्वारा हिंदी की एक विशेष कमी पूरी करने के निमित्त लेखक तथा प्रकाशक हमारे धन्यवाद के भाजन हैं।

ब्रह्मविद्या—लेखक स्वामी कृष्णानंद सरस्वती बी० ए०, बी० टी०; प्रकाशक विश्वेश्वरानंद मुद्रण एवं प्रकाशन मंडल, साधु आश्रम, होशियारपुर (पंजाब); पृष्ठ ४६ + २५०, आकार ६¼ × १०; मूल्य ६)

यह हर्ष की बात है कि इधर राष्ट्रभाषा हिंदी में वैदिक सिद्धांत तथा अध्यात्म शास्त्र के तथ्यों के प्रकाशन की ओर अनेक संस्थाओं का ध्यान आकृष्ट हुआ है। ऐसी संस्थाओं में विश्वेश्वरानंद-प्रकाशन-मंडल अन्यतम है। अब तक यह वैदिक ग्रंथों की खोज तथा प्रकाशन का कार्य करता रहा है। इधर इसने हिंदी के द्वारा जनता की सेवा करने का श्लाघनीय कार्य आरंभ किया है और इस कार्य का श्री गणेश हुआ है इसी ग्रंथ के प्रकाशन के साथ।

---

१—द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भारत के अध्यात्मशास्त्र के चिंतकों का सबसे सुंदर तथा परिष्कृत प्रयास है ब्रह्मविद्या का विश्लेषण, परंतु इस विषय की सारी सामग्री उपनिषद् तथा वेदांत के गूढ़ार्थ-संपन्न संस्कृत ग्रंथों में उपलब्ध होती है। इस समग्र सामग्री का उपयोग कर विद्वान् लेखक ने बड़ा ही सरल तथा सुबोध ग्रंथ अध्यात्मशास्त्र जैसे गूढ़ तथा कठिन शास्त्र को लेकर लिखा है। स्वामी कृष्णानंद जी ने उपनिषदों का अनुशीलन बड़े मनोयोग से किया है और वे स्वयं योग-मार्ग के मर्मज्ञ साधक हैं। फलतः इस ग्रंथ में उपनिषद् के तत्त्वों का निरूपण बहुत सुंदरता, सरलता तथा युक्तिमत्ता के साथ किया गया है।

ग्रंथ में सोलह अध्याय होने पर भी तीन मुख्य प्रकरण हैं जिनमें क्रमशः साधक, साधन तथा साध्य का विवेचन किया गया है। आजकल पाश्चात्य विद्वानों तथा उनकी शिक्षा से मंडित हमारे अंग्रेजी शिक्षित विद्वानों की भी यह भ्रांत धारणा बनी हुई है कि वेदांत में, विशेषतः अद्वैत वेदांत में आचार-शास्त्र का नितांत अभाव है। वे नहीं जानते कि वेदांत एक विशिष्ट साधन-मार्ग है जिसका अनुशीलन अधिकारी व्यक्ति ही कर सकता है। इसके लिये आवश्यकता होती है साधनचतुष्टय की। इस विषय का सुंदर निरूपण ग्रंथ के द्वितीय खंड में किया गया है। लेखक आप्त वाक्य के मीमांसक होते हुए भी युक्ति तथा तर्क से पराङ्मुख नहीं हैं, दूसरे अध्याय—प्रमाण विमर्श—के अनुशीलन से उनकी तर्क-पद्धति का परिचय मिलता है। इसमें अनेक युक्तियों द्वारा वेद की प्रामाणिकता तथा अपूर्वता का सांगोपांग निरूपण किया गया है। इसी प्रकार तृतीय खंड के तृतीय अध्याय में (पृष्ठ १९१–२३०) योग तथा वेदांत का पूर्ण सामंजस्य दिखाया गया है। समीक्षक की दृष्टि में ये दोनों अध्याय विद्वानों के लिये विशेष मननीय हैं।

'ज्ञानं भारः क्रियां विना'। भारतीय तत्त्वज्ञान का अध्यवसान है, आचार-शास्त्र। वैदिक धर्म केवल सिद्धांतों का समुच्चय नहीं, प्रत्युत जीवन को सुधारने का एक विशद मार्ग है। इस मार्ग तथा उसके साधन के वर्णन के लिये स्वामीजी हमारे धन्यवाद के भाजन हैं। अनेक आवश्यक सूचियों से यह ग्रंथ और भी उपादेय बन गया है और वेदांत-विचार तथा योगविद्या में रुचि रखनेवाले व्यक्ति के लिये संग्राह्य है।

—बलदेव उपाध्याय

श्याम-संदेश—लेखक श्री श्यामसुंदरलाल दीक्षित; प्रकाशक नागरी-निकेतन, आगरा; आकार डबलक्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ ८०; मूल्य ॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह व्रजभाषा में लिखा गया गीतिकाव्य है। लेखक ने स्वयं इसके संबंध में लिखा है—"और यदि मैं यह कहूँ कि 'श्याम-संदेश' अनुपमेय, अभिनव तथा हिंदी साहित्य के एक आवश्यक अंग की पूर्ति करनेवाला मौलिक काव्य है—तो, न इसे गर्वोक्ति ही समझिए और न अतिशयोक्ति ही। यह कवि का कर्त्तव्य है साहित्य की समतल भूमि में जहाँ भी उसे गड़हा दीखता है, वह अपने सहज-स्वभाव-वश उसे भर देता है। मेरा यह प्रयास इसी प्रकार का है।" जिस प्रकार श्री मैथिलीशरण गुप्त ने उपेक्षिता उर्मिला की उपेक्षा का निराकरण साकेत में किया उसी प्रकार लेखक ने इस संदेश में श्यामसुंदर की उपेक्षा का परिहार करने का प्रयास किया है। कृष्ण-काव्य में गोपियों की उक्तियों, अनुभूतियों तथा विचारसरणि के लिये कवियों ने पूरा अवकाश निकाला है, पर श्रीकृष्ण के हृदय का चित्र अंकित करने का भरपूर प्रयास किसी ने नहीं किया; कुछ अस्फुट रेखाएँ ही मिलती हैं, उनके हृदय का पूरा चित्र कहीं नहीं है। यही गड़हा है जिसे कवि ने पाटा है। उपेक्षा 'भागवत' से लेकर 'रत्नाकर' के 'उद्धव-शतक' तक दिखाई देती है। यह विवादग्रस्त विषय है कि 'उपेक्षा' को 'अपेक्षा' में परिणत करने की अपेक्षा है ही। क्योंकि भक्ति और समाज की दृष्टि से श्रीकृष्ण के उस हृदय का आभास भर देने की आवश्यकता थी। श्रीकृष्ण को आशिकों के बीच देखने-दिखाने में यहाँ की मर्यादा बहुत कुछ बाधक थी। फिर भी निरपेक्ष दृष्टि से हृदय को सामने लाने की लालसा कुछ-कुछ बलवती होती आई है और भिन्न-भिन्न दृष्टियों से कुछ कवियों ने अपेक्षाकृत अधिक कहा भी है। दीक्षित जी, जो स्वयं श्यामसुंदर हैं, गीतिकाव्य के रूप में अपनी सहज कवि-हृदय-वृत्ति को नहीं रोक सके और उन्हें विवश होकर एक छोटा सा गीति बंध लिख देना पड़ा।

व्रजभाषा में 'स' के बदले 'श' ही लिखने की छूट लेखक ने माँगी है, पर उसका पालन नहीं किया। 'स्वतंत्रता-दिवस' ऐसे आधुनिक भावापन्न विषयों का भी इसमें समावेश है। व्रजभाषा की रचना लेखक की अच्छी है। जब लोग व्रजभाषा से पराङ्मुख हों, तब लेखक का यह प्रयास और उसकी उस भाषा में क्षमता अवश्य प्रशंसनीय है। रचना सरस है।

सुंदर-प्रकाश—लेखक श्री रमाशंकर प्रसाद; प्रकाशक रामायण भवन, प्रयाग; आकार डबलक्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ ८+४०८; मूल्य ३); सचित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह रामचरितमानस की मानस-प्रदीप टीका का सुंदरकांड है। इस कांड का विशेष प्रचलन होने से लेखक ने इसपर विशेष दृष्टि डाली है। सबसे पहले इसी कांड का भाष्य किया है। आरंभ में रामचरितमानस और सुंदरकांड के नामकरण की व्याख्या की गई है। फिर भाष्य है और अंत में सूक्ष्मावलोकन है जिसमें भाषा, शैली, विषय, सिद्धांत आदि का विचार है। फिर परिशिष्ट में अलंकारों पर विचार, ग्रंथानुक्रमणिका और शब्दार्थ अनुक्रमणिका है। यहाँ तक कि पारायणक्रम और रामशलाका प्रश्न भी दे दिया गया है। ग्रंथ के भाष्य में संस्कृत के ग्रंथों, वेद, उपनिषद्, महाभारत आदि से उद्धरण भी प्रमाण के लिये उद्धृत हैं। तात्पर्य यह कि भाष्यकार ने अपनी ओर से कुछ उठा नहीं रखा है। शंका-समाधान आदि का भी विचार है। यथास्थान अँगरेजी शब्द और उसकी व्याख्या भी दी गई है। पुस्तक व्यासों और भक्तों के लिये उपयोगी है। पर इसका साहित्यगत महत्त्व वैसा नहीं है—स्थान-स्थान पर अलंकार-निरूपण करने पर भी और अलंकारों की व्याख्या देने पर भी। कुछ विचारणीय स्थलों का उल्लेख किया जाता है, स्थालीपुलकन्याय से।

( १ ) खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुजबीसा ॥

इस अर्धाली में स्वभावोक्ति अलंकार माना गया है। 'खर' शब्द को फारसी का बताया गया है।

( २ ) सीतल निसि तव असि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा ॥

इस अर्धाली की टीका है—'हे खड्ग तेरी सुंदर धार ठंडी रात्रि के समान है……।' वस्तुतः तुलसीदास जी ने पूरी चौपाई प्रसन्नराघव नाटक के आधार पर बनाई है। मूल श्लोक यों है—

चंद्रहास हर मे परितापं रामचंद्र विरहानल जातम्।
त्वं हि कांतिजितमौक्तिकचूर्णं वहसि धारया शीतलमंभः ॥

चौपाई यों होनी चाहिए—

चंद्रहास हर मम परितापं। रघुपति विरह अनल संजातं ॥
सीतल निसित वहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा ॥

हस्तलेखों में शब्द मिलाकर लिखे जाते हैं। इसलिये 'निसितवहसि' के टुकड़े हो गए 'निसि तव हसि'—'धारा' की भाँति। 'हसि' को 'असि' कर दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


गया। नागरीप्रचारिणी सभा ( काशी ) से जो प्रामाणिक 'मानस' प्रकाशित हुआ है उसमें भी अर्धाली यों ही है। 'असि' का पाठांतर 'हसि' अवश्य दे दिया गया है। 'मानस' में कितने ही अपपाठ हैं, जो वैज्ञानिक संस्करणों से सुपाठ कभी न हो सकेंगे। 'साहित्य' और 'विज्ञान' दोनों का योग अपेक्षित है। कोरा 'विज्ञान' ऐसे ही अपपाठों का संग्राहक होगा।

( ३ ) नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भय भारी॥

इस अर्धाली के 'धारी' का अर्थ किया गया है—रंग के, जाति के। पर वास्तविक अर्थ है समूह, सेना। पुरानी हिंदी कविता का साधारण पाठक भी इस अर्थ से परिचित है। 'रंग' या 'जाति' के लिये 'बरन' शब्द इसी चरण में पृथक् पड़ा है।

समष्टि में, लेखक ने जो श्रम किया है वह प्रशंसनीय है, पर उसका साहित्यगत मूल्य उतना नहीं है।

—विश्वनाथप्रसाद मिश्र

नई धारा ( मासिक पत्रिका)—प्रधान संपादक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, सहकारी संपादक श्री वीरेंद्रनारायण, वर्ष १, अंक १, ( अप्रैल १९५० ) प्रकाशक अशोक प्रेस, महेंद्रू, पटना; पृष्ठ लगभग १२५ ( डि० डि० सोलहपेजी ), छपाई आदि उत्तम।

प्रस्तुत पत्रिका के इस प्रथम अंक को देखकर ही यह आशा बँधती है कि जिन उद्देश्यों को लेकर यह आविर्भूत हुई है उसकी सिद्धि में इसे सफलता मिलेगी। स्थायी शीर्षकों के रूप में इसका विषय-विभाजन द्योतित करता है कि इसकी दृष्टि उन अस्पृष्ट और उपेक्षित विषयों की ओर भी है जिनसे अधिकांश पत्रिकाएँ असंपृक्त रहती आई हैं; यथा हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं की साहित्य-समृद्धि के परिचय, श्रेष्ठ साहित्यिकों के ऐसे पत्रों का प्रकाशन जिनसे उनकी विचारधारा को हृदयंगम करना सरल हो जाता और अनेक भ्रांतियाँ स्वतः दूर हो जाती हैं, अन्यान्य विदेशी भाषाओं के लेखकों की विशेषताओं का परिचय आदि। इस अंक के लेखों में डा० सत्यनारायण का 'डिग्री डोल्मा' राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का 'पूरब और पच्छिम' ( धारावाही संस्मरण ) तथा श्री 'दिनकर' का 'राजेंद्रबाबू से साहित्यिक इंटरव्यूँ' विशेष रोचक हैं। श्री देवेंद्रनाथ शर्मा के 'आलोचना के नाम पर' शीर्षक निबंध में संप्रति आलोचना के नाम पर हिंदी में फैले वितंडावाद और अनाचार का परिचय है। कविताएँ भी अधिकांश उदात्त भावों को जगानेवाली हैं। प्रभाव में नवीन लेखकों का सहयोग और राजा राधिकारमण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रसाद सिंह जी का आश्रय इसे प्राप्त होने से इसका सुनिश्चित सफल भविष्य असंदिग्ध है।

महादेव भाई की डायरी ( दूसरा भाग )—संपादक श्री नरहरि द्वा० पारीख ; अनु० रामनारायण चौधरी ; प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद ; पृष्ठ १२ + ४४८ ( ड० डि० सोलहपेजी ) ; सचित्र ; प्रथम संस्करण, अप्रैल १९५० ; मूल्य ५) रु०।

गांधी जी के निजी सचिव स्वर्गीय महादेव भाई देसाई की डायरी के इस भाग में यरवदा जेल की ५-९-३२ से १-१-३३ तक की दिनचर्या दी हुई है। उन दिनों जेल में से ही महात्मा जी ने हरिजन-आंदोलन आरंभ किया था और उसी संबंध में उन्हें अनशन करना पड़ा था। इस डायरी में प्रधानतः इसी अनशन उपवास, व्रत की सांगोपांग चर्चा और मीमांसा है। अनशन और उपवास किसे, कब और किसके लिये करना समीचीन है, आदि बातें विस्तृत रूप में इसमें आई हैं। उक्त तीन महीनों की अवधि में महात्मा जी ने अपने संपर्क में आनेवाले अनेक छोटे-बड़े, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध व्यक्तियों की नाना प्रकार की शंकाओं का समाधान भी प्रत्यक्ष वार्तालाप और पत्रोत्तर के रूप में किया था। उन समस्त साधारण-असाधारण बातों का उल्लेख डायरी के इस भाग में है। दुराग्रहियों तथा सत्यान्वेषी जिज्ञासुओं का समाधान वे समान रूप से कितनी स्पष्टता से करते थे इसका परिचय किसी भी दिन की दिनचर्य्या से स्पष्ट हो जाता है।

यद्यपि डायरी का यह भाग हिंदू धर्म और सामाजिक संगठन से ही विशेष रूप से संबद्ध है, तथापि महादेव भाई की पारखी दृष्टि ने नित्यप्रति की सरस बातों, उक्तियों आदि से जटित कर उसे सहृदय पाठकों के लिये रुचिकर बना दिया है। डायरी के अंत में तीन परिशिष्ट दिए गए हैं जिनमें सांप्रदायिक निर्णय के संबंध में गांधी जी और सरकार का पत्रव्यवहार, अनशन संबंधी उनका वक्तव्य तथा हरिजन-कार्य-संबंधी वक्तव्य सन्निविष्ट हैं। तत्कालीन संघर्ष से अपरिचित पाठकों के लिये ये परिशिष्ट विशेष उपादेय हैं। अंत में नामानुक्रमणिका देकर ग्रंथ और उपयोगी बना दिया गया है। यह संपूर्ण डायरी एक प्रकार से महात्मा जी की 'आत्मकथा' का उत्तरार्द्ध है और विश्वास है, उसी रूप में समादृत होगा।

—शंभुनाथ वाजपेयी

राजकीय ओषधि-योग-संग्रह—लेखक आयुर्वेदाचार्य पं० रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी, ए० एम० एस० ; चौखंभा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस; पृष्ठ संख्या ६१२ ; मूल्य ८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रस्तुत पुस्तक में उत्तरप्रदेशीय सरकार के ग्रामीण देशी चिकित्सालयों में प्रयुक्त होनेवाले योगों को प्रमुख रूप से आधार मानकर एवं सामान्यतया चिकित्सा-कार्य में प्रयुक्त होनेवाले प्रभावकारी २३० योगों का संकलन कर नवीन ढंग से वैज्ञानिक निरूपण किया गया है। प्रत्येक योग का वर्णन तथा विवेचन ग्रंथ-निर्देश, अधिकार, घटक, निर्माण-विधि, निर्मित औषध की परीक्षा, गुण, उपयोग, क्रिया, रोग-निर्देश, रोग-निषेध, सावधानी तथा मात्रा —इन १२ शीर्षकों के अंतर्गत किया गया है। ओषधियों का संग्रह रोगाधिकार-क्रम से किया गया है। इससे प्रत्यक्ष चिकित्सा में बहुत सुविधा होगी। प्रत्येक प्रकरण के प्रारंभ में चिकित्सा-कार्य के लिये उपयोगी निर्देश बहुत संक्षिप्त तथा सूत्र शैली में दिए गए हैं, जो विस्तृत न होने पर भी बहुत पूर्ण हैं।

पुस्तक के प्रारंभ में जो ओषधि-निर्माण संबंधी ज्ञान-राशि का संग्रह किया गया है वह क्रियात्मक अनुभव के उपरांत लिखा गया है, अतः बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा।

इस कोटि की व्यावहारिक ज्ञानोत्पादक पुस्तकों की आयुर्वेद में बहुत कमी है। त्रिवेदी जी ने इस प्रकार का नवीन विज्ञानसंमत ग्रंथ लिखकर आयुर्वेद की ठोस सेवा की है, एतदर्थ वे बधाई के पात्र हैं। पुस्तक तरुण चिकित्सकों के लिये अनिवार्यतः एवं सामान्यतया सभी आयुर्वेद-प्रेमियों के लिये संग्राह्य है।

—गंगासहाय पांडेय

**अहमदाबाद नवजीवन प्रकाशन मंदिर की दो पुस्तकें—**

(१) सच्ची शिक्षा—लेखक गांधी जी, अनु० श्री रामनारायण चौधरी; पृष्ठ सं० ३४६ (ड० क्रा० सोलहपेजी); मूल्य २॥); १९५० ई०।

(२) बुनियादी शिक्षा—लेखक गांधी जी; पृष्ठ १७६ (ड० क्रा० सोलहपेजी); मू० १॥); १९५० ई०।

उपर्युक्त दोनों पुस्तकों में गांधी जी के शिक्षासंबंधी विचार संकलित हैं। पहली में तीन भाग किए गए हैं। प्रथम भाग में शिक्षा का आदर्श, द्वितीय में विद्यार्थियों के प्रश्नों की चर्चा और तृतीय में राष्ट्रभाषा-प्रचार संबंधी लेख हैं तथा अंत में शब्दानुक्रमणी भी है। दूसरी पुस्तक में पाँच भाग हैं—पुनर्गठन का सिद्धांत, वर्धा-शिक्षा-परिषद्, वर्धा-शिक्षा-योजना, कुछ महत्त्व के प्रयोग, आगे का काम।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पहली में शिक्षा-संबंधी सामान्य विचार हैं, दूसरी में उनका किसी हद तक एक निश्चित रूप और प्रयोग तथा कठिनाइयों आदि का विचार है।

गांधी जी वर्त्तमान (मेकाले) शिक्षा-पद्धति के कठोर विरोधी थे और सन् १९२० से ही उसका बहिष्कार कर देश के युवकों को सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा देने के लिये प्रयत्नशील थे। सन् १९३७ में अपनी नई शिक्षा-पद्धति को एक रूप देकर उसका उन्होंने कांग्रेस सरकारों द्वारा प्रयोग कराना चाहा था। कुछ सफल प्रयोग हुए भी, पर व्यापक न हो सके। सन् ४७ में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद पुनः उधर ध्यान गया, पर अन्य विकट समस्याओं के सामने फिर प्रश्न वहीं रह गया।

गांधी जी की बुनियादी शिक्षा केवल प्राथमिक शिक्षा की एक पद्धति नहीं, वह 'संपूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा का केंद्र' है। उसका तत्त्व यह है कि ७ से १४ वर्ष की अवस्था तक बालक को मातृभाषा के माध्यम से किसी मूल उद्योग (गांधी जी के विचार से कताई-बुनाई) द्वारा (केवल 'सहित' नहीं) निःशुल्क शिक्षा इस प्रकार दी जाय कि चौदह वर्ष की अवस्था में वह एक चरित्रवान् स्वावलंबी व्यक्ति बन जाय। स्वावलंबन के अतिरिक्त इस अवधि में उसका (अंग्रेजी को छोड़कर) अन्य विषयों का ज्ञान उनके विचार से मैट्रिक से कम न होगा। राष्ट्रभाषा हिंदी का भी उसे ज्ञान होगा। गांधी जी का निश्चित मत था कि केवल इसी पद्धति से कम से कम समय और व्यय में संपूर्ण देश को शिक्षित किया जा सकता है। इस शिक्षा में उनके विचार से विद्यालय के भवन और उपस्कार के अतिरिक्त शिक्षा का चलता खर्च बालकों के श्रम से ही निकलना चाहिए।

इस पद्धति की बड़ी आलोचना हुई और इसे गांधी जी का 'नया पागलपन' तक कहा गया। जिसे गांधी जी ने 'भारत को अपनी सबसे बड़ी देन' कहा, वह शिक्षा-पद्धति शिक्षाशास्त्रियों के गले के नीचे न उतर सकी इसमें विशेष आश्चर्य नहीं। पर इसका कारण पद्धति की सदोषता है या और कुछ, यह अब भी मनन और प्रयोग का विषय है, विशेषतः जब शिक्षा में आमूल परिवर्तन की चर्चा इधर फिर आरंभ हुई है। इसमें संदेह नहीं कि इस विषय पर गांधी जी के विचारों और तर्कों को स्पष्ट करने में उक्त दोनों पुस्तकें बहुत उपयोगी सिद्ध होंगी। इनमें बुनियादी शिक्षा के साथ-साथ अन्य महत्त्वपूर्ण प्रासंगिक विषयों—जैसे सहशिक्षा, धार्मिक शिक्षा, चारित्र्य, स्त्रीशिक्षा, उच्चशिक्षा आदि पर भी विचार व्यक्त किए गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकों की भाषा स्पष्ट है। अ की बारहखड़ी के मोह के साथ छपाई में सादगी और शुद्धता पर तो नवजीवन प्रकाशन का विशेष ध्यान रहता है। हाँ, कहीं-कहीं शुद्ध उर्दू के प्रयोग की धुन में 'हर्ज़', 'मजबूर' जैसी अशुद्धियाँ घोर अरुचि उत्पन्न करती हैं। यह अज्ञान प्रकट करने की अपेक्षा तो अक्षर के नीचे बिंदी लगाकर 'शुद्ध' लिखने की प्रवृत्ति को छोड़ देना अच्छा है।

—चित्रगुप्त

## समीक्षार्थ प्राप्त

अंगराज—लेखक श्री आनंदकुमार ; प्रकाशक राजपाल ऐंड संस, दिल्ली मूल्य ७)

अछूत—लेखक श्री मुल्कराज आनंद; प्रकाशक निष्काम प्रेस, मेरठ। मू० १॥)

आचार्य शुक्ल और उनकी त्रिवेणी—लेखक श्री शिवनंदनप्रसाद, एम० ए०, साहित्यरत्न ; प्रकाशक रामसहायलाल पुस्तकविक्रेता, गया। मू० १॥।)

आत्मविकास—लेखक श्री आनंदकुमार, प्रकाशक राजपाल ऐंड संस, दिल्ली। मूल्य ५)

आश्रम की बहनों को (गांधी जी के पत्र)—संपादक काका कालेलकर ; प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद। मूल्य १।)

आश्रम भजनावली—संग्राहक नारायण मोरेश्वर खरे ; प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद। मूल्य ॥=)

कला की कलम—लेखक श्री रघुवीरशरण मिश्र; प्रकाशक अखिल भारतीय राष्ट्रीय साहित्य प्रकाशन परिषद्, मेरठ। मूल्य ३)

कौमारभृत्यम्—ले० श्री रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी, आयुर्वेदाचार्य ; प्रकाशक चौखंभा संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस। मूल्य ८)

गणित का इतिहास—लेखक श्री सोहनलाल गुप्त एम० एस-सी०, एम० ए० प्रकाशक शांति पुस्तक भंडार, कनखल। मू० ।=)

गीतमाधवी—लेखक श्री चंद्रकुँवर बर्त्वाल ; प्रकाशक कुसुम्दाल, नीहारिका लखनऊ। मूल्य २॥)

ज्योतिष के मनोरंजन—ले० श्री सोहनलाल गुप्त; प्रकाशक शांति पुस्तक भंडार, कनखल। मूल्य ॥।)

ठोस रेखागणित—ले० श्री कमलमोहन; प्रकाशक हिंदी प्रकाशन मंडल, हिंदू विश्वविद्यालय, काशी। मूल्य २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर वर्मा के शिवाजी—ले० श्री ध्रुवनारायण सिंह; प्रकाशक सत्य प्रकाशन, नौबस्ता, आगरा। मूल्य ।≈)

तुलसी—ले० डा० माताप्रसाद गुप्त एम० ए०, डी० लिट्० ; प्रकाशक साहित्य-कुटीर, प्रयाग। मूल्य २)

नंदिनी—ले० श्री चंद्रकुँवर बर्त्वाल ; प्रकाशक एजुकेशन पब्लिशिंग कंपनी, लखनऊ। मूल्य २।।)

नईधारा ( मासिक, भाग १ अंक १, अप्रैल १९५० )—संपादक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ; प्रकाशक अशोक प्रेस, पटना। वार्षिक मूल्य १०)

निर्गुणधारा—ले० श्री बैजनाथ विश्वनाथ ; प्रकाशक मानसरोवर प्रकाशन, गया। मूल्य ३)

नीहारिका—ले० श्री सुधाकर पांडे; प्रकाशक कलाकुंज, बड़ी पियरी, काशी।

न्याय—ले० श्री दीपसिंह बड़गूजर 'दीपक' ; प्रकाशक अजमेर कोआपरेटिव प्रिंटर्स ऐंड पब्लिशर्स लि०, अजमेर। मूल्य १।)

प्यारे राजा बेटा, भाग १, २—ले० श्री ऋषभदास राँका ; प्रकाशक भारत जैन महामंडल, वर्धा। मूल्य प्रत्येक भाग ।।≈)

प्रणयिनी—लेखक श्री चंद्रकुँवर बर्त्वाल ; प्रकाशक कुसुमपाल, नीहारिका, लखनऊ। मूल्य १।।)

प्रसाद जी का अजातशत्रु—ले० श्री कृष्णकुमार सिन्हा ; प्रकाशक राजेश्वरी पुस्तकालय, गया। मूल्य ३)

प्रसाद जी का चंद्रगुप्त—लेखक और प्रकाशक वही। मूल्य २।।)

मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प—लेखक स्वामी आत्मानंद ; प्रकाशक वैदिक साहित्य सदन, देहली। मूल्य २।।)

मरुकुंज—लेखक श्री मथुरादास त्रिकमजी ; प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद। मूल्य १।)

मर्मविज्ञान—लेखक श्री रामरक्ष पाठक ; प्रकाशक चौखंभा संस्कृत सीरीज आफ़िस, बनारस। मूल्य ३।।)

महादेव भाई का पूर्वचरित—लेखक श्री नरहरि द्वा० पारीख; अनुवादक श्री रामनारायण चौधरी ; प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद। मूल्य ।।।≈)

मिलन पथ पर—लेखक तथा प्रकाशक श्री रामनारायण सिंह, सरकार बाई लेन, कलकत्ता। मू० २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीराँ, एक अध्ययन—लेखिका श्री पद्मावती 'शबनम'; प्रकाशक लोकसेवक प्रकाशन, काशी। मूल्य ३॥)

मृत्यु में जीवन—लेखक श्री अरुण एम० ए०; प्रकाशक मदनमोहन बी० ए०, निष्काम प्रेस, मेरठ। मूल्य १)

राजस्थानी भाषा और साहित्य—लेखक श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०; प्रकाशक हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। मूल्य ६)

रामचरितमानस का पाठ, भाग १, २—ले० डा० माताप्रसाद गुप्त एम० ए० डी० लिट्०; प्रकाशक वही। मूल्य प्रत्येक भाग ४)

विराट्ज्योति—ले० श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा; प्रकाशक श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा, लखनऊ। मूल्य ॥=)

विज्ञान के मनोरंजन—ले० श्री सोहनलाल गुप्त एम० एस-सी०, एम० ए०; प्रकाशक शांति पुस्तक भंडार, कनखल; मूल्य ॥)

विश्वज्योति बापू—ले० श्री रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'; प्रकाशक लोकसेवा प्रकाशन मंडल, आगरा। मूल्य १॥)

श्री वेंकटेश्वर समाचार (साप्ताहिक, बंबई), वर्ष ५५, अंक २८, दीपावली अंक—संपादक श्री देवेंद्र शर्मा। मूल्य १), वार्षिक ५)

सौश्रुती—ले० श्री रमानाथ द्विवेदी, एम० ए०, ए० एम० एस०; प्रकाशक चौखंभा संस्कृत सीरीज, बनारस। मूल्य ८॥)

हिंदी काव्य में प्रकृति-चित्रण लेखिका श्री किरणकुमारी गुप्ता एम० ए०, पी-एच० डी०; प्रकाशक हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। मूल्य ६)

हिंदी बाल कहानियाँ—प्रकाशक नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद। मूल्य ।)

हिंदी बालपाठावली—प्रकाशक वही। मूल्य ।=)

हिंदी समाचारपत्र सूची, भाग १—संपादक श्री वेंकटलाल ओझा; प्रकाशक हिंदी समाचारपत्र संग्रहालय, कसारट्टा रोड, हैदराबाद (दक्षिण)। मूल्य १।)

हृदय का चित्र—ले० श्री लक्ष्मणप्रसाद तिवारी; प्रकाशिका वासंती देवी त्रिपाठी, वासंती साहित्य मंदिर, पो० गोला (गोरखपुर)। मूल्य ।॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विविध

## भारतेंदु जन्मशती

३१ भाद्रपद, ऋषिपंचमी के दिन देश के हिंदीप्रेमियों ने भारतेंदु जन्मशती बड़े प्रेम और उत्साह के साथ मनाई। भारतेंदु की कीर्ति के अनुरूप ही उक्त अवसर पर संस्थाओं ने उत्सवादि का आयोजन किया, नागरीप्रचारिणी सभा ने भी यथा-साध्य विभिन्न आयोजनों द्वारा उस महापुरुष के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की ( विशेष आगे पृष्ठ २५० पर )। रेडियो ने भारतेंदु संबंधी कार्यक्रम प्रसारित किए और पत्र-पत्रिकाओं ने विशेषांक निकाले। दैनिक पत्रों में "आज", "अमृत पत्रिका", "भारत" और "संसार" के अच्छे विशेषांक निकले। मासिक में आगरे के "साहित्य-संदेश" का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसमें प्रचुर और सुंदर पाठ्य सामग्री प्रस्तुत की गई। नई धारा, अजंता, विक्रम आदि कई पत्रिकाओं ने, जिनके विशेषांक नहीं निकले, संपादकीय तथा अन्य लेखों द्वारा भारतेंदु विषयक चर्चा की। अंग्रेजी पत्र भी पीछे नहीं रहे। मासिक "इंडियन पी० ई० एन०", ( बंबई ), साप्ताहिक "थॉट" ( दिल्ली ) तथा "स्टेट्समैन" ( दैनिक ) जैसे पत्रों ने भी सुंदर टिप्पणियाँ लिखीं।

शती महोत्सव के अवसर पर दो विशेष अभावों की पूर्ति की हमें बहुत आशा थी, जो अपूर्ण ही रही। एक तो किसी निश्चित और सुविचारित योजना के अनुसार दृढ़ सत्संकल्प के साथ साहित्य-निर्माण के कार्य का प्रारंभ और दूसरा नाट्यकला की उन्नति के लिये हिंदी साहित्यिकों के अपने रंगमंच का निर्माण।

## दक्षिण-भारत और हिंदी

सन् १९१७ में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के इंदौर अधिवेशन के निश्चय के अनुसार महात्मा गांधी ने दक्षिण में हिंदी-प्रचार का कार्य आरंभ कराया था। सन् १९२७ तक वह कार्य सम्मेलन के प्रबंध में होता रहा, उसके बाद प्रमुख रूप से दक्षिणभारत-हिंदी-प्रचार-सभा उसे करती आ रही है। इस बीच लाखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियों ने वहाँ हिंदी सीखी और प्रायः प्रत्येक स्थान में हिंदी बोलने-समझनेवालों की संख्या बढ़ रही है। परंतु हिंदी के राजभाषा स्वीकृत होने में अधिक विरोध दक्षिण के, विशेषतः मद्रास के कुछ लोगों द्वारा हुआ था। तब से यह विशेष रूप से अनुभव किया गया कि वास्तविक स्थिति तथा इस विरोध के कारण का पता लगाकर यथासंभव उसे दूर करना तथा उत्तर और दक्षिण के बीच अधिकाधिक संपर्क बढ़ाना राष्ट्रप्रेमी हिंदी-हितैषियों का कर्तव्य और उत्तरदायित्व है। तदनुसार हिंदी-साहित्य-सम्मेलन ने सितंबर के अंत में अपने तत्कालीन सभापति श्री चंद्रबली पांडे की प्रमुखता में एक शिष्टमंडल दक्षिण भेजा था। यह मंडल लगभग एक मास वहाँ रहा और मद्रास नगर तथा कर्नाटक, केरल, तमिलनाड और आंध्र प्रदेशों के प्रमुख स्थानों में जाकर प्रायः सभी प्रकार के विचारों के शिक्षित वर्ग से मिला। इस संपर्क का परिणाम सुंदर हुआ और सर्वत्र सद्भावना के प्रमाण मिले। यह भी प्रकट हो गया कि वस्तुतः हिंदी का विरोध वहाँ नाम मात्र का है। जहाँ है वहाँ मंडल ने उसके तीन कारण बताए हैं—(१) वहाँ के लोग दिल्ली के साम्राज्य के विरुद्ध हैं, (२) अब्राह्मण हिंदी को ब्राह्मणों की भाषा समझते और ब्राह्मण-विरोध के कारण हिंदी का भी विरोध करते हैं, (३) उन्हें भय है कि उनकी सुंदर और संपन्न प्रादेशिक भाषाओं को हिंदी दबा न ले।

स्पष्ट है कि इन तीनों के मूल में एक ही मुख्य कारण-भ्रम है। किसी भी प्रदेश पर दिल्ली का 'साम्राज्य' समझना तो आज उपहास्य अज्ञान माना जायगा। और हिंदी न तो केवल ब्राह्मणों और आर्यों की भाषा है (भाषाविज्ञान के अनुसार वह भले ही आर्यवर्ग की भाषा हो), न दक्षिण या किसी भी प्रदेश की समृद्ध भाषाओं को उससे तनिक भी आँच पहुँचने की आशंका है, प्रत्युत उनका पारस्परिक संपर्क और आदान-प्रदान निश्चय ही हिंदी तथा उसके संपर्क में आनेवाली भाषाओं की विशेष समृद्धि का कारण होगा।

परंतु हमें यह मानना ही पड़ेगा कि उपर्युक्त भ्रम और आशंका को दूर करने का थोड़ा-बहुत तो उत्तरदायित्व उत्तर-भारत के हिंदी-भाषियों पर भी अवश्य है। हमारे विचार से, प्रतिष्ठित संस्थाओं के शिष्टमंडल तो समय-समय पर जायँ ही; इसके अतिरिक्त, हम जब हिंदी सीखना दक्षिण-भारतीयों का कर्तव्य समझते हैं तो हिंदी-भाषियों का भी आवश्यक कर्तव्य है कि वे न केवल उनकी कठिनाइयों को समझकर यथासंभव उनका मार्ग सरल बनाने में सहायक हों, प्रत्युत स्वयं भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण की भाषाएँ सीखकर उनके साहित्य और जीवन का निकट से परिचय प्राप्त करें। कम से कम हिंदी के विद्वानों, कवियों, लेखकों और पत्रकारों को तो हिंदी के अतिरिक्त दो अन्य प्रादेशिक भाषाएँ—एक उत्तर की और एक द्रविड़ भाषाओं में से कोई—प्रसन्नता से सीखनी चाहिए और चाहने पर यह कोई बहुत कठिन कार्य न होगा। इससे ज्ञानवर्धन तो होगा ही, निकटतर संपर्क द्वारा हमारी सांस्कृतिक एकसूत्रता भी सुदृढ़ होगी। हमारा विश्वास है, यदि इस प्रकार हिंदी के विद्वान् दक्षिण की साहित्यिक प्रगति से परिचित हों और हिंदी जगत् को भी उससे परिचित कराएँ तो उत्तर दक्षिण के बीच की कृत्रिम दूरी निश्चय ही बहुत शीघ्र दूर हो जायगी।

इस कार्य में सुगमता और स्थायित्व लाने के लिये यह भी आवश्यक है कि उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों में अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साथ तमिल, तेलुगू आदि द्रविड़ भाषाओं के साहित्य के अध्ययन-अध्यापन में प्रोत्साहन और सुविधा प्रदान की जाय तथा ऐसे पृथक् विद्यापीठ भी खोले जायँ, जहाँ अहिंदीभाषी छात्र हिंदी की और हिंदीभाषी छात्र अन्य प्रादेशिक भाषाओं की शिक्षा प्राप्त कर सकें।

इस प्रसंग में हम भारत के लिये एक लिपि की आवश्यकता को भूल नहीं सकते। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष ने अपने अभिभाषण में इस ओर ध्यान दिलाया है (इसी अंक में 'चयन', पृष्ठ २१८)। यहाँ हम श्री अनंतशयनम् आयंगर के उस मंतव्य का एतत्संबंधी अंश जिसे उन्होंने भारतेंदु शती के अवसर पर सभा को लिखा था, अहिंदीभाषियों, विशेषतः द्रविड़-भाषा-भाषियों के विचारार्थ उद्धृत करते हैं—

"इस भाषा (राष्ट्रभाषा हिंदी) को लोकप्रिय बनाने तथा इसकी उन्नति के साथ अन्य भाषाओं को भी आगे बढ़ाने के लिये संपूर्ण भारत की एक लिपि होना आवश्यक है और देवनागरी उसके लिये सबसे योग्य है। एक लिपि को स्वीकार कर लेने से भारत की परस्पर संबंधित भाषाओं का अध्ययन अत्यंत सुगम हो जायगा और सांस्कृतिक संपर्क बढ़ने के साथ साथ भारत की सुदृढ़ता में सहायता मिलेगी।"

## योजना ?

हिंदी को राजभाषा घोषित हुए एक वर्ष का समय बीत गया, १५ वर्ष की अवधि एक वर्ष कम हुई। इस बीच में उक्त अवधि तथा अंग्रेजी अंकों को लेकर जितने रोष और वाग्वैभव का प्रदर्शन देखने में आया, हिंदी के अभावों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पूर्ति का प्रयत्न उतना नहीं हुआ। यह दुःख का विषय है। हम मानते हैं कि हिंदी को समृद्ध करना संविधान में संघ सरकार का कर्तव्य स्वीकार किया गया है। परंतु एक वर्ष की प्रतीक्षा ने यह स्पष्ट कर दिया कि सर्व-साधन-संपन्न सरकार की गति इस दिशा में कितनी धीमी है। दिल्ली की अखिलभारतीय-हिंदी-परिषद् तथा मध्यप्रदेश की राष्ट्रभाषा-प्रमाणीकरण-परिषद् ने क्या कार्य किए इसका भी हमें पता नहीं है। इधर पटना विश्वविद्यालय में कुछ शुभ अनुष्ठान हुआ है (द्रष्टव्य 'चयन' पृष्ठ २०६); हम उससे अच्छी ही आशा करते हैं, परंतु अभी से क्या कहा जाय? अस्तु, विगत एक वर्ष की शून्यता यह कठोर संकेत करती है कि आज उन्हीं संस्थाओं और व्यक्तियों के, जिन्होंने राष्ट्रभाषा की उन्नति और प्रतिष्ठा के लिये आजतक अनेक त्याग और प्रयत्न किए, फिर दूने उत्साह से साहित्य-निर्माण के कार्य में जुट जाने की आवश्यकता है और इसके लिये आवश्यकता है एक व्यापक और सम्मिलित योजना की, जिसके अंतर्गत समय और कार्य-विभाग के अनुसार सरलता की दृष्टि से अन्य परस्पर पूरक योजनाएँ भी हों। ऐसी योजना बनाकर कभी का कार्य आरंभ हो जाना चाहिए था, पर अब और विलंब घातक होगा।

हिंदी की प्रमुख संस्थाएँ सम्मिलित प्रयत्न से विभिन्न विषयों के विद्वानों का सहयोग प्राप्त कर इस दिशा में आगे बढ़ें, तो निश्चय ही आगामी कुछ महीनों में योजना का निर्माण और तदनुसार कार्यारंभ बहुत कठिन न होगा। पर अधिक सोच-विचार के लिये अब समय नहीं रह गया है।

—संपादक


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सभा की प्रगति

( वैशाख-पौष २००७ )

२६ चैत्र संवत् २००६ को हुए सभा के ५७ वें वार्षिक अधिवेशन में संवत् २००७ के लिये निम्नलिखित कार्याधिकारी और प्रबंध समिति के सदस्य चुने गए—

## कार्याधिकारी

सभापति श्री आचार्य नरेंद्रदेव। उपसभापति (१) श्री सहदेव सिंह। उपसभापति (२) श्री पं० बलदेव उपाध्याय। प्रधानमंत्री-श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़। साहित्य मंत्री-श्री राजेंद्रनारायण शर्मा। अर्थमंत्री-श्री मुरारीलाल केडिया। प्रकाशन मंत्री-श्री काशीनाथ उपाध्याय। प्रचार मंत्री-श्री रत्नशंकर प्रसाद। संपत्ति-निरीक्षक-श्री मथुरादास। पुस्तकालय निरीक्षक-श्री देवीनारायण ऐडवोकेट। आयव्यय निरीक्षक-श्री हरनारायण टंडन।

## प्रबंध समिति के सदस्य

( सं० २००७–२००६ )

काशी—श्री दिलीपनारायण सिंह; श्री राय कृष्णदास; श्री श्रीनिवास; श्री ठा० शिवकुमार सिंह; श्री गिरिजाशंकर गौड़। उत्तर प्रदेश-श्री मैथिलीशरण गुप्त; श्री भगवतीशरण सिंह। राज्य—श्री झाबरमल शर्मा; श्री मोतीलाल मेनारिया। सिंध—स्थान रिक्त। दिल्ली—श्री डा० वासुदेवशरण अग्रवाल। असम—श्री श्रीप्रकाश। मैसूर—श्री जी० सच्चिदानंद। रूस—श्री ए० बारानिकोव। अमेरिका—श्री जगदीशचंद्र अरोड़ा।

( सं० २००६–२००८ )

काशी—श्री बच्चन सिंह; श्री करुणापति त्रिपाठी; श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र; श्री कृष्णानंद; श्री पद्मनारायण आचार्य। बंगाल—श्री डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या। उत्कल—श्री गोविंद चंद्र मिश्र; उत्तरप्रदेश—श्री अशोक जी; श्री गोपालचंद्र सिंह। पंजाब—श्री जगन्नाथ पुच्छरत। बीकानेर राज्य—श्री विद्याधर शास्त्री। बिहार—श्री शिवपूजन सहाय। ब्रह्मदेश—श्री डा० ओम् प्रकाश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


( सं० २००७ )

काशी—श्री रामऋषि शुक्ल; श्री गोविंदप्रसाद केजरीवाल; श्री ठाकुरदास ऐडवोकेट; श्री पं० केशवप्रसाद मिश्र; श्री जीवनदास। बंबई—श्री घनश्यामदास पोद्दार। मध्यप्रदेश—श्री नंददुलारे वाजपेयी। राज्य—श्री माधवराव विनायकराव किबे। उत्तरप्रदेश—श्री डा० धीरेंद्र वर्मा। राज्य—श्री विश्वेश्वरनाथ वाम्रे। बड़ोदा—श्री शांतिप्रिय आत्माराम। सिंहल—श्री ना० नागप्पा। मद्रास—श्री हनुमत् शास्त्री।

## नियम परिवर्तन

उक्त वार्षिक अधिवेशन में सभा के नियमों में निम्नलिखित परिवर्तन स्वीकृत हुए—

१—नियम २० क में "३" के स्थान पर "५ रु०" किया जाय।

२—नियम २१ इस प्रकार कर दिया जाय—

"सब श्रेणी के सभासदों को उनके सभासद होने के वर्षारंभ से सभा की मुखपत्रिका बिना मूल्य दी जायगी। ये सभासद सभा द्वारा प्रकाशित कोश की एक प्रति ⅘ मूल्य पर तथा अन्य पुस्तकों की एक एक प्रति ¾ मूल्य पर ले सकते हैं।"

३—नियम ३४ में से 'यथावश्यकता एक कार्याध्यक्ष' पृथक् कर दिया जाय।

४—नियम ३६ का अंतिम वाक्य, 'परंतु' से लेकर 'होगा' तक, पृथक् कर दिया जाय।

५—नियम ४२ के सब अंश पृथक् कर दिए जायँ। नियम ४३ की नियम संख्या '४२' कर दी जाय तथा इसके उपरांत समस्त नियम-संख्याएँ इसी क्रम से ठीक कर ली जायँ।

६—वर्तमान नियम ४४ के अंतर्गत नवीन (च) विभाग इस प्रकार रखा जाय—"(च) सभा के अंतर्गत सभी विभागों के कर्मचारियों की छुट्टी तथा वेतन की स्वीकृति देना एवं अनुशासन संबंधी अंतिम निर्णय करना।"

७—वर्तमान नियम ५० में से 'यथावश्यकता एक कार्याध्यक्ष' तथा 'जिनमें कम से कम एक महिला सभासद का रहना आवश्यक होगा' ये शब्द पृथक् कर दिए जायँ।

८—वर्तमान नियम ५६ में से 'कार्याध्यक्ष' शब्द पृथक् कर दिया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## आर्यभाषा पुस्तकालय

पुस्तकालय वैशाख से पौष तक २१३ दिन खुला रहा और वाचनालय २५१ दिन। इस अवधि में १३४ नए सदस्य बने तथा २८ व्यक्ति सदस्यता से पृथक् हुए। १४ व्यक्तियों ने पी-एच० डी० के लिये पुस्तकालय का उपयोग किया। दैनिक पाठकों की संख्या प्रतिदिन १०० के लगभग रही। १ साधारण सदस्य आजीवन सदस्य हुए। ३८८ पुस्तकें भेंटस्वरूप, ५४ पुस्तकें समीक्षार्थ तथा ५० पुस्तकें परिवर्तन में प्राप्त हुईं। इनके अतिरिक्त १६३ पुस्तकें खरीदी गईं। इस प्रकार कुल २६७ पुस्तकें पुस्तकालय में बढ़ीं। दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक, चतुर्मासिक तथा अर्द्धवार्षिक पत्र-पत्रिकाएँ देश-विदेश से आती रहीं, जिनकी संख्या १२५ तक रही।

## हस्तलिखित ग्रंथों की खोज

इस वर्ष हस्तलिखित ग्रंथों के विवरण लेने का कार्य केवल 'दो मास ( वैशाख और ज्येष्ठ ) हुआ। इधर संवत् २००४–२००६ की त्रैवार्षिक रिपोर्ट तैयार करने का समय हो गया था, अतः प्रधान अन्वेषक श्री दौलतराम जुयाल, उक्त रिपोर्ट तैयार करने के लिये सभा कार्यालय में चले आए। दूसरे अन्वेषक श्री कृष्णकुमार वाजपेयी को अर्थाभाव के कारण खेदपूर्वक अलग कर देना पड़ा।

उक्त दो मास में दोनों अन्वेषकों द्वारा ४६ ग्रंथों के विवरण लिए गए जिनमें से निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं :—

| ग्रंथ | ग्रंथकार | रचनाकाल | लिपिकाल | विशेष |
|---|---|---|---|---|
| नयचक्र की टीका | साह हेमराज | १७२६ वि० | १९२९ वि० | खड़ी बोली गद्य |
| आत्मदर्शन | नापूराम | ,, | १९८७ वि० | |
| सम्यक्तकौमुदीभाषा | जोधराज | १७२४ वि० | १९०० वि० | |
| परमात्माप्रकाश | दौलतराम | ,, | १८८६ वि० | गद्य टीका |
| देवागमस्तोत्रकी वचनिका | जयचंद | १८६८ वि० | ,, | ,, ,, |
| तिलोकसार | टोडरमल | ,, | १८८० वि० | ,, ,, |
| प्रवचनसार सिद्धांत की टीका | हेमराज | १७०९ वि० | १८४६ वि० | ,, ,, |
| शृंगारदर्पण | नंदराम कवि | १९२७ वि० | | |
| भाषालघुव्याकरण | केशवप्रसाद तिवारी | १९३६ वि० | १९३६ वि० | |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| | | | |
|---|---|---|---|
| सुंदरविलास | सुंदरदासजैन | १९२१ वि० | १९७६ वि० |
| पदुमसागर | तुलसीदास | | १९०१ वि० |
| सुखसदनग्रंथ | गंगदास | | " |
| तत्वसार | " | | " |

## प्रकाशन

इस अवधि में निम्नलिखित नवीन ग्रंथ प्रकाशित हुए—

(१) श्री संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, प्रधान संपादक आचार्य नरेंद्रदेव; मूल्य १५ रु०। (२) चुने फूल, संपादक श्री पद्मनारायण आचार्य; मूल्य २ रु०। (३) जन-जागरण का अग्रदूत—ले० श्री चंद्रबली पांडेय। (४) बेसिक रीडर भाग ३—मूल्य ८ आना। (५) भारतेंदु ग्रंथावली भाग १ (नाटकों का संग्रह) संपादक श्री व्रजरत्नदास; मूल्य ८ रु०। (६) लंकादहन (काव्य) ले० स्व० चौधरी लक्ष्मीनारायण सिंह, 'ईश'; मूल्य १॥ रु०।

निम्नलिखित पुस्तकें पुनर्मुद्रित हुईं—

(१) रामचंद्रिका, (२) रानी केतकी की कहानी, (३) नासिकेतोपाख्यान, (४) मध्य हिंदी व्याकरण, (५) भारतीय शिष्टाचार, (६) संक्षिप्त हिंदी व्याकरण, (७) हिंदी साहित्य का इतिहास, (८) भाषाविज्ञानसार, (९) त्रिवेणी, (१०) रत्नाकर, भाग १ तथा (११) हिंदी की गद्य शैली का विकास।

निम्नलिखित पुस्तकें छप रही हैं जिनमें प्रथमोक्त दो बहुत शीघ्र प्रकाशित हो जायँगी—

(१) संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर (संशोधित और परिवर्द्धित), (२) सूरसागर, खंड २ तथा (३) धातुविज्ञान।

## मुद्रणालय

कई वर्ष पूर्व सभा ने अपना निजी मुद्रणालय स्थापित करना निश्चित किया था। इस वर्ष इसके लिये एक नया कमरा बनवाया गया तथा कुछ यंत्रादि भी क्रय किए गए। अन्य आवश्यक उपकरण भी यथासंभव शीघ्र क्रय करके कार्यारंभ कर दिया जायगा।

## श्री संपूर्णानंद अभिनंदन समारोह

१७ वैशाख को माननीय श्री संपूर्णानंद जी का अभिनंदन समारोह हुआ। आयोजनानुसार इस अवसर पर उन्हें एक अभिनंदन ग्रंथ समर्पित किया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें सन्निविष्ट लेखों में भारतीय दर्शन के विभिन्न अंगों का विवेचन, साहित्य संबंधी गवेषणात्मक निबंध, प्राचीन भारतीय संस्कृति विषयक अनुसंधानात्मक रचनाएँ एवं अन्यान्य विवादग्रस्त विषयों की मीमांसा है। इस अवसर पर भारत-कला भवन द्वारा एक विशेष प्रदर्शनी तथा भातखंडे संगीत विद्यालय (लखनऊ) द्वारा संगीत का भी आयोजन किया गया था।

## भारतेंदु जन्मशती महोत्सव

इस अवधि का दूसरा महत्त्वपूर्ण आयोजन भारतेंदु-जन्मशती-महोत्सव था जो ऋषिपंचमी (सौर ३१ भाद्रपद) को श्री वियोगीहरि के सभापतित्व में संपन्न हुआ। काशिराज श्रीमन्महाराज विभूतिनारायण सिंह ने उत्सव का उद्घाटन किया। इस अवसर पर होनेवाले विशिष्ट आयोजनों में मुख्य ये हैं—विभिन्न नाट्यशैलियों का प्रदर्शन, भारतेंदु जी के समकालीन कवियों का दरबार, सभा का वार्षिकोत्सव तथा पुरस्कार-पदक वितरण, कवितापाठ आदि। रेडियो विभाग ने शती-उत्सव का कार्यक्रम सभा से प्रसारित करने का प्रबंध किया था। इसी अवसर पर सभा के प्रकाशन विभाग द्वारा भारतेंदु जी के नाटकों का संग्रह भारतेंदु ग्रंथावली के प्रथम भाग के रूप में प्रकाशित किया गया तथा नागरीप्रचारिणी पत्रिका का भारतेंदु जन्मशती विशेषांक भी निकाला गया। हमें संतोष है कि यह अंक विद्वानों को रुचिकर हुआ। साहित्य-संदेश (आगरा), विक्रम (उज्जैन), इंडियन पी० ई० एन० (अंग्रेजी, बंबई) आदि मासिक पत्रों में इसकी समीक्षा तथा प्रशंसा छपी। लेफ्टिनेंट कर्नल डाक्टर अमरनाथ झा ने विशेष रूप से सभा को पत्र लिखकर उत्साह बढ़ाया।

माया, जार्ज टाउन,
दिनांक इलाहाबाद, अक्टूबर, १९५०

प्रिय गौड़ जी,

नागरीप्रचारिणी-पत्रिका का भारतेंदु विशेषांक मिला। मैंने इसे आदि से अंत तक पढ़ा और इससे बड़ा उपकृत हुआ। इस उच्च कोटि के अंक के प्रकाशन पर अनेक बधाई।

भवदीय,
ह० अमरनाथ झा

श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़, एम० ए०
नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

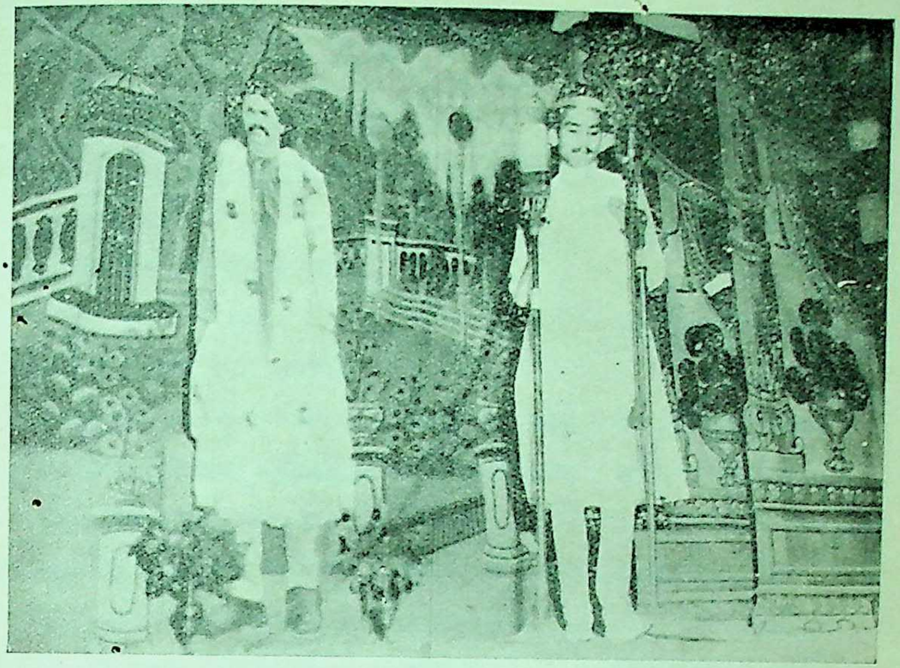

काशी-नरेश श्रीमान् विभूतिनारायण सिंह द्वारा भारतेंदु शती उत्सव का उद्घाटन

उत्सव के सभापति श्री वियोगीहरि का भाषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## पुरस्कार और पदक

१ आश्विन को, सभा के वार्षिकोत्सव के अवसर पर निम्नलिखित पुरस्कार और पदक संमुखांकित विद्वान लेखकों को अर्पित किए गए—

| पुरस्कार पदक | पुस्तक | लेखक |
|---|---|---|
| बिड़ला पुरस्कार तथा रेडिचे पदक, सं० २००१–२००५ | स्वप्न दर्शन | श्री राजाराम शास्त्री |
| बटुकप्रसाद पुरस्कार तथा सुधाकर पदक, सं० २००२–२००६ | अचल मेरा कोई | श्री वृंदावनलाल वर्मा |
| रत्नाकर पुरस्कार २ तथा बलदेवदास पदक, सं० १९९९–२००३ | राजस्थानी भाषा | श्री डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या |
| जोधसिंह पुरस्कार तथा गुलेरी पदक, सं० २००१–२००५ | प्राचीन भारतीय शासनपद्धति | श्री डा० अ० स० अलतेकर |
| द्विवेदी स्वर्ण पदक, सं० २००३ | कुरुक्षेत्र | श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' |
| द्विवेदी स्वर्ण पदक, सं० २००४ | वाणभट्ट की आत्मकथा | श्री डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी |
| द्विवेदी स्वर्ण पदक, सं० २००५ | आत्मकथा | श्री डा० राजेंद्रप्रसाद |

## साहित्य गोष्ठी और 'प्रसाद' व्याख्यानमाला

इस अवधि में ४ भाद्रपद को आचार्य नरदेव उपाध्याय के सभापतित्व में तुलसी-जयंती मनाई गई। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित व्याख्यानों के आयोजन हुए—

| तिथि | | व्याख्यान | व्याख्याता |
|---|---|---|---|
| २० श्रावण, | २००७ | नेपाल यात्रा | श्री मुनि कनकविजय |
| २ पौष | ,, | रीतिकालीन साहित्य | श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र |
| ३ ,, | ,, | भाषाविज्ञान | श्री करुणापति त्रिपाठी |
| ४ ,, | ,, | हिंदी की वर्तमान काव्य धाराएँ | श्री विजयशंकर मल्ल |
| ५ ,, | ,, | हिंदी का कथा साहित्य | श्री डा० श्रीकृष्णलाल |
| ६ ,, | ,, | हिंदी का नाट्य साहित्य | श्री डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा |
| ७ ,, | ,, | साहित्यालोचन | श्री पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव |
| ८ ,, | ,, | जयशंकर प्रसाद | श्री पद्मनारायण आचार्य |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## भारतकला भवन

हमें खेद है कि सभा द्वारा संरक्षित संग्रहालय 'भारतकला भवन' इस वर्ष हिंदू विश्वविद्यालय में स्थानांतरित कर देना पड़ा। पिछले १०-१५ वर्षों से इस संग्रहालय का प्रसार जिस तीव्र गति से होता चल रहा था उसे देखते हुए भविष्य में उसका पालन-पोषण करते रहना सभा की सीमित शक्ति के बाहर हो गया था। अतएव जब हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा उसके संरक्षण और भविष्योन्नति की आशा बँधी तब सभा ने उसे स्वीकार कर लेना ही श्रेयस्कर समझा।

## प्रतिसंस्कृत देवनागरी लिपि

संवत् २००४ में सभा ने देवनागरी लिपि में संशोधन परिवर्तन आदि किए जाने के संबंध में विचार करके यह स्थिर किया था कि श्री श्रीनिवास जी द्वारा प्रतिसंस्कृत लिपि का व्यवहार परीक्षार्थ आरंभ किया जाय। किंतु यह परिवर्तन लोक को ग्राह्य नहीं हुआ। फलतः १ पौष २००७ की प्रबंध समिति ने इस विषय में पुनर्विचार करके यह निश्चय किया है कि अभी इस संबंध में तटस्थ नीति बरती जाय।

—सहायक मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

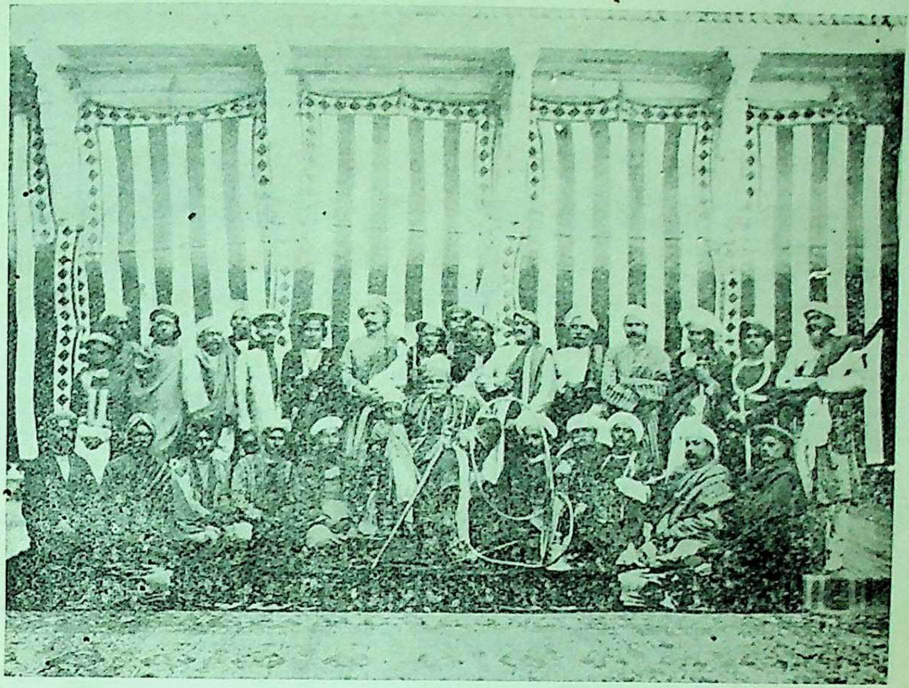

काशी-नरेश श्रीमान् विभूतिनारायण सिंह द्वारा सभा को प्रदत्त दरबार का एक फोटो चित्र; खड़े व्यक्तियों में बाईं ओर से सातवें भारतेंदु जी हैं।

शती उत्सव के अवसर पर अभिनीत बुद्ध-गृहत्याग का एक दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सभा के वार्षिक विवरण (सं० २००६) का परिशिष्ट

## हस्तलिखित ग्रंथों की खोज

इस वर्ष श्री दौलतराम जुयाल ने डा० दीनदयालु गुप्त (अध्यक्ष, हिंदी विभाग, लखनऊ-विश्वविद्यालय) के निरीक्षण में रायबरेली और लखनऊ जिलों में कार्य किया। श्री कृष्णकुमार वाजपेयी परतापगढ़ और बस्ती जिलों में क्रमशः श्री शीतलाप्रसाद ऐडवोकेट और प्रोफेसर श्रीपति शर्मा के निरीक्षण में कार्य करते रहे। परतापगढ़ जिले में कार्य समाप्त हो गया है।

श्री दौलतराम जुयाल ने २४६ और श्री कृष्णकुमार वाजपेयी ने २०७ ग्रंथों के विवरण लिए। सब ४५३ ग्रंथों में से ४३ ग्रंथों के रचयिता अज्ञात हैं। शेष ४१० ग्रंथ ३२० ग्रंथकारों के रचे हैं।

ग्रंथों और ग्रंथकारों का विक्रमीय-शताब्दि-क्रम से वर्गीकरण नीचे दिया जाता है—

| शताब्दी | १४ वीं | १५ वीं | १६ वीं | १७ वीं | १८ वीं | १९ वीं | २० वीं | अज्ञात | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ग्रंथकार | १ | ४ | ६ | २६ | ३८ | ६५ | २६ | १५४ | ३२० |
| ग्रंथ | २ | ११ | ६ | ४५ | ५४ | ८६ | ३६ | २१० | ४५३ |

ग्रंथों का विषय-विभाजन इस प्रकार है—

(१) दर्शन—३१, (२) योग—४, (३) अध्यात्म—४, (४) भक्ति—४९, (५) पुराण तथा इतिहास—२७, (६) काव्य—५७, (७) अलंकार—१३, (८) शृंगार—३१, (९) रीति—८, (१०) लीलाविहार—१०, (११) ज्ञानोपदेश—४१, (१२) कथा-कहानी—१४, (१३) परिचयी तथा वार्ता—३, (१४) पिंगल—७, (१५) पौराणिक कथाएँ—३०, (१६) स्तोत्र तथा माहात्म्य—२३, (१७) प्रेमकथा-काव्य—१, (१८) स्वरोदय—५, (१९) नीति—३, (२०) वास्तुविद्या—२, (२१) कोकशास्त्र—७, (२२) तंत्र-मंत्र—२, (२३) ज्योतिष—१८, (२४) शकुन—१, (२५) शालिहोत्र—१०, (२६)


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक—१५, (२७) वैद्यक—१९, (२८) संगीत—४, (२९) कोश—२, (३०) सामुद्रिक—२, (३१) भूगोल—१, (३२) स्वप्नविचार—२, (३३) नाटक—१ (३४) विविध—५।

श्री दौलतराम जुयाल द्वारा जिन ग्रंथों के विवरण लिए गए उनमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं—

अलंकार शृंगार (सटीक)—शिवदास कृत। अलंकार विषयक सुंदर रचना है। रचनाकाल अज्ञात ; लिपिकाल संवत् १९४२ वि०।

टिकैतरायप्रकाश—बेंती निवासी कवि बेनीकृत अलंकार विषयक रचना है जिसमें अवध के दीवान टिकैतराय का भी यश वर्णन किया गया है। रचनाकाल १८४९ वि० और लिपिकाल १९४५ वि०।

रसविलास—यह भी उपर्युक्त बेनी कवि की ही रचना है जिसमें रसों और नायिका-भेद का वर्णन है। कवि की यह प्रधान रचना है। रचनाकाल १८७४ वि०; लिपिकाल १९५३ वि०।

दलेलप्रकाश—थान कवि कृत। रचनाकाल १८४८ वि० और लिपिकाल १९४६ वि०।

काव्यविलास—प्रतापसाहिकृत साहित्यशास्त्र विषयक प्रौढ़ कृति है। रचनाकाल संवत् १८८६ और लिपिकाल संवत् १९४६ है।

भाषाभरण—बैरिसाल द्वारा रचित उत्तम कृति है। रचनाकाल १८२५ वि० और लिपिकाल १९४६ वि० है।

कमरुद्दीनखाँ हुलास—रचयिता गंजन कवि। यह नायिकाभेद के अतिरिक्त ऐतिहासिक रचना भी है जिसमें दिल्ली के वजीर कमरुद्दीनखाँ की वीरता का वर्णन है। रचनाकाल संवत् १७८५ वि०।

राधासुधानिधिटीका—राधावल्लभी संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य हितहरिवंश कृत 'राधासुधानिधि काव्य' की यह गद्यटीका है। लिपिकाल १९५२ वि०।

भागवत दशम स्कंध (काव्य)—रचयिता गिरधारी। एक सुंदर साहित्यिक कृति है जिसमें श्रीकृष्ण की ब्रजलीलाओं का संक्षेप में बड़ा रोचक और आकर्षक वर्णन किया गया है। बीसवीं शती के प्रारंभ की रचना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदामा चरित्र—इसके भी रचयिता गिरधारी ही हैं। सुदामा की दीनता का इसमें बड़ा हृदयग्राही वर्णन है।

बाबा मलूकदास की परिचयी—रचयिता सुथरादास। इसमें बाबा मलूकदास का परिचय दिया है। रचयिता बाबा मलूकदास ही के भानजे थे, अतः रचना के प्रामाणिक होने में कोई संदेह नहीं। इसकी एक प्रति संवत् १७८४ की लिखी है।

नेहप्रकाश—बालकृष्णदास कृत। रचनाकाल संवत् १७४९ और लिपिकाल संवत् १८८५ वि०।

शक्तिचिंतामणि, बरवै और कवित्त—भवानीप्रसाद "भावन" कृत शृंगार-विषयक सुंदर रचनाएँ हैं। प्रथम ग्रंथ को संक्षिप्त विवरण में भैया त्रिलोकीनाथसिंह का रचा बताया है पर प्रस्तुत प्रति द्वारा ऐसा विदित नहीं होता। रचनाकाल संवत् १८५१ और लिपिकाल संवत् १८७३ वि०।

हितचौरासी की टीका—प्रेमदासि कृत हितहरिवंश के चौरासी पदों पर व्रजभाषा गद्य में विस्तृत टीका की गई है। रचनाकाल संवत् १७९१ वि० है।

संतसई—राय राजा जयसिंह राय द्वारा रचित संत-साहित्य की उत्तम रचना है। इसमें सौ दोहे हैं जिनमें बड़े मार्मिक भाव प्रकट किए गए हैं। लिपिकाल संवत् १९५७ है।

कोकसार—आनंद कवि कृत। इस बार इसकी संवत् १८९८ वि० की लिखी प्रति मिली है जिसमें रचनाकाल संवत् १६६० वि० दिया है।

अलंकार मनमंजरी—ऋषिनाथ द्वारा रचित अलंकार विषयक रचना है। रचनाकाल संवत् १८३० और लिपिकाल संवत् १८९० है।

कृष्णचंद्रिका—बलिदेवदास कृत सुंदर काव्य कृति है।

सतीविलास—नारि विरंजि द्वारा रची गई यह एक उपदेशात्मक रचना है, जिसको रचयित्री ने अपने पति के मनोरंजनार्थ लिखा था। यह वि० बीसवीं सदी के प्रारंभ की रचना विदित होती है।

देवीचरित्र—रचयिता आनंदलाल। एक साहित्यिक कृति है, जिसमें भगवती का ओजस्वी चरित्र वर्णित है। रचनाकाल संवत् १८०६ वि० और लिपिकाल संवत् १९०२ वि० है।

कवित्त शेखसाईं—इस बार आलम के कवित्त शेखसाईं के नाम से मिले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपभ्रंश सूक्तियाँ—अपभ्रंश के कुछ ऐसे छंद मिले हैं, जिनमें उत्तम सूक्तिय कही गई हैं। इनकी संस्कृत में टीका दी गई है और इनमें देशी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।

शालिहोत्र—राजा सूब्बासिंह 'श्रीधर' कृत शालिहोत्र विषयक उत्तम ग्रंथ है। रचनाकाल संवत् १८९६ और लिपिकाल संवत् १६४५ है।

रससागर—रचयिता सिवराज महापात्र। नायिका-भेद विषयक रचना है जिसमें सम्हौली (गोरखपुर) के राजवंश का विस्तृत वर्णन है। ऐतिहासिक दृष्टि से ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है। रचनाकाल संवत् १८६६ है।

व्यवहारपाद—प्रियादास कृत याज्ञवल्क्य स्मृति के व्यवहारपाद की गद्य टीका है। लिपिकाल संवत् १९०४ वि० है।

शिखनख—हनुमान कवि द्वारा रचित उत्तम शृंगारिक कृति है। रचनाकाल और लिपिकाल अज्ञात हैं।

कामकलासार—इदयागिरि कृत। इसमें विषय का शास्त्रीय और पूर्ण विवेचन है। रचनाकाल संवत् १८३७ और लिपिकाल संवत् १९२२ वि० है।

इस बार पैंतालीस जैन रचनाओं के विवरण भी लिए गए हैं जिनमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं—

पांडवपुराण—रचयिता अज्ञात। यह खड़ी बोली गद्य में लिखा गया बृहत्काय ग्रंथ है। विषय नाम से ही स्पष्ट है। रचनाकाल दिया तो नहीं पर इसमें वर्णित आधारों के अनुसार यह सतरहवीं विक्रमशती के उत्तरार्द्ध में रचा गया था। यह मूल संस्कृत का अनुवाद है।

तत्त्वज्ञान तरंगिणी—मूल रचना संस्कृत में है, जिसके रचयिता भट्टारक ज्ञानभूषण हैं। भाषाकार अज्ञात हैं। तत्त्वज्ञान विषयक यह रचना प्राचीन गद्य में है जिसमें खड़ीबोली का भी रूप पाया जाता है।

उत्तरपुराण भाषा—खुस्यालकृत एक बृहद् ग्रंथ है जिसमें जैन तीर्थंकरों के चरित्रों का वर्णन है। रचनाकाल १७९९ वि० और लिपिकाल १८७३ वि० है।

सुदर्शन चरित्र—नंद या नंदलालकृत। इसमें जैन धर्मानुयायी सुदर्शन सेठ की कथा का वर्णन है। रचनाकाल संवत् १६६३ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पांडवपुराण—रचयिता बुलाकीदास। एक बृहद् ग्रंथ है। रचनाकाल १७५४ वि० और लिपिकाल १९०६ वि० है।

आदिपुरान की बालबोध भाषा वचनिका—रचयिता दौलतराम। इसमें आरंभिक जैन तीर्थंकरों का चरित्र-वर्णन है। रचना खड़ी बोली गद्य में है, अतः महत्त्वपूर्ण है। रचनाकाल संवत् १८२४ और लिपिकाल संवत् १८६८ वि० है। मूलग्रंथ का यह अनुवाद है।

रामपुरान—खुस्यालचंद कृत। विषय नाम से ही स्पष्ट है। रचनाकाल संवत् १७८३ है और लिपिकाल संवत् १८२७ वि०। यह भी मूल संस्कृत का अनुवाद है।

श्रीपालविनोद—विनोदीलाल कृत। इसमें जैन-धर्मानुयायी राजा श्रीपाल का चरित्र वर्णित है। रचनाकाल १७५० वि० तथा लिपिकाल १८९४ वि०।

श्रीपाल चरित्र—इसके रचयिता कवि परिमल्ल हैं जो एक प्रौढ़ कवि विदित होते हैं। इनकी प्रस्तुत रचना साहित्यिक दृष्टि से उत्तम कृति है। इसमें भी राजा श्रीपाल का ही वर्णन है। रचनाकाल १६४९ वि० और लिपिकाल १८७४ वि०।

पुण्याश्रव कथाकोस भाषा—दौलतराम कृत गद्य ग्रंथ है। इसमें अनेक कथाओं का संग्रह है। रचनाकाल १७७७ वि० और लिपिकाल १८८७ वि०।

शांतिनाथपुराण—सेवाराम कवि कृत। इसमें शांतिनाथ तीर्थंकर का चरित्र-वर्णन किया गया है। रचनाकाल संवत् १८३४ और लिपिकाल संवत् १९०९ है।

यशोधर चरित्र—नंद या नंदलाल कृत। इसमें जैन भक्त यशोधर का चरित्र-वर्णन है। रचनाकाल १६७४ वि०।

भक्तामर चरित्र—विनोदीलाल द्वारा रचित उत्तम कृति है। रचनाकाल १७४७ और लिपिकाल १९०९ वि०।

श्री कृष्णकुमार वाजपेयी द्वारा विवृत ग्रंथों में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं—

जैमिनिपुराण—रचयिता पुरुषोत्तमदास। रचनाकाल १६५८ वि० और लिपिकाल १८६५ वि०। साहित्यिक दृष्टि से ग्रंथ उत्तम है।

मोहमुग्दर—तुलसीदास कृत। लिपिकाल १९३९ वि०।

अंककुतूहल—पीतमदास कृत। इसमें गणित के उत्तम उत्तम चुटकुले और उनके हल दिए गए हैं। विषय की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण रचना है। रचनाकाल संवत् १८८८ वि० है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामरसायन—भगवानदास कृत पिंगल विषयक कृति है। रचनाकाल १८६७ वि०।

नासकेतकथा—रचयिता भगवतीदास। रचनाकाल १६८८ वि० और लिपिकाल १९१९ वि०।

छायायोग—जानकीदास द्वारा रचित योग-विषयक रचना है। लिपिकाल संवत् १९१० है।

चंपूसाध्य ( सामुद्रिक )--रचयिता भूप या भूपति। इसमें कोक और सामुद्रिक विषयों का वर्णन है। रचनाकाल १६९५ वि० और लिपिकाल १७१७ वि०।

विराह चंद्रिका—सारंगधर कृत। कोशविषयक ग्रंथ है। इसमें स्वर्णकारी विद्या का भी वर्णन किया गया है। लिपिकाल १७७४ वि०।

वैद्यक विलास--चिरपटनाथ द्वारा रचित। वैद्यक का उत्तम ग्रंथ है। रचनाकाल-लिपिकाल अज्ञात हैं।

बद्रीनाथयात्रा कथा--अयोध्यानरेश बख्तावरसिंह की धर्मपत्नी ने इसकी रचना संवत् १७८८ वि० में की थी। विषय की दृष्टि से ग्रंथ महत्त्व का है।

भक्ति उक्ति--रचयिता दासराम। भक्ति संबंधी रचना है। रचनाकाल १७७१ वि०।

भागवतभाषा—सबलस्याम कृत। रचनाकाल १६८८ वि० और लिपिकाल १९०९ वि०।

कविता कल्पतरु—सागर कवि कृत। साहित्यशास्त्र विषयक रचना है। ग्रंथ के संबंध में विशेष बात यह है कि राजस्थान के किसी राजा के आज्ञानुसार कवि ने एक कविगोष्ठी की जिसमें काव्य-लक्षणों के विषय में विवेचना हुई। जो जो बातें सर्वसम्मति से निश्चित हुईं उनका प्रस्तुत ग्रंथ में विस्तार से वर्णन किया गया है। इस दृष्टि से प्रस्तुत रचना का महत्त्व स्वयं प्रकट होता है। रचनाकाल संवत् १७८८ और लिपिकाल संवत् १७८९ होने से प्रस्तुत प्रति मूल प्रति ही विदित होती है।

बानी—मनमोहनदास कृत। संत-साहित्य विषयक रचना है।

सुदामा चरित्र--रचयिता मलौली ( बस्ती ) निवासी बनमाली हैं। रचनाकाल और लिपिकाल एक ही, संवत् १८५८ वि० है। यह उत्तम साहित्यिक कृति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जुगलानंद सुधा--रचयिता कृष्णदास। इसमें भगवान श्रीकृष्ण की अष्टप्रहर सेवा विधान का वर्णन है। लिपिकाल संवत् १८७३ वि०।

सियाराम गुणानुवाद--अहलाद दास कृत। इसमें रामचरित्र वर्णित है। मानस के ढंग पर यह लिखा गया है। रचनाकाल संवत् १८१४ वि०।

वर्षप्रदीप--परमेश्वरदत्त द्वारा रचित ज्योतिष विषयक ग्रंथ है। रचनाकाल संवत् १७९६ वि० तथा लिपिकाल संवत् १९३१ वि० हैं।

लग्न सुंदरी--रचयिता छदूराम। ज्योतिष का ग्रंथ है। रचनाकाल १८७० वि० और लिपिकाल १९७० वि०।

रसरत्न—भूपतिकृत रस और अलंकार विषयक सुंदर रचना।

विक्रम नाटक—रचयिता रणविजय बहादुर सिंह। यह खड़ी-बोली गद्य में लिखा गया एक नाटक है। रचनाकाल और लिपिकाल अज्ञात हैं।

ऊपर के विवरण से पता चलता है कि इस बार साहित्यिक ग्रंथों की बहुलता रही। इनमें से कई ग्रंथों में मध्यकाल के ऐतिहासिक विवरण भी पाए जाते हैं। भक्ति, संत-साहित्य, परिचयी (जीवनी) और स्मृति (धर्मशास्त्र) संबंधी भी उपयोगी रचनाएँ मिली हैं। कामशास्त्र और शालिहोत्र के भी ग्रंथ मिले हैं जिनमें शास्त्रीय दृष्टिकोण से विषयों का सुंदर प्रतिपादन किया गया है।

विशेष उल्लेखनीय कार्य इस वर्ष यह हुआ कि लखनऊ के दो प्रमुख जैन मंदिरों में प्रचुर मात्रा में उक्त संप्रदाय के धार्मिक और साहित्यिक ग्रंथ मिले हैं जिनके विवरण लिए जा रहे हैं। इनको देखने से पता चलता है कि अधिकांश प्राचीन जैन वाङ्मय का हिंदी में बहुत पहले ही से अनुवाद प्रस्तुत है। इनमें गद्य पद्य दोनों में रचनाएँ हैं। अनेक ग्रंथों के अनुवाद काव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं और हिंदी साहित्य के इतिहास संबंधी ग्रंथों में स्थान पाने योग्य हैं।

गत वर्ष के विवरण में सन् १९२६–२८ ई० की खोज की त्रैवार्षिक विवरणिका के राजकीय प्रेस में छपने के लिये भेजे जाने का उल्लेख किया गया था। वह अभी छपी नहीं है। आगे की कई त्रैवार्षिक विवरणिकाएँ प्रेस के लिये तैयार हैं। छपने के लिये भेजी गई उक्त विवरणिका मुद्रित हो जाते ही इन्हें भी क्रमशः छपने के लिये भेज दिया जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वर्ष श्री दौलतराम जुयाल ने सभा के लिये निम्नलिखित हस्तलेख प्राप्त किए—

| नाम | रचयिता | रचनाकाल | लिपिकाल |
|---|---|---|---|
| न्याय ग्रंथ | × | × | × |
| पिंगल ( अपभ्रंश ) | दिनकर | × | × |
| अनुभवसागर | × | × | × |
| रससारिणी | × | × | × |
| शालिहोत्र | दयानिधि | × | × |
| योगरत्नाकर | × | × | १६०७ वि० |
| वैद्यमतोत्सव | नयनसुख | सं० १६४९ वि० | १६०१ वि० |
| रामविनोद | रामचंद्र | × | × |
| चाणक्यशास्त्र भाषा | कवि सेनापति | × | × |
| भँवरगीत | जनमुकुंद | × | १८६८ वि० |
| रामनवरत्न ( मुद्रित ) | जानकीप्रसाद या जानकी सिंह | सं० १६०८ वि० | मुद्रण १९२३ वि० |
| भगवती विनय | " | " | " " |
| रागमाला | × | × | × |
| बारहमासा | कबीर | × | × |
| ऋषिपंचमी व्रतकथा | × | × | १८६० वि० |
| कोकशास्त्र | × | × | × |
| सत्यनारायण की कथा ( गद्य ) | × | × | × |
| वास्तु प्रदीप ( गद्य ) | × | × | × |
| ज्ञानदीपिका | तुलसीदास | सं० १६३१ वि० | × |
| भागवत ( प्रथम स्कंध, गद्य ) | × | × | × |
| बारहमासा | वहाव | × | × |
| नायिका भेद | × | × | × |
| सत्य प्रबंध | गदाधर शुक्ल | सं० १८४४ वि० | सं० १८६० वि० |
| कवित्त संग्रह | विविध कवि | × | × |
| गीता भाषा | × | × | × |
| भागवत दशमस्कंध | रामदास | × | × |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| | | | |
|---|---|---|---|
| पिंगल | × | × | × |
| पिंगल | × | × | × |
| रसमालिका | रामचरणदास | × | × |
| ज्ञानप्रकाश | जगजीवनदास | × | सं० १६१६ वि० |
| रामायण-माहात्म्य या तुलसीचरित्र | गंगादास | × | × |
| ब्रह्मरहस्य | रतनहरि | × | × |
| वैद्यशिरोमणि | रामकवि | सं० १६०८ वि० | × |
| अध्यात्म लीलावती | संतन कवि | × | × |
| जातक चंद्रिका | शंभूनाथ त्रिपाठी | × | × |
| पद | मगनानंद | × | × |
| प्रश्नमनोरमा | जनज्वाला | सं० १६२७ वि० | × |
| भड्डुली ज्योतिष | भड्डुली | × | × |
| बोधरतन | भगवद्दास | × | × |
| बब्रुवाहन् कांड | जनप्राननाथ | × | सं० १८६८ वि० |
| वैराट पर्व | हेमनाथ | × | सं० १८७५ वि० |
| सुखदेव चरित्र | बागेश्वर भारती | × | सं० १९०६ वि० |
| भागवत की अनुक्रमणिका | बालदास | × | सं० १९२१ वि० |
| गणेशपुराण | मोतीलाल | × | × |
| कृष्ण-जन्म | भोपत | × | × |
| ध्यानमंजरी | अग्रदास | × | × |
| गीताभाषा | × | × | × |
| व्याधिनास ( मूल प्रति ) | मेहरबानकृत | × | सं० १८७१ वि० |
| मुहूर्तमंजरी | शंभूनाथ त्रिपाठी | सं० १८०३ वि० | १८८६ वि० |
| कवित | छैल | × | × |
| सीतावनवास कथा ( अवधी की प्राचीन रचना ) | × | × | × |
| पिंगल | चतुर्भुज ( अकबर का आश्रित ) | × | × |
| नायिकाभेद | नीलकंठ | × | × |
| ककहरा | गंगादास | × | × |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

| | | | |
|---|---|---|---|
| कविप्रिया टीका ( कविप्रियाभरणाख्या ) | हरिचरणदास | × | × |
| अपभ्रंश की रचना (सूक्तिकाव्य) | × | × | + |
| दूत परीक्षा ( वैद्यक ) | कवि श्रीधर | × | × |
| पिंगल | सुखदेव मिश्र | × | सं० १८६३ वि० |
| सतसई | बिहारीलाल | × | सं० १८६४ वि० |
| शालिहोत्र | नकुल | × | सं० १९०१ वि० |
| प्रश्नोत्तर विदग्ध मुखमंडन | चंदन कवि | सं० १७६७ वि० | × |
| जलहरण दंडक | ,, | × | × |
| वसंतराज भाषाशास्त्र ( गद्य ) | × | × | × |
| रामरसिक रागमाला | गोपालदास | × | × |

श्री कृष्णकुमार वाजपेयी द्वारा निम्नलिखित हस्तलिखित पुस्तकें प्राप्त हुई—

| रचना | रचयिता | रचनाकाल | लिपिकाल |
|---|---|---|---|
| छठी महातम | अज्ञात | × | × |
| अध्यातम | सुखदेव | × | × |
| बानी | मनमोहनदास | × | १६०७ वि० |
| विराटपर्व, महाभारत | गोविंद कवि | × | × |
| निर्णयसार | कबीरदास | × | १६४४ वि० |
| भ्रमरगीत | प्रागनि | × | ११६१ साल |
| रामशलाका | तुलसीदास | × | × |
| कवित्त | धारू | × | × |
| प्रयागशतक | भागवत | × | × |
| शालिहोत्र | कुरताराम | १८७४ वि० | १९३१ वि० |
| भक्ति | खेमकरन | × | १२८४ साल |
| पिंगल | गंगादास | × | १२७६ साल |
| भँवरगीता | प्रागनि | × | १६२५ वि० |
| गृहस्तधर्म | अज्ञात | × | १२६१ साल |
| निकुंजवर्णन ( व्रजभाषा गद्य ) | अज्ञात | × | × |
| शालिहोत्र | पांडेय गुरुदीन | × | १२८० साल |
| नायिका भेद | अज्ञात | × | १८६० वि० |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| | | | |
|---|---|---|---|
| स्वप्नविचार | सीताराम | १८२७ वि० | × |
| स्वप्नविचार | पीतांबर राय | × | १८२६ वि० |
| वैद्यमतोत्सव ( मुद्रित ) | नैनकवि | १६४६ वि० | १९२२ वि० |
| चित्रकूट.विलास ( खंडित ) | हृदयराम | × | × |
| गुंजाकल्प | गौरी | × | १६१८ वि० |
| भरथ विलाप | ईश्वरदास | × | × |
| स्वरोदय | चरणदास | × | × |
| गृह दीपक | भवानीचरण | × | १९४० वि० |
| ज्योतिष | गेवा | × | × |
| रामबाराखड़ी | रामरत्न | × | १६३४ वि० |
| जुगलानंद सदासमुद्र (सिकरावली) | जैदयाल | × | १८७३ वि० |
| भारती कंठाभरन | जगत सिंह | १८६३ वि० | १८९६ वि० |
| नासकेत कथा ( खंडित ) | अज्ञात | × | × |
| अलंकार | भिखारीदास | × | × |
| सामुद्रिक | राम | × | १९०४ वि० |
| साठिका | अज्ञात | × | १८१७ वि० |
| विष्णुसहस्रनाम | हरिभुवनदास | × | × |
| महाभारत | नामदेव | × | × |
| विक्रम नाटक | रणविजै बहादुर सिंह | × | × |
| लक्ष्मीचरित्र मानमंजरी | नारायणलाल | × | × |
| सूरसागर ( खंडित ) | सूरदास | × | × |
| वंशविभूषण | गोविंद कृत | १८६९ वि० | × |
| रसरत्न ( खंडित ) | भूपति | × | × |
| बारहमासा ,, | हरिवंश | × | × |
| जीवगति | मातादीन शुक्ल | × | १६१० वि० |
| गीताभाषा | गंगादास | × | १२६८ साल |
| चंपूसाध्य | भूप | १६९५ वि० | १७१७ वि० |
| आरतमोचन | भगवानदास | १८८५ वि० | × |
| ज्ञानतिलक | कबीरदास | × | × |
| मोहमुद्गर | तुलसीदास | × | १९३९ वि० |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

| | | | |
|---|---|---|---|
| ज्ञानसंबोध विधान बोध | अक्षर अनन्य | × | × |
| होरी | मौजीदास | × | × |
| सुदामा चरित्र | धिरजाराम | १७८३ वि० | × |
| शालिहोत्र | करताराम | × | × |
| छाया जोग | जानकीदास | × | १९१० वि० |
| कवित्त | जानकीदास | × | × |
| स्वप्न विचार | अमरसिंह | १७९९ वि० | × |
| हरिश्चंद्र कथा | जगन्नाथ | × | १२७० साल |
| आत्मकर्म | पलटूदास | × | × |
| काव्यकल्पद्रुम ( मुद्रित ) | विश्वनाथ सिंह | १९४३ वि० | × |
| भक्ति उक्ति | दासराम | १७७१ वि० | × |
| रमलप्रकाश | राघवदास | × | १९११ वि० |
| गीत भाषा | शुक कवि | × | × |
| कहावत | साचार | × | × |
| चित्रकूटविलास | कृपाराम | १८३५ वि० | × |
| सुखसाराख्य | × | × | × |
| बारहमासा, बारहमासा (एक में) | नत्थन, खैराशाह | × | १९२२ वि० |
| घड़ी खैरा की | खैराशाह | × | × |
| कका बतीसी | गोविंददास | × | × |
| ककहरा | अजबदास | × | १९३४ वि० |
| विराह चंद्रिका | सारंगधर | १७७४ वि० | × |

खोज-कार्य का निरीक्षण और समय-समय पर अन्वेषकों को उचित परामर्श देकर डा० दीनदयाल गुप्त ( अध्यक्ष, हिंदी विभाग, लखनऊ-विश्वविद्यालय ), श्री शीतलाप्रसाद ऐडवोकेट ( प्रतापगढ़ ), श्री कुंवर सुरेशसिंह ( कालाकांकर ) और पंडित श्रीपति शर्मा ( प्राध्यापक, सेकसरिया-कालेज, बस्ती ) ने जो सहायता की है उसके लिये सभा उनकी अत्यंत अनुगृहीत है। श्री गोपालचंद्र सिंह ( विशेष कार्याधिकारी, हिंदी राजकीय कोश विभाग, प्रांतीय सचिवालय, लखनऊ ) का भी सभा विशेष आभार स्वीकार करती है, जो प्रत्येक अवसर पर वांछित सहायता देते रहे हैं।

कृष्णदेवप्रसाद गौड़

प्रधान मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## भारतेंदु ग्रंथावली ( पहला खंड )

संपादक श्री व्रजरत्नदास, बी० ए०, एल-एल० बी०

आधुनिक हिंदी के जन्मदाता गोलोकवासी भारतेंदु हरिश्चंद्र के समस्त नाटकों का यह संग्रह संवत् २००७ में मनाई गई उनकी जन्मशती के अवसर पर प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में कुल सत्रह नाटक दिए गए हैं जिनमें दस मौलिक हैं तथा पाँच संस्कृत से और बंगला से अनूदित है। इस संस्करण के नाटकों का पाठ यथासंभव भारतेंदु जी के समसामयिक संस्करणों के आधार पर ही निश्चित किया गया है। जहाँ नाटकों के प्रथम संस्करण नहीं मिले, वहाँ भारतेंदु जी की पत्रिकाओं-हरिश्चंद्र मैगजीन, हरिश्चंद्र चंद्रिका, बालाबोधिनी, कविवचनसुधा, आदि की सहायता से मूल पाठ का निर्धारण और नाटकों की रचना का क्रम निर्धारित किया गया है। इस प्रकार यह संस्करण अध्येताओं तथा अनुशीलनकर्ताओं के लिये विशेष उपयोगी हो गया है। परिशिष्ट में 'नाटक' नामक एक निबंध तथा पात्रों और नाटक में प्रयुक्त गीतों की प्रतीकानुक्रमणिका भी दे दी गई है। डबल डिमाई १६ पेजी आकार के लगभग ८०० पृष्ठ। सुंदर मजबूत पक्की जिल्द। मूल्य केवल ८ रु०।

## लंकादहन

रचयिता स्व० चौधरी लक्ष्मीनारायणसिंह "ईश"

वाल्मीकि रामायण की कथा पर आधृत इस खंडकाव्य के कवि ने महावीर हनुमान का श्री रामचंद्र जी से मुद्रिका लेकर जानकी जी को देने से लेकर उनकी चूड़ामणि लाकर श्री रामचंद्र जी को अर्पित करने तक का प्रसंग ऐसी टकसाली व्रजभाषा में किया है जिसमें काशी में प्रयुक्त अवधी का भी पुट है। स्व० "ईश" जी व्रजभाषा की कवि-शृंखला की अंतिम कड़ी थे। उनकी वाग्धारा में जिन्होंने अवगाहन किया है वे भली भाँति जानते हैं कि उनकी रचनाएँ प्रसंगानुकूल कितनी मधुर और ओजपूर्ण होती थीं। वे विज्ञापन और प्रचार से दूर, केवल स्वांतःसुखाय रचना करते थे, फलतः स्फुट कविताएँ यदा-कदा ही पत्रों में प्रकाशित हुआ करती थीं। सभा ने उनसे विशेष आग्रह करके यह खंडकाव्य प्रकाशनार्थ लिया था। डबल क्राउन १६ पेजी आकार के १६० पृष्ठ; मूल्य १॥ रु० मात्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नागरीप्रचारिणी सभा

के

## सदस्यों से निवेदन

जब से हिंदी राष्ट्रभाषा हुई है, तब से हिंदी-प्रेमियों का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है। अब यह आवश्यक हो गया है कि संघटित रूप से हिंदी का प्रचार और प्रसार हो। हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद तक पहुँचाने में नागरीप्रचारिणी सभा का जो हाथ रहा है वह सर्वविदित है। अब हिंदी को समृद्धिशालिनी बनाना अति आवश्यक हो गया है। सभा ने इस संबंध में कई योजनाएँ बनाई हैं। इन योजनाओं में सदस्यों का सहयोग अपेक्षित है। सर्वप्रथम, सभा के सदस्यों की संख्या देश और विदेशों में बढ़े, इसका प्रयत्न करना है। जब तक सभा के सदस्यों की संख्या अत्यधिक नहीं होगी, सभा के उद्देश्यों का प्रसार न हो सकेगा। अतः समस्त सदस्यों से निवेदन है कि वे सभा की सदस्य-संख्या बढ़ाने में सहयोग दें। प्रत्येक सदस्य से यह प्रार्थना की जाती है कि कम से कम एक सदस्य तो वे बना ही दें। इस पत्र के साथ सदस्यता के दो आवेदनपत्र संलग्न है। आवश्यकता पड़ने पर नियमावली तथा आवेदनपत्र की और प्रतियाँ भी सभा से मँगाई जा सकती हैं। आशा है, सदस्यों का अमूल्य सहयोग सभा को अवश्य प्राप्त होगा।

**भवदीय—**

| | | |
|---|---|---|
| **(आचार्य) नरेंद्रदेव** | **गोविंदप्रसाद केजरीवाल** | **कृष्णदेवप्रसाद गौड़** |
| सभापति | संयोजक | प्रधान मंत्री |

## सूचना

सब श्रेणी के सभासदों को उनके सभासद होने के वर्षारंभ से सभा की मुखपत्रिका बिना मूल्य दी जायगी। ये सभासद सभा द्वारा प्रकाशित कोष की एक ~~प्रति [illegible]~~ मूल्य पर तथा अन्य पुस्तकों की एक-एक प्रति ३।४ मूल्य पर ले सकते हैं।

( सभा का नियम, संख्या २१ )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ५५ संवत् २००७ अंक ४


भारतीय मुद्राओं का सविशेष अध्ययन—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, एम० ए०, डी० लिट्० ... २६५

महाकवि मेघविजय और उनके ग्रंथ—श्री अगरचंद नाहटा ... २८२

श्रुति-साहित्य की काव्योन्मुखता—श्री राजेंद्रनारायण शर्मा ... २६२

वैदिक साहित्य में राम-कथा का बीज—श्री चंद्रभान, एम० ए० ... ३०१

धार से प्राप्त एक शिलालेख—श्री वि० श्री० वाकणकर ... ३०६

विमर्श

वाल्मीकि-आश्रम—श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, साहित्य वाचस्पति ३०९

भूषण का रचनाकाल—श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, एम० ए० ३१६

चयन ... ... ... ३२२

समीक्षा ... ... ... ३३५

विविध ... ... ... ३५४

पत्रिका की सं० २००७ की परिवर्तन-सूची ... ... क, ख


काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

वार्षिक मूल्य १०) : इस अंक का २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पत्रिका के उद्‌देश्य

१—नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।
२—हिंदी साहित्य के विविध अंगों का विवेचन।
३—भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान।
४—प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

# निवेदन

[ १ ] प्रतिवर्ष, सौर वैशाख से चैत्र तक, पत्रिका के चार अंक प्रकाशित होते हैं।

[ २ ] पत्रिका में उपर्युक्त उद्देश्यों के अंतर्गत सभी विषयों पर सप्रमाण और सुविचारित लेख प्रकाशित होते हैं।

[ ३ ] पत्रिका के लिये प्राप्त लेखों की प्राप्ति-स्वीकृति शीघ्र की जाती है, और उनकी प्रकाशन संबंधी सूचना एक मास के भीतर भेजी जाती है।

[ ४ ] पत्रिका में समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। उनकी प्राप्ति-स्वीकृति पत्रिका में यथासंभव शीघ्र प्रकाशित होती है; परंतु संभव है उन सभी की समीक्षाएँ प्रकाश्य न हों।


**संपादन-परामर्श-मंडल**

**केशवप्रसाद मिश्र** **राय कृष्णदास**

**हजारीप्रसाद द्विवेदी** **वासुदेवशरण अग्रवाल**

संपादक

**कृष्णानंद**

सहायक संपादक

**पुरुषोत्तम**


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ५५ ] संवत् २००७ [ अंक ४

## भारतीय मुद्राओं का सविशेष अध्ययन *

[ श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ]

भारतीय मुद्रा-परिषद् की स्थापना १६१० में हुई। परिषद् ने अपने सदस्यों के द्वारा भारतीय मुद्राओं की संरक्षा और शास्त्रीय अध्ययन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अनेक प्रतिभाशाली विद्वानों ने इस विषय के कितने ही महत्त्वपूर्ण अध्यायों को सजाकर भारतीय इतिहास की अनमोल सामग्री प्रस्तुत की है। किंतु विद्या का क्षेत्र संतत संवर्धनशील है। इसमें सदा नवीन दृष्टिकोण से नई और पुरानी सामग्री पर काम करनेवाले विद्वानों की आवश्यकता है। ऋग्वेद के प्रथम सूक्त में कहा है—

अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।

जिस ज्ञान-अग्नि की उपासना में पूर्व ऋषियों ने काम किया है, नूतन काल के ऋषि भी उस परंपरा को आगे बढ़ाते हैं। हमारे इस परिमित क्षेत्र में भी यह नियम सत्य है। भारतीय मुद्राओं के अध्ययन के लिये इस समय विशेष रूप से नए कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। संग्रहालयों में सिक्कों की सामग्री दिन-दिन बढ़ रही है और आवश्यक कार्यकर्ताओं के अभाव में वह बिना छानबीन के बहुत वर्षों तक रखी रह जाती है। पिछले वर्षों में हमारी इस परिषद् के प्रकाश-स्तंभ आचार्य श्री अनंत सदाशिव अल्टेकर ने कौशांबी से प्राप्त और प्रयाग-संग्रहालय में वर्षों से सु-

* गत २७ दिसंबर १६५० को नागपुर में हुए भारतीय मुद्रा-परिषद् के अधिवेशन में यह सभापति-पद से दिया गया भाषण है। अभी तक उक्त विशिष्ट पद से अंग्रेजी में ही भाषण दिए जाते रहे हैं, इस बार पहले-पहल यह महत्त्वपूर्ण भाषण हिंदी में दिया गया है।—सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रक्षित मुद्राओं की छानबीन करके कई नए राजाओं का पता लगाया जिससे प्राचीन वत्स जनपद एवं उसके पड़ोसी राज्यों के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ा। यह एक उदाहरण मात्र है। प्रायः प्रत्येक संग्रहालय में सिक्कों के संग्रह इसी प्रकार के अध्ययन की बाट जोह रहे हैं। इस विषय में कई प्रकार से काम किया जा सकता है। एक तो हम सब सच्चे हृदय से इस स्थिति पर विजय पाने का प्रयत्न करें कि जो भी सामग्री हमारी संरक्षा में हो वह बिना अध्ययन और परिचय के न रहने पाए। यदि आप इसे स्वीकार करें तो मेरी प्रार्थना है कि प्रत्येक संग्रहाध्यक्ष अपने मुद्रा-संग्रह की इस प्रकार की अनधीत सामग्री का लेखा-जोखा अगले छः मासों में तैयार कर ले और उसकी सूचना परिषद् की पत्रिका के संपादक श्री अल्टेकर जी के पास भेज दे। परिषद् के कार्यालय में इस प्रकार की प्राप्त सूचनाओं पर विचार किया जाय और यह निश्चय किया जाय कि किन विशेषज्ञों द्वारा उस सामग्री का अध्ययन कराया जा सकता है।

दूसरी बात यह है कि परिषद् को भिन्न-भिन्न वंशों और युगों की मुद्राओं के अध्ययन के लिये विशेषज्ञ विद्वान् चुनने चाहिए। काम की सुविधा के लिये यह एक प्रकार से काम का बँटवारा करना होगा। विद्वानों को स्वयं अपनी इच्छा से चुनाव करना चाहिए कि उन्हें किस युग के सिक्कों में विशेष रुचि है। इस प्रकार के सहयोग से प्रतिवर्ष मिलनेवाले नए मुद्रानिधान या सिक्कों के जखीरों ( ट्रेजर ट्रोव होर्ड ) का अध्ययन करना उचित समय के भीतर आसानी से हो सकेगा। प्रत्येक संग्रहाध्यक्ष को यह ज्ञात रहेगा कि वह किस युग के और किस राजवंश के सिक्कों की छानबीन में किस विशेषज्ञ से सहायता प्राप्त कर सकता है। यह भी उचित होगा कि जिस समय नए सिक्के या निधान मिलें उनकी सूचना अविलंब उसी तरह परिषद् के कार्यालय में भेज दी जाया करे, जैसे प्राचीन लेखों की सूचना गवर्नमेंट एपीग्राफिस्ट के पास हम भेजा करते हैं। यदि इस प्रकार का सम्मिलित प्रयत्न होगा तो आशा है कि भारतीय मुद्राविज्ञान और संग्रहालय दोनों को लाभ पहुँचेगा।

सिक्के इतिहास की बहुत ही प्रामाणिक सामग्री होते हैं। सिक्कों के पीछे राज्य की संपूर्ण शक्ति और ऐश्वर्य निहित रहता था। प्रत्येक युग में राजाओं के जो सचिवालय थे उनके द्वारा राज्य और राजा के वास्तविक संबंध, राजा की सत्ता, अधिकार और उसकी व्यक्तिगत रुचि को ध्यान में रखते हुए सिक्के चालू किए जाते थे। साथ ही साथ समाज की जो आर्थिक स्थिति थी उसका भी सबसे सच्चा प्रतिबिंब सिक्कों की तोल और मूल्य के द्वारा प्रकट होता था। सिक्कों की विनिमय दर, उनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


चाँदी, सोने, ताँबे की आपेक्षिक मिलावट और इन धातुओं के पारस्परिक मूल्य का अनुपात—इन विषयों में आर्थिक स्थिति का जो उतार-चढ़ाव हुआ है उसकी कुंजी उस युग के सिक्कों के नमूनों में आज तक छिपी हुई है। सिक्कों की सहायता से सोने और चाँदी के आपेक्षिक मूल्य पर यदि प्रकाश डाला जा सके तो यह इतिहास की बड़ी सेवा होगी।

भारतवर्ष में सिक्कों का इतिहास चाँदी की आहत मुद्राओं से आरंभ होता है। उससे पूर्व वैदिक युग में सिक्कों के अस्तित्व का पुरातत्त्वगत प्रमाण अभी तक नहीं पाया गया और न सिंधु की घाटी की सभ्यता में ही मुद्राओं के अस्तित्व का कोई निश्चित प्रमाण मिला है। वस्तुतः उस प्राचीन काल में अन्य देशों के समान हमारे यहाँ भी सिक्कों का प्रचलन नहीं हुआ था। केवल वस्तुओं के विनिमय से आर्थिक जीवन का काम चलता था। आर्य जाति की जो परंपरा यूरुप में पाई जाती है वह इस विषय में भारत से मिलती-जुलती है। इस समय वस्तु-विनिमय का मुख्य आधार पशु थे। रोमन भाषा में 'पेकस' [Pecus] अंग्रेजी 'चैटल्स' [chattels] और जर्मन भाषा में 'फीह' [Vich]—ये मूल में पशु-वाचक शब्द थे, जिनसे द्रव्य या धन का बोध होने लगा। फीह से ही अंग्रेजी 'फीस' बना है। किसी समय दक्षिणा के रूप में जो पशु दिए जाते थे उनसे फीस शब्द का दक्षिणावाची अर्थ व्यवहार में आया होगा। वैदिक युग में विनिमय का मुख्य साधन गौ थी। दक्षिणारूप में गौ का दान वैदिक प्रथा थी जो बहुत बाद तक चलती रही। पीछे धातु के सिक्के चल पड़ने से गौ का क्रेय द्रव्य दक्षिणा में दिया जाने लगा। पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'गोपुच्छ' से वस्तुएँ मोल लिए जाने का उल्लेख है। 'गोपुच्छ' शब्द डा० भंडारकर की सम्मति में गाय की वास्तविक पूँछ का नाम था। पर मैं समझता हूँ कि 'गोपुच्छ' गौ का ही वाचक है। अंग्रेजी में जैसे 'हैड्ज़ ऑव कैटल' कहा जाता है वैसे ही अपने यहाँ पशुओं की संख्या और उनका आदान-प्रदान पूँछ पकड़कर होता था। आज भी यही प्रथा गोदान का आवश्यक अंग है। सेमेटिक या सामी जातियों में सिर से पशुओं की संख्या करने का रिवाज था और वहीं से पश्चिमी देशों में भी यह परंपरा चली। मुसलमानी काल से भारतवर्ष में भी गाय भैंस की बिक्री की हुलिया लिखते समय 'गाय एक रास', 'भैंस एक रास' ऐसा लिखने लगे। यह रास शब्द सेमेटिक भाषा का है. जिसका अर्थ सिर है। इसके विपरीत भारतवर्ष में अपनी प्रथा और मुहावरे के अनुसार गाय और भैंस आदि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चराई के टैक्स या लाग को 'पुच्छी' कहा जाता है। इस प्रकार 'गोपुच्छेन क्रीतं गौपुच्छिकम्' ( अष्टाध्यायी ५।१।१६ ) पद का अर्थ संगत हो जाता है।

प्राचीन यूनान में भी विनिमय के लिये व्यवहार में गाय या बैलों का ही प्रयोग होता था। होमर ने इलियड में सोने के कवच का मूल्य सौ गौ और काँसे के कवच का मूल्य नौ गौ लिखा है ( इलियड ६।२३४ )। आर्यों की दूसरी शाखा ईरानियों में भी यही प्रथा थी। जंद-अवस्ता में वैद्य की फीस गौ के रूप में देने का उल्लेख है। गौ के समान ही वस्त्रों से भी वस्तु-विनिमय का काम लिया जाता था। अष्टाध्यायी में वसन से क्रीत वस्तु को 'वासन' कहा गया है ( ५।१।२७ )। चीन देश में सातवीं शताब्दी ई० पू० में 'पु' नामक एक सिक्का, जिसका अर्थ कमीज है, चलता था। वह शकल में हूबहू पहिनने की कमीज जैसा डेढ़-दो इंच लंबा बनाया जाता था। इसी प्रकार चाकू की आकृति का पाँच-सात इंच लंबा 'तव' नामक एक सिक्का होता था।

सिक्कों का सबसे पहले आविष्कार चाँदी या सोने के बराबर तोल के टुकड़ों में हुआ होगा। पश्चिमी जगत् में सिक्कों का सबसे प्रथम आविष्कार लीडिया देश में सात सौ ई० पूर्व के लगभग माना जाता है। इतिहासकार हीरोदोत ने निश्चित शब्दों में लिखा है कि जहाँ तक हमें मालूम है, संसार के सब देशों में लीडिया देश के लोगों ने सबसे पहिले चाँदी सोने को सिक्कों के रूप में ढाला। हीरोदोत ने सच्चे ऐतिहासिक की भाँति उस समय भी यह सावधानी से लिख दिया था कि जहाँ तक उसकी जानकारी पहुँच सकी थी वहाँ तक लीडिया देश को सिक्कों के सर्वप्रथम आविष्कार का श्रेय प्राप्त था। किंतु वस्तु-स्थिति इससे भिन्न है और सिक्कों के सर्वप्रथम व्यवहार की कल्पना भारतवर्ष में पाई जाती है। चाँदी और सोने को बराबर तोल के टुकड़ों में काटकर या ढालकर व्यवहार में चालू करना, यही सिक्कों का पहला भारतीय रूप था। उदाहरण के लिये शतपथ ब्राह्मण में हिरण्य शतमान और राजत शतमान अर्थात् दक्षिणा में दिए जानेवाले शतमानों का उल्लेख पाया जाता है ( ५।५।५।१६; १३।२।३।२ )। कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार शतमान का संबंध १०० से था, अर्थात् सौ मान या रत्ती के बराबर तोल होने के कारण वह सिक्का शतमान् कहलाया। अष्टाध्यायी में, जो पाँचवी शती ई० पूर्व में बनाई गई थी, शतमान् सिक्के का उल्लेख हुआ है ( शतमानेन क्रीतं शातमानम्, अष्टाध्यायी ५।१।२७)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अष्टाध्यायी में निष्क सिक्के का भी उल्लेख हुआ है। 'द्वित्रिपूर्वात् निष्कात्' (५।१।३०) सूत्र में दो निष्क और तीन निष्क से मोल ली जानेवाली वस्तु के लिये 'द्विनैष्किक', 'त्रिनैष्किक' रूप सिद्ध किए गए हैं। यह स्थिति पाँचवीं शती ई० पूर्व में थी। एक दूसरे सूत्र में इससे भी अधिक पुष्ट प्रमाण मिलता है। 'शतसहस्रान्ताच्च निष्कात्' (५।२।११६) सूत्र सौ निष्क और हजार निष्क धन की पूँजीवाले व्यक्ति के लिये 'नैष्कशतिक' और 'नैष्कसहस्रिक' शब्दों की सिद्धि बताता है। तत्कालीन भाषा में ये चालू शब्द थे। महाभारत में भी निष्कशत और निष्कसहस्र रूप में धन की दो कोटियों का एक ही श्लोक में उल्लेख हुआ है (अनुशा० १३।४३, शतेन निष्कगणितं सहस्रेण च संमितं)। लेकिन निष्क शब्द का धन के रूप में प्रयोग पाणिनि से भी बहुत प्राचीन था। शतपथ ब्राह्मण में उद्दालक आरुणि ने उस व्यक्ति को एक सुवर्ण निष्क देने की घोषणा की थी जो उसे शास्त्रार्थ में जीत ले (११।४।१८)। निष्क की प्राचीनता और भी पहले जाती है जब हमें ऋग्वेद में निष्क का उल्लेख मिलता है। सिंधुतटवासी राजा भाव्य अपने पुरोहित कक्षीवान् को सौ निष्क, सौ घोड़े और एक सहस्र गौएँ देता है। मुद्रा-शास्त्र की परिभाषा में ऐसा प्रतीत होता है कि सुवर्ण का कोई इस प्रकार का टुकड़ा जिसपर अनेक रूप या चिन्ह अंकित होते थे, निष्क कहलाता था, जो संभवतः आभूषण के काम में आता था (ऋ० २।३३।१०), क्योंकि कई जगह 'निष्कग्रीव' विशेषण भी मिला है। लेकिन महाभारत में जिस निष्क का वर्णन है वह आभूषण मात्र नहीं, बल्कि सिक्का अर्थात् निश्चित तौल का सोने का टुकड़ा हो गया था।

साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्धनन्तथा। (महा० द्रो० ६७)

अर्थात् प्रत्येक ब्राह्मण को १०८ सुवर्ण निष्क धन दक्षिणा में दिया गया। महाभारत में सभापर्व में वर्णन है कि विश्वकर्मा ने एक सहस्र निष्क से एक शंख बनाया था जिसे समुद्र ने वरुण की ओर से युधिष्ठिर को भेंट में दिया था (सभापर्व ५४।१५)। इस प्रकार सौ निष्क, एक सौ आठ निष्क और एक सहस्र-निष्क के उल्लेखों से निश्चित होता है कि महाभारतकार निष्क को नपे-तुले सुवर्ण के टुकड़े के अर्थ में जानते थे। पतंजलि के समय तक निष्क के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। किंतु यह भी सत्य है कि अभी तक एक भी सुवर्ण निष्क उपलब्ध नहीं हुआ। यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं, जब हम यह देखते हैं कि अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के सदमुहरी या सौ तोले और बीस तोले भार के शाहंशाही नामक सिक्कों में से अभी तक एक दो को छोड़कर और नहीं मिले, यद्यपि मुसलमानी इतिहास-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लेखकों और पश्चिमी यात्रियों ने मुगल खजाने का परिचय देते हुए उनका वर्णन किया है ( होडीवाला, मुगल मुद्राओं का अध्ययन, पृ० ५३ )।

महाभारत के एक अन्य प्रकरण की ओर मैं विशेष रूप से आपका ध्यान भारतीय सिक्कों की प्राचीनता के लिये दिलाना चाहता हूँ। युधिष्ठिर ने अपने खजाने का वर्णन करते हुए कहा है—

ताम्रलोहैः परिवृता निधयो ये चतुःशताः ।
पंचद्रौणिक एकैकः सुवर्णस्याहतस्य वै ॥
जातरूपस्य मुख्यस्य अनर्घेयस्य भारत ।
एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

[ मेरे कोष में ताँबे के बरतनों में चार सौ निधियाँ आहत सुवर्ण से भरी हुई हैं और एक एक की तोल पाँच द्रोण है। उनका सोना उत्तम प्रकार का है। ]

अभी तक सिक्कों को आहत अर्थात् चिन्हित (अंग्रेजी पंचमार्क्ड) करने की प्रथा से हमारा परिचय चाँदी के कार्षापण सिक्कों तक ही सीमित है। किंतु इस प्रमाण से ज्ञात होता है कि इसका आरंभ सोने के एक-सी तोल के टुकड़े बनाकर उनपर रूप या 'सिंबल्स' टंकित करने से आरंभ हुआ। इसी के लिये प्राचीन पारिभाषिक शब्द आहत था जिसे अब हम 'पंचमार्क' कहते हैं। रूप-समुत्थापन करने के कारण ही सुवर्ण की एक संज्ञा 'जातरूप' ( अर्थात् जिसपर रूप या किसी प्रकार का चिन्ह यंत्रित कर दिया गया हो ) पड़ी। सोने के अर्थ में जातरूप शब्द चारों वेदों में से किसी में प्रयुक्त नहीं मिलता। संभवतः ब्राह्मणकाल में रूपों के आहत करने की प्रथा का आरंभ हुआ, जैसा कि महाभारत में उल्लेख है। उस समय से आहत सुवर्ण के लिये जातरूप शब्द का आरंभ हुआ होगा और शनैः शनैः यह शब्द सुवर्ण का पर्यायवाची हो गया। इससे यह भी ज्ञात होता है कि आरंभ में सुवर्ण पर ही रूप-छेदन ( सिंबल पंच ) करने की प्रथा थी, चाँदी पर रूपों के ठप्पे लगाना इसके पीछे शुरू हुआ।

पाणिनीय सूत्र 'जातरूपेभ्यः परिमाणे' (४।३।१५३) में 'जातरूप' से तात्पर्य रूप-समुत्थापित हिरण्य से है। जहाँ हिरण्य और सुवर्ण साथ साथ आते हैं, जैसे जातक ( ६।७६ हिरञ सुवण्ण ) और अर्थशास्त्र में, वहाँ हिरण्य का अर्थ वह सोना है जिसे सिक्कों का रूप नहीं प्राप्त हुआ था। आजकल की भाषा में उसे पासा या गुल्ली कहेंगे। जब रूप से आहत होकर वह सिक्के के आकार में आता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तब उसे सुवर्ण कहते थे। अर्थात् अनढले सोने की संज्ञा हिरण्य और ढले हुए की सुवर्ण थी। सुवर्ण नामक सिक्के के वास्तविक अस्तित्व का प्रमाण महाभारत, अष्टाध्यायी और अर्थशास्त्र से मिलता है, यद्यपि अभी तक उसका भी कोई नमूना नहीं मिला। सुवर्ण की खरीज के रूप में 'पाद सुवर्ण' और 'सुवर्ण मापक' सिक्के भी होते थे। उदय जातक में सुवर्ण मापकों से भरी हुई सोने की थाली ( पात्री ) का वर्णन है।

प्राचीन भारतवर्ष में सिक्कों की तोल क्या थी, यह बहुत उलझा हुआ विषय है। ज्ञात होता है कि शतमान या सौ रत्ती की तोल देशी परंपरा के अनुसार थी। सौ रत्ती तोल के चाँदी के शतमान सिक्के तक्षशिला की खुदाई में मिले हैं, जो अब तक के प्राप्त भारतीय सिक्कों में सबसे पुराने हैं। वे आकृति में दीर्घ शलाका के समान है। विसुद्धि मग्ग में 'चित्त विचित्त' अर्थात् रूप से आहत सिक्के तीन तरह के कहे गए हैं—( १ ) दीर्घ अर्थात् लंबे ( २ ) चतुरस्र अर्थात् चौकोर और ( ३ ) परिमंडल अर्थात् गोल ( विसुद्धिमग्ग, २।४३७ )। लंबे सिक्कों की पहचान में तक्षशिला के शतमान ही हमारे सामने आते हैं। शतमान या सौ रत्ती की तोल के २/५ भाग अर्थात् ४० रत्ती या पाँच माषे का एक सिक्का पीछे चालू हुआ जो 'विंशतिक' कहलाया। इससे भी पुराना साठ रत्ती का 'त्रिंशत्क' सिक्का था। पाणिनि के समय में ये दोनों सिक्के चालू थे ( ५।१।३५ )। महाभारत वनपर्व से ज्ञात होता है कि आठ 'शाण' सिक्कों का एक शतमान होता था ( अष्टौ शाणाः शतमानं वहन्ति, वन० १३४।१४ )। इस प्रकार १२½ रत्ती की तोल का चाँदी का छोटा सिक्का 'शाण' कहलाता था जिसका पाणिनि ने दो सूत्रों में उल्लेख किया है।

अष्टाध्यायी और उससे संबंधित टीकाओं ( कात्यायन, पतंजलि और काशिका ) में प्राचीन आहत सिक्कों का जितना विशेष वर्णन है, उतना अन्यत्र नहीं पाया जाता। आहत मुद्राओं की तोल के अनुसार उनके नामों की ठीक पहचान एवं उनपर अंकित रूपों या लक्षणों का अभिप्राय और ऐतिहासिक महत्त्व, ये दो खोज के मुख्य विषय हैं। तोल के हिसाब से इन सिक्कों की मोटे तौर पर यह तालिका दी जाती है—

| संख्या | नाम | तोल रत्ती में | तोल ग्रेनों में (१ रत्ती = १·८ ग्रेन) |
|---|---|---|---|
| १ | शतमान | १०० | १८० |
| २ | अर्ध शतमान | ५० | ९० |
| ३ | पाद शतमान | २५ | ४५ |
| ४ | पादार्ध शतमान या शाण | १२॥ | २२॥ |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| संख्या | नाम | तोल रत्ती में | तोल ग्रेनों में (१ रत्ती=१'८ग्रेन) |
|---|---|---|---|
| ५ | त्रिंशत्क | ६० | १०८ |
| ६ | विंशतिक | ४० | ७२ |
| ७ | कार्षापण (प्रति, अन्य नाम) | ३२ | ५७.६ |
| ८ | अर्धकार्षापण (भाग) | १६ | २८.८ |
| ९ | पंचमाषिक ( पादविंशतिक ) | १० | १८ |
| १० | पाद कार्षापण | ८ | १४.४ |
| ११ | अष्टभाग कार्षापण | ४ | ७.२ |
| १२ | रौप्य माष | २ | ३.६ |
| १३ | अर्ध रौप्य माष | १ | १.८ |

## ताँबे के सिक्के ( ताम्रिक )

| | | | |
|---|---|---|---|
| १४ | कार्षापण | ८० | १४४ |
| १५ | अर्ध कार्षापण | ४० | ७२ |
| १६ | पाद कार्षापण | २० | ३६ |
| १७ | अष्टभाग कार्षापण | १० | १८ |
| १८ | माष | ५ | ९ |
| १९ | अर्ध माष | २॥ | ४॥ |
| २० | काकिणी | १। | २। |
| २१ | अर्ध काकिणी | .६२५ | १.०१२५ |
| २२ | त्रिंशत्क | १५० | २७० |
| २३ | विंशतिक | १०० | १८० |
| २४ | अध्यर्ध त्रिंशत्क | २२५ | ४०५ |
| २५ | अध्यर्ध विंशतिक | १५० | २७० |

आहत मुद्राओं की जो निधियाँ अब तक मिली हैं उनके सिक्कों की वास्तविक तोल के साथ यदि ऊपर लिखे हुए वजन का मिलान किया जाय तो उनमें से बहुतों की पहचान संभव है। श्री दुर्गाप्रसाद जी ने विंशतिक और त्रिंशत्क की प्राप्ति की सूचना मुझे दे दी थी। यद्यपि जातकों में चाँदी के अड्ढमासक का उल्लेख है, पर मुझे एक रत्ती के कण बराबर सिक्के के अस्तित्व में संदेह था। सौभाग्य से अभी हाल में इतने छोटे सिक्के मुझे प्राप्त हुए हैं, जिन्हें बिना देखे विश्वास करना कठिन था। जहाँगीरा के पास सिंध नदी में सोना धोनेवाले न्यारिए बालू को कपड़े में छानते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हैं। उन्हीं से सौ के लगभग रौप्यमापक प्राप्त हुए हैं जिनमें कई अडूढ रौप्य मापक भी हैं। तक्षशिला ( मीरटेकरी ), पेशावर, अफगानिस्तान, पैला, सहेट महेट, लोतापुर, अहरौरा, गोलखपुर ( पटना ), रमना ( कटक ), मछुवाटोली ( पटना ), घोड़ोघाट, भागलपुर, पतराहा ( पुरनिया ), रेढ़ ( जयपुर ), बहल (पूर्वी खानदेश), करीमनगर ( हैदराबाद ), सुलतानपुर वाई ( सितारा ), बाँदिनायकन्नूर ( मदुरा ), जौनपुर, बरवानी ( मालवा ), आदि स्थानों से प्राप्त आहत मुद्रानिधियों की बहुमूल्य सामग्री संग्रहालयों में सुरक्षित है। सिक्कों की तोल के अनुसार उनकी जाँच होनी चाहिए।

इन सिक्कों पर जो चिन्ह अंकित हैं वे विसुद्धिमग्ग के अनुसार इस बात के द्योतक थे कि किस ग्राम, निगम, पर्वत, नदी-तीर के और किस आचार्य शिल्पी के हाथों वे सिक्के बनाए गए थे। अभी तक इस संबंध में कोई कुंजी उपलब्ध नहीं हुई। मोटे तौर पर पूर्वकालीन, मध्यकालीन और उत्तरकालीन, इन तीनों प्रकार की मुद्राओं और चिन्हों की पहचान होती है। श्री दुर्गाप्रसाद जी इन मुद्राओं के विशेष अध्ययन के बाद इस परिणाम पर पहुँच रहे थे कि पाँच रूपों में जो दूसरा रूप है जिसे संस्कृत में 'षडर' ( छैरिया ) और अंग्रेजी में 'सिक्स आर्म्ड सिंबल' कहा जाता है, वह तिथि-क्रम के अनुसार बदलता रहा है। जिन षडरों की भुजाओं में परिमंडल, नंदिपद गर्भित परिमंडल ( ओवल विद टारीन ), त्रिक गर्भित परिमंडल, डमरू गर्भित परिमंडल अथवा विंदु गर्भित त्रिकोण के चिन्ह हैं वे पूर्वकाल के हैं और जिनमें नंदिपद और बाण का सम्मिलन है वे बाद के हैं। यह पहचान और भी कई प्रकार से विशेषतः मुद्राओं के आकार-प्रकार ( फेब्रिक ) और रूपों के समुदाय ( सिंबल ग्रूप्स् ) से भी ज्ञात होती है।

पाली ग्रंथों में और पाणिनि की अष्टाध्यायी में चाँदी के चालू सिक्के को कार्षापण कहा गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सैकड़ों जगह इस सिक्के का उल्लेख है, पर सर्वत्र इसे 'पण' कहा गया है। कार्षापण नाम 'कर्ष' और 'पण' इन दो शब्दों से बना है। कार्षापण शब्द वैदिक या ब्राह्मण साहित्य में नहीं पाया जाता। कर्ष शब्द असीरियन भाषा के कर्षु, यूनानी 'करेसस्' (Kerasos) से बना है। अंग्रेजी का 'चेरी' ( cherry ) शब्द इसी से है। मूल में कर्षु शब्द का अर्थ छोटी बौंडी के आकार का फल था। पुर्तगाली भाषा में इसी का रूप 'कैश' हुआ जिससे अंग्रेजी में रोकड़ के अर्थ में 'कैश' शब्द का व्यवहार होता है। चीनी लोग भी अपने चौकोर छेदवाले गोल सिक्के के लिये 'कैश' शब्द का व्यवहार प्राचीन काल से करते रहे हैं। संभ-

२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वतः भारतवर्ष में यह शब्द पाणिनि से पहले छठी या सातवीं शताब्दी में लिया गया होगा। कर्ष शब्द एक तोल का नाम था। कर्ष के बराबर जो सिक्का या पण था वह 'कार्षापण' प्रसिद्ध हुआ। सौ रत्ती की शतमान तोल के स्थान में ८० रत्ती वाले कर्ष की तोल की स्थापना भारतवर्ष में उसी समय हुई जान पड़ती है। ज्ञात होता है उस समय ताँबे और चाँदी की धातुओं का पारस्परिक मूल्य दो और पाँच के अनुपात में था। जिस प्रकार चाँदी के सौ रत्ती वाले शतमान का २।५ भाग, अर्थात् ४० रत्ती तोल का विंशतिक सिक्का था, उसी प्रकार ८० रत्ती के कर्ष का २।५ अर्थात् ३२ रत्ती तोल का हल्का नया कार्षापण चालू हुआ। राजा बिंबसार के समय में विंशतिक था और नंद राजाओं के समय में अर्थात् पाँचवीं शताब्दी में ३२ रत्ती वाला कार्षापण चालू हो गया था। पाणिनि के समय में भी दोनों सिक्के एक साथ चल रहे थे और दोनों का संबंध दो प्रकार की तोल के मान से था।

पाँचवीं शताब्दी में जब नंदों का देशव्यापी साम्राज्य स्थापित हुआ तब तोल और सिक्कों के मान को व्यवस्थित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई और नंदों ने यह काम पूरा किया। व्याकरण साहित्य में एक प्राचीन उदाहरण है 'नंदोपक्रमाणि मानानि', अर्थात् नाप-तौल को स्थिर करने का काम पहले नंद सम्राट् ने किया। नंदों की राजधानी पाटलिपुत्र में थी, इसी लिये नाप-तौल की यह परिपाटी 'मागध' नाम से प्रसिद्ध हुई। कलिंग देश ने नंदों और मौर्यों के समय में भी अपनी स्वतंत्रता को बनाए रक्खा, इसलिये कलिंग देश की नाप-तौल कालिंग मान के रूप में अलग जारी रही। ज्ञात होता है नंदों ने ८० रत्ती वाले कार्षापण को ही बहुत मान्यता दी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तो इसका निश्चित प्रमाण मिलता है कि मौर्य युग में ८० रत्ती वाला कर्ष और उससे संबंधित ३२ रत्ती का चाँदी का कार्षापण मान्य थे। कुछ जनपदों में पुरानी तोल रही और कुछ में नई तोल जारी हुई। पंचाल जनपद के राजाओं के सिक्के पुरानी तोल के आधार पर ढाले हुए हैं। मौर्यों के समय में बाजार में चाँदी का अभाव हुआ जान पड़ता है। चौथी शताब्दी में ईरानी साम्राज्य के हट जाने पर, और ईरान के साथ व्यापार-संबंध कुछ ढीला पड़ जाने के कारण, भारतीय बाजारों में चाँदी का, जो अंदराब की खानों से आती थी, तोड़ा हो गया था। मौर्यों के बहुत से सिक्के ताँबे पर चाँदी का पानी चढ़ा कर ढाले हुए हैं। यूनानियों के साथ जो राजनीतिक कशमकश थी उससे व्यापार की स्थिति पहले जैसी न सुधर सकी। शकपार्थव राजाओं के उत्तर-पश्चिम में सत्तारूढ़ हो जाने पर तो यह व्यापारिक मार्ग और भी अधिक कठिन हो गया था, यहाँ तक कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ई० पहली शती में रोम देश के निवासियों को स्थल-मार्ग से हाथ धोने के कारण भारतवर्ष से व्यापार-संबंध के लिये जलमार्ग का आश्रय लेना पड़ा। लगभग द्वितीय शताब्दी ई० पू० से ई० तीसरी शताब्दी तक हम स्पष्ट देखते हैं कि भारतीय बाजारों में चाँदी की तंगी जारी रही और ताँबे के सिक्कों का बोलबाला रहा। गण-राज्यों के और विभिन्न जनपदों के ढले हुए सिक्के सब ताँबे के ही हैं। कुषाण सम्राटों ने यद्यपि सोने के सिक्के भी चलाए, किंतु प्रधानता ताँबे के सिक्कों की रही।

कुषाणों के ताँबे के सिक्के धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सूचना देते हैं। गांधार से लेकर काशी और पाटलिपुत्र तक ये सिक्के बाजारों में छा गए थे। इन सिक्कों के एक ओर नंदी वृष के साथ खड़े हुए शिव की मूर्ति इनकी विशेषता थी। मृच्छकटिक में कुषाणकालीन ताँबे के सिक्कों के लिये ही 'नाणक' (अंक १ दृश्य १) नाम आया है। टीकाकार ने उसे 'शिवांक टंक' अर्थात् शिव की मूर्ति से अंकित सिक्का कहा है। मालवा और सौराष्ट्र के शकों ने चाँदी के सिक्के चलाए थे, उन्हें विनयपटक की समंतपासादिका टीका में रुद्रदामक कहा गया है और उनकी तोल पुराने कार्षापण सिक्कों की तीन चौथाई थी। बृहत्कल्पसूत्र भाष्य में पाटलिपुत्र के मुरुंड राजाओं का उल्लेख है, और पूर्व देश में प्रचलित सिक्कों को 'केवडक' या 'केतर' नाम दिया गया है। ये किदर कुषाणों के सिक्के ज्ञात होते हैं। इन्हीं के लिये काशिका में 'केदार कार्षापण' नाम आया है।

गुप्तकाल में चालू सिक्कों की संज्ञा सुवर्ण और कार्षापण थी। शुक्रनीति के अनुसार चाँदी से सोने का मूल्य सोलहगुना अधिक था—'रजतं षोडशगुणं भवेत् स्वर्णस्य मूल्यकम्' (१४।२।६२)। उस युग में भूमि की नाप-जोख करके प्रत्येक क्षेत्र के क्षेत्रफल और उसपर नियत राजदेय कर की निश्चित व्यवस्था कर दी गई थी। कोई भी राजा हो, प्रजा षष्ठांश राजग्राह्य भाग को धर्म्य मानकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसका पालन करती थी। शुक्रनीति में इस व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट लिखा है कि भूमि-कर का निश्चय चाँदी के कार्षापण सिक्कों में ही किया गया था। भूमि-कर से जिसकी आय प्रतिवर्ष एक लाख हो वह सामंत कहलाता था। तीन लाख राजत कार्षापण की आय का नृप, दस लाख का मांडलिक, बीस लाख का राजा, पचास लाख का महाराज, दस करोड़ का स्वराट् पचास करोड़ का विराट् और इससे अधिक सार्वभौम संज्ञा का अधिकारी था (शुक्रनीति १।१८३–८७)। प्रत्येक क्षेत्र की भूमि संबंधी आय के ये आँकड़े व्यावहारिक महत्त्व के थे। पीछे के लेखों में देशों के नाम के साथ जो बड़ी-बड़ी संख्याएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दी हुई मिलती हैं, जिनके अभिप्राय के विषय में मतभेद रहा है, वे संख्याएँ लगान की कुल जमाबंदी का संकेत करती थीं, जिनकी स्मृति गुप्तकाल के बाद भी बराबर जारी रही।

यह सर्वविदित है कि मुद्राओं की दृष्टि से गुप्तकाल भारतवर्ष का स्वर्णयुग था। गुप्त-मुद्राएँ उस युग के देशव्यापी रूप-सत्र ( ब्यूटी कल्चर ) की सच्ची प्रतिनिधि हैं। द्वितीय चंद्रगुप्त की मुद्रा पर 'रूपाकृति' पद इसी भावना को प्रकट करता है। स्वयं सम्राट् मुद्राओं में व्यक्तिगत रुचि रखते थे। उत्पताक ( स्टैंडर्ड ), धनुर्धर ( आर्चर ), हुताग्नि ( आल्टर ), गंधर्वललित ( लायरिस्ट ), सिंहपराक्रम, व्याघ्रनिहंता, खड्गत्राता, अश्वारोही, अप्रतिघ, पर्यंक, एवं अश्वमेध भाँति जिसपर अनर्गल होमतुरंग ( रघुवंश ३।३९ ) की सुंदर आकृति है, इत्यादि भाँति भाँति की कलात्मक स्वर्ण मुद्राएँ सम्राटों के शुभ्र यश और चरित्र के परिचायक छंद हैं। गुप्तयुग में देश और विदेशगत व्यापार से जो अभूतपूर्व समृद्धि हुई वह सुवर्ण मुद्राओं के रूप में सर्वत्र छा गई। राजप्रासाद, कुटीर, नगर, ग्राम उससे भर गए। आज भी उन मुद्राओं को देखकर विदित होता है, मानो पौर-जनपद-भवनों में विचरण करती हुई लक्ष्मी अपने चरणों की ललित छाप छोड़ गई हो। बयाना से प्राप्त गुप्त-मुद्राओं की निधि जब हम देखते हैं तो वह समृद्धि मूर्तिमती हो उठती है। लोगों ने आश्चर्यचकित होकर सोचा कि इतनी सुवर्ण संपत्ति पृथिवी से उत्पन्न नहीं हो सकती, यह तो आकाश से प्राप्त सुवर्ण-वृष्टि है जो राजप्रासाद से लेकर गाँवों तक में बरसी है। कालिदास ने रघुवंश के पाँचवें सर्ग में इस सुवर्ण-वृष्टि के अभिप्राय ( मोटिफ ) का काव्यमय वर्णन किया है और इसे द्युलोक का दोहन या कुबेर के कोष का वर्षण कहा है। दिव्यावदान में भी इस अभिप्राय का वर्णन मांधाता चक्रवर्ती के राज्य में सप्ताहपर्यंत हिरण्यवर्षण के रूप में आया है।

गुप्तों के बाद की मुद्राओं के नामों में तीन नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—( १ ) पणिणक, ( २ ) पयंक, ( ३ ) साभरक। जैनों के व्यवहार भाष्य में पणिणक नामक सिक्के का, हरिभद्र की आवश्यक टीका में पयंक का, और बृहत्कल्पसूत्र भाष्य में साभरक का उल्लेख है। पणिणक कौन सा सिक्का था? मेरी सम्मति में भारतवर्ष में चलनेवाले सासानी सिक्कों के लिये पणिणक नाम आया है। सासानी सम्राट् अरसेक जिस कबीले का था उसका नाम पर्णी था। ईरान के प्राचीन 'दह्युओं' का यह एक कबीला था। अरसेक और मीड दोनों जातियों का पार्थिया प्रांत (वर्तमान खुरासान) में सम्मिलन हुआ और उनका सम्मिलित राजवंश अरसेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नामक हुआ, जिसकी भाषा पहलवी हुई। इसी पर्णी जाति के राजाओं के सिक्के भारतवर्ष में पर्णिक या परिणक कहलाए। दूसरे सिक्के का पयंक नाम 'पदांक' (अर्थात् वह सिक्का जिसपर पैर का चिह्न बना हुआ था) से है। ये सिक्के इंडो-सासानी हैं जो कई सौ वर्षों तक भिन्न भिन्न रूपों में इस देश में चलते रहे। साभरक सिक्कों के विषय में बृहत्कल्पसूत्रभाष्य में श्लोक है—

दो साभरगा दीविच्चगातुसो उत्तरपथे एक्को।
दो उत्तरापहा पुण पाडलपुत्तो हवति एक्को॥ (३८९१ श्लोक)

अर्थात् साभरक द्वीप के दो सिक्के उत्तरापथ के एक सिक्के के बराबर, और उत्तरापथ के दो सिक्के पाटलिपुत्र के एक सिक्के के बराबर मूल्य में थे। श्री मोतीचंद्र जी ने साभरक द्वीप के सिक्कों की पहचान अरब के सबाई सैबियन सिक्कों से सुझाई है, जो ठीक जान पड़ती है। अभी यह जानना शेष है कि साभरक से दुगुने मूल्य के उत्तरापथ के सिक्के कौन से थे? मध्यकालीन सिक्कों का विषय अभी तक उलझा हुआ है। हर्ष से लेकर बारहवीं शती तक के सिक्कों के नाम, तोल और मूल्य पर विद्वानों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। उनकी संख्या और किस्में बहुत सी हैं और उनकी सामग्री भी संग्रहालयों में पर्याप्त है। सीयदोणी शिलालेख में इतने सिक्कों के नाम हैं—

(१) पंचयिक द्रम्म और उसके पाद सिक्के, (२) विग्रहपाल द्रम्म और उसका आधा भाग द्रम्मार्धिका, (३) आदिवराह द्रम्म और उसके पाद सिक्के (४) पंचियक द्रम्म, (५) विग्रहपालीय द्रम्म और उसका द्रम्मार्ध, (६) विग्रहपालीय द्रम्म और उसका तृतीय-भाग द्रम्म, (७) विग्रह द्रम्म से संबंधित विंशोपक सिक्का। मध्यकालीन सिक्कों का यथार्थ वर्गीकरण करके उनकी तोल निश्चित करने पर इन सिक्कों की पहचान करना संभव होगा। इसी के साथ भिल्लमाल के सिक्कों के बहुत से उल्लेख मिलते हैं। निशीथ चूर्णि में कहा है—'रूपमयं वा णाणकं भवति यथा भिल्लमाल्ले द्रम्मः' (पृ० ६१६), जिससे ज्ञात होता है कि भिल्लमाल का द्रम्म चाँदी का होता था। इसी का दूसरा नाम श्रीमालीय द्रम्म था, और इसे ही पारौपथ द्रम्म भी कहते थे। लेखपद्धति नामक ग्रंथ से ज्ञात होता है कि ये द्रम्म तेरहवीं शती तक चालू थे। उस काल के व्यवहारपत्र या उधार-रुक्कों में लिखा जाता था—'श्री श्रीमालीय खरटंकशालाहत त्रिः परीक्षित हट्ट व्यावहारिक्य प्रचलित श्रीमत्पारौपथ रौक्यगृहीत द्रम्माः।' अर्थात् श्रीमाल नगर की टकसाल में आहत, तीन बा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



परखे हुए, हाट के व्यवहार में आनेवाले, चालू, बिना मिलावट के, रोकड़ लिए हुए, पारौपथ द्रम्म। यह इबारत बहुत दिन पीछे तक चालू रही। शाहजहाँ-कालीन एक गिरवी-पत्र (ग्रहणक पत्र) में लिखा मिला है–'अहमदावाद नी टंकसालना आकराकोरा षरा मासा ११॥ रुपैया ३०'। पुरातन-प्रबंध-संग्रह (सिंघी ग्रंथमाला, पृ० ५१) से ज्ञात होता है कि चाँदी का १ पारूथक द्रम्म ८ साधारण द्रम्मों के बराबर था (एकस्मिन् पारूथके अष्टौ द्रम्मा भवन्ति)। मारवाड़ में जालोर के राव उदयसिंह के मंत्री ने सुलतान से कहा—'वयं द्रम्मान् न जानीमः। पारूथकान् दास्यामः।'। खरतरगच्छ पट्टावली (१०१०–१३३६ ई०) में लिखा है कि मालवे के परमार राजा नरवर्मन् ने तीन लाख पारुत्थ द्रम्म जैन आचार्य जिनवल्लभ सूरि को देना चाहा, किंतु आचार्य ने चित्तौड़ के दो खरतरगच्छीय मंदिरों की रक्षा के लिये केवल दो पारूथद्रम्म लेना स्वीकार किया। 'लेख पद्धति' में विग्रहपाल या बीसलदेव के द्रम्मों का भी उल्लेख है जिन्हें जीर्ण विश्वमल्ल प्रिय द्रम्म कहा है, अर्थात् वे पहले के बने हुए थे। इन्हें एक बार 'श्रेष्ठ द्विवल्लक्य वीसलप्रिय द्रम्म' कहा गया है, अर्थात् इनमें दो बाल वजन की ओछी धातु की मिलावट थी। श्रीधराचार्यकृत गणितसार की टीका के अनुसार ३ रत्ती का १ बाल होता था। इसलिये द्विवल्लक्य द्रम्म में ६ रत्ती खोट या मिलावट रहती थी। इसी के अनुसार ८ बाल या २४ रत्ती का अर्ध गद्याणक और १६ बाल या ४८ रत्ती का एक गदियाण सिक्का होता है। युगप्रधानाचार्य गुर्वावली में इन्हें केवल 'द्विवल्लकद्रम्म' नाम से पुकारा गया है। छोटे सिक्कों में 'विंशक' ताँबे का सिक्का था। २० वराटक या कौड़ी की १ काकिणी होती थी जिसे बोड़ी भी कहते थे। ५ काकिणी या बोड़ी का १ पण होता था। संभवतः काकिणी या बोड़ी मूल्य में पण का चौथाई ताँबे का सिक्का था। बोड़ी या बोड्डिआ सिक्के का उल्लेख सबसे पहले मृच्छकटिक में मिलता है—

अत्थं शदं देमि शेवण्णअं दे कहावणं देमि शबोडिअं दे। (अंक ७, श्लोक ४०)

[अर्थं शतं ददामि सुवर्णकं ते कार्षापणं ददामि सवोडिकं ते।]

सोने का सुवर्ण, चाँदी का कार्षापण और ताँबे का बोडिक, ये तीनों गुप्तकालीन सिक्के थे (द्रष्ट० शुक्रनीति २।३५४, रजतस्वर्णताम्रादि व्यवहारार्थमुद्रितम्। व्यवहार्यं वराटाद्यं रत्नांतंद्रव्यमीरितम्।)। मध्यकाल में षड्बोद्दिक द्रम्म नामक एक छोटे सिक्के का नाम जौनपुर से प्राप्त एक लेख में (१६२७, भंडारकर सूची, सं० ४६८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आया है। यह भी संभवतः ताँबे का सिक्का था। मध्यकालीन मुद्राओं की सामग्री का एक स्रोत गणित के ग्रंथ हैं जिनमें सिक्कों के नाम, मान, तोल आदि के साथ उनके व्यावहारिक प्रयोग की भी अच्छी सामग्री पाई जाती है। श्रीधर के गणित-सार पर श्री भोगीलाल संडेसरा का एक लेख परिषद् की पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, शेष सामग्री अभी तक अनधीत है।

इधर हाल में भारतीय सिक्कों पर ठक्कुर फेरू कृत 'द्रव्यपरीक्षा' नामक एक ग्रंथ प्राप्त हुआ है। ठक्कुर फेरू अलाउद्दीन खिल्जी की दिल्ली की टकसाल के अध्यक्ष थे। उन्होंने संवत् १३७५ (ई० १३१८-१९) में अलाउद्दीन की मृत्यु से दो वर्ष पीछे यह ग्रंथ अपने भतीजे को सिक्कों का ज्ञान कराने के लिये लिखा था। ग्रंथ में १४९ गाथाएँ अपभ्रंश-प्राकृत-मिश्रित भाषा में हैं। इस ग्रंथ की एक प्रति कलकत्ते के जैन-भंडार में सुरक्षित है। श्री अगरचंद नाहटा की कृपा से मुझे यह प्राप्त हुई और अब उसकी फोटोस्टाट प्रतिलिपि करा ली गई है। परिषद् के लिये उसका संपादन-प्रकाशन किया जा रहा है। ग्रंथ के आरंभ में सोने चाँदी को शोधने की विधि है। यह विधि वही है जिसका विस्तृत उल्लेख अबुलफजल ने आईन-अकबरी में किया है। प्राचीन समय में एक राजा के चलाए सिक्के उसके बाद भी कई सौ बर्षों तक चलते रहते थे। राजा भोज के आदिवराह द्रम्म से लेकर उत्तर दक्खिन के अनेक सिक्के अलाउद्दीन के समय में भी चालू रहे। नाप, तोल और मूल्य का इसमें वर्णन है। ये सिक्के जब टकसाल में गलाने के लिये जाते थे तब उनकी चासनी ली जाती थी और उनके नाम, तोल, मूल्य और चाँदी की मात्रा का ठीक ठीक हिसाब लगाया जाता था। वही सामग्री इस ग्रंथ में है। ढोका, सोने की थकिया या लौंदी लेकर, उसे परगहनी में चुआकर उसकी गुल्ली या गुलेली बनाई जाती थी और फिर बराबर के टुकड़े काटकर पन्ना या पत्तर बनाकर उसे शोधते थे। इस प्रक्रिया का ब्यौरेवार वर्णन ठक्कुर फेरू ने किया है। मुद्राओं में खुरासानी मुद्रा, गुर्जरी मुद्रा, मालवी मुद्रा, चंदेरी मुद्रा, जालंधरी मुद्रा, दिल्ली की तँवर राजाओं की मुद्रा, दिल्ली की मुसलमानी मुद्रा और अंत में 'अश्वपतिमहानरेन्द्र पातशाही अलावदीन मुद्रा' का विशद वर्णन है। गुर्जरी सिक्कों में कन्नौज के भोजदेव के (८३६-८९०) श्रीमदादिवराह द्रम्म और उसके पौत्र श्री विनायकपालदेव (९१४-९४३) की विनायकी मुद्राओं का उल्लेख है। सौभाग्य से विनायकी सिक्के अभी हाल में ही मुझे प्राप्त हुए थे, जो ठक्कुर फेरू के कथन की पुष्टि करते हैं (मुद्रापरिषत् पत्रिका १०।२८)। ठक्कुर फेरू ने सिक्कों के लिये मध्यकालीन भाषा का 'आछू' (अच्छु) शब्द प्रयुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किया है। यह शब्द श्री प्रो० मीराशि जी को कलचुरि-नरेश पंपराज के ताम्रपत्र में प्रयुक्त मिला था ( मु० प० पत्रिका, जून १९४१, पृ० ३७ )। मेरठ की भाषा में यह अभी तक चालू हैं। देवगिरि की मुद्राओं में सींघण, महादेव और राम की मुद्राओं का उल्लेख है। इनके पद्मटंक कृष्णा जिले के राछपतनम् स्थान से प्राप्त एक निधि में मिले थे ( न्यूमि० सप्ली०, १९२५, पृ० ६–९ )। कलचुरि सं० ९४४ के रीवाँ के एक लेख में भगवन्मुद्रा का हवाला है। फेरू ने भी इसे 'भगवा मुद्रा' कहा है जो सोने, चाँदी और ताँबे के मेल से त्रिधातु मुद्रा होती थी। अंग्रेजी बिलन के बने सिक्कों को द्विधातु या 'दुधाउ' कहा गया है। इस ग्रंथ में वर्णित कितनी ही मुद्राएँ अभी तक नामशेष हैं। उनकी पहचान करनी होगी एवं प्रत्येक प्रकार के सिक्कों में जो चाँदी की मात्रा दी गई है, गलवाकर उसकी पड़ताल करनी होगी। तभी ठक्कुर फेरू के कथन की सचाई परखी जा सकेगी।

मुगलकालीन सिक्कों के नामों और आपेक्षिक तोल, मूल्य आदि की सामग्री का बहुत अच्छा अध्ययन श्री होडीवाला ने फारसी इतिहास-ग्रंथों के आधार से प्रस्तुत किया था। वह आज भी मूल्यवान् है। मुगलों के बाद मराठाकाल में और कंपनी काल में बहुत प्रकार के नए सिक्के चालू हुए जिनके पचपन नामों की एक अच्छी सूची पुरानी बहियों से श्री चापेकर महोदय ने संगृहीत की थी और उसे मेरी प्रार्थना पर मुद्रापरिषद् की पत्रिका में प्रकाशित कराया था ( ९।५०,५१ )। उनकी पहचान भी करनी शेष है। इस प्रकार वैदिक काल से लेकर आधुनिक समय तक के सिक्कों के संबंध में जो साहित्यिक प्रमाण उपलब्ध हैं, उनका कुछ परिचय यहाँ देने का प्रयत्न किया गया है।

सिक्कों की भाँति ही प्राचीन स्थानों से प्राप्त मिट्टी की मुहरों का भी ऐतिहासिक महत्त्व है, किंतु अभी तक इस दिशा में आवश्यक एवं संगठित प्रयत्न नहीं किया गया। इस सामग्री की ओर विशेष रूप से सब सदस्यों का ध्यान आकर्षित करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। राजघाट से प्राप्त लगभग दो सौ मुहरों से काशी और वत्स जनपदों के राजाओं के नाम मिले हैं। मघवंशी राजाओं के समय काशी और वत्स का जो पारस्परिक संबंध था उसपर मुहरों से जो प्रकाश पड़ा है वह सिक्कों से भी नहीं हुआ था। एक मुद्रा पर राजा कौत्सीपुत्र शिवमघ का नाम है जो गौतमीपुत्र शिवमघ से भिन्न है। राजघाट की इस सामग्री का अध्ययन हो चुका है और शीघ्र वह एपिग्राफिया इंडिका में प्रकाशित होगी। इधर नालंदा से प्राप्त मुहरों का नवीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अध्ययन डा० अल्टेकर ने किया है जिसमें अन्य सामग्री के अतिरिक्त बालादित्य का नाम भी मिला है। संग्रहालयों में सुरक्षित मुहरों पर एक स्वतंत्र पुस्तक की बहुत आवश्यकता है जो इस विषय को विद्वानों के अध्ययन-क्षेत्र में ला सके।

यह देखकर प्रसन्नता होती है कि भारतीय मुद्रा-परिषद् की स्थिति इस समय देश की विज्ञानिक परिषदों में बहुत अच्छी है। उसके प्रकाशन, पत्रिका, उत्साही कार्यकर्ता और भविष्य की योजनाओं को देखकर इस परिषद् से ठोस कार्य की आशा होती है। विशेषतः डा० अल्टेकर महोदय की देखरेख में 'स्टैंडर्ड वर्क्स ऑव रिफरेंस' तैयार करने का कार्य बहुत कुछ आगे बढ़ा है। आगामी वर्ष में बयाना गुप्त मुद्रा-निधि पर ग्रंथ प्रकाशित हो जाने की आशा है, जिसके लिये भरतपुराधीश महाराजा श्री व्रजेंद्रसिंह जी ने आरंभ से ही उत्साह प्रदर्शित करते हुए आर्थिक सहायता प्रदान की है। मुद्रा-परिषद् के कार्य में प्रत्येक प्रांत की मुद्राओं का कार्य सम्मिलित है, इसी लिये प्रादेशिक सरकारों ने परिषद् को आर्थिक सहायता प्रदान करने की कृपा की है। आगामी वर्षों में मुद्रा-परिषद् को अपने कार्य और अधिक विस्तृत और संगठित रूप में करना चाहिए और जैसा मैं आरंभ में कह चुका हूँ, इसके लिये अलग अलग मुद्राओं के विशेषज्ञों की आवश्यकता है। इसके लिये नए नए विद्वानों का मैं परिषद् की ओर से आवाहन करता हूँ।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# महाकवि मेघविजय और उनके ग्रंथ

[ श्री अगरचंद नाहटा ]

जैन धर्म के चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने अपना उपदेश जनता की भाषा तत्कालीन प्राकृत में दिया था और लगभग पाँच सौ वर्षों तक जैन साहित्य का निर्माण प्राकृत ही में होता रहा। विक्रमीय प्रथम शताब्दी के लगभग अन्य दर्शनों के सूत्र-ग्रंथ संस्कृत में प्रचारित देख संस्कृत के व्यापक प्रभाव को ध्यान में रखते हुए आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थ सूत्र की रचना संस्कृत में की और प्रशस्ति आदि अन्य कई ग्रंथ भी उन्होंने संस्कृत ही में बनाए। उपलब्ध जैन साहित्य में संस्कृत में सर्वप्रथम ग्रंथ-रचना करनेवाले आचार्य उमास्वाति ही माने जाते हैं। इनका तत्त्वार्थ सूत्र श्वेतांबर एवं दिगंबर उभय संप्रदायों को मान्य है और दोनों संप्रदायों के आचार्यों की कई टीकाएँ इसपर उपलब्ध हैं। इसके पश्चात् दिग्गज दार्शनिक आचार्य सिद्धसेन दिवाकर का संस्कृत-ग्रंथ-प्रणेताओं में प्रधान स्थान है। उन्होंने अपना विख्यात दार्शनिक ग्रंथ 'सम्मतितर्क' प्राकृत में रचा और न्यायावतारादि द्वात्रिंशिकाएँ संस्कृत में बनाईं, जो अर्थगांभीर्य की दृष्टि से अनुपम हैं। इनका समय पं० सुखलालजी ने पाँचवीं शती निर्धारित किया है। आचार्य समंतभद्र भी उच्च कोटि के दार्शनिक विद्वान् थे और उन्होंने अपनी समस्त रचनाएँ संस्कृत में ही की हैं। पं० जुगलकिशोर मुख्तार इन्हें प्रथम शती का विद्वान् बतलाते हैं, परंतु पं० सुखलालजी के मतानुसार ये आचार्य सिद्धसेन के परवर्ती विद्वान् हैं।

इनके पश्चात् तो पूज्यपादादि अनेक जैन विद्वानों ने संस्कृत में ग्रंथ-रचना की[1]

---

१ विशेष द्रष्टव्य "जैन-सिद्धांत-भास्कर" ( वर्ष १६ अंक १ ) में प्रकाशित लेखक का 'जैन संस्कृत साहित्य का विकास' शीर्षक लेख।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


और आज तक उनके द्वारा सभी विषयों के हजारों ग्रंथ, मौलिक एवं टीकाओं के रूप में, गद्य तथा पद्य में प्रस्तुत हुए हैं। यदि इन सबका केवल संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया जाय तो भी उसके लिये एक स्वतंत्र ग्रंथ की आवश्यकता होगी। प्रस्तुत लेख में तो हमें संस्कृत साहित्य के इतिहास में उपेक्षित केवल एक जैन महाकवि के ग्रंथों का परिचय देना ही अभीष्ट है।

राष्ट्रभाषा हिंदी में संस्कृत साहित्य के इतिहास के नाम से कई ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, जिनमें सर्वप्रथम श्री महेशप्रसाद बी० ए० लिखित सन १९२२-२३ में प्रकाशित हुआ था। उसके पश्चात् श्री सीताराम जयराम जोशी तथा श्री बिश्वनाथ शास्त्री लिखित इतिहास सन् १९३३ में प्रकाशित हुआ। सन् १९३७ में श्री कन्हैयालाल पोद्दार लिखित इतिहास दो भागों में प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात् श्री बलदेव उपाध्याय एवं श्रीगौरीशंकर उपाध्याय का संस्कृत साहित्य का इतिहास सन् १९४५ में प्रकाशित हुआ।

संस्कृत साहित्य के उपर्युक्त इतिहास-ग्रंथ ही अभी तक हमारे देखने में आए हैं। इनमें से पूर्व के ग्रंथों में तो मेघविजय जैसे महाकवि का नामोल्लेख तक नहीं किया गया। जोशी जी के इतिहास में इनके विषय में केवल दो पंक्तियाँ पंचाख्यान के कर्ता के रूप में प्रसंगवश पाई जाती हैं—"इन दोनों पंचाख्यानों के आधार पर सन् १६५९-६० में मेघविजय ने पंचाख्यानोद्धार नामक इसी तरह का ग्रंथ रचा।" जैसा आगे बतलाया जायगा, इनके रचे हुए अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण काव्यादि ग्रंथ प्राप्त हैं और उनमें से बहुत से प्रकाशित भी हो चुके हैं। इतिहास-ग्रंथों में उनका कहीं नाम तक नहीं मिलता, अतः पाठकों की जानकारी के लिये उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

उपाध्याय मेघविजय अठारहवीं शती के प्रसिद्ध महाकवि थे। इनका पांडित्य असाधारण था। काव्य रचने के साथ साथ इन्होंने व्याकरण, छंद, न्याय दर्शन, कथा, ज्योतिष, सामुद्रिक, मंत्र एवं अध्यात्म विषय के भी ग्रंथ लिखे। इनके जन्म-स्थान, जन्म-संवत्, मातापिता, वंश एवं दीक्षाग्रहण के समय आदि के संबंध में जानने का कोई भी साधन उपलब्ध नहीं है। इनके ग्रंथों से इनकी गुरु-परंपरा एवं इनके साहित्य-निर्माण-काल का ही पता चलता है। ये सतरहवीं शती के सुप्रसिद्ध तपागच्छीय जैनाचार्य हीरविजय सूरि की शिष्य-परंपरा में हुए थे, जिन्होंने सम्राट् अकबर को प्रभावित कर अहिंसा धर्म का बहुत प्रचार किया था। गुरु परंपरा की नामावली इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हीरविजयसूरि

कनकविजय

शीलविजय

कमलविजय | सिद्धिविजय[२] | चारित्रविजय

(सिद्धिविजय) कृपाविजय

मेघविजय

मेरुविजय | भानुविजय[३]

कवि मेघविजय अपने समकालीन तपागच्छ नामक विजयप्रभ सूरि के बड़े भक्त थे, जिन्होंने इनको 'वाचक' एवं 'उपाध्याय' पद प्रदान किया था। इनका साहित्य-निर्माण-काल संभवतः सं० १७०६ (निश्चित रूप से १७१६) से १७६० तक है। अर्थात् ये ४५-५० वर्षों तक साहित्य-साधना करते रहे। फलतः लगभग तीन दर्जन ग्रंथ इनके प्राप्त हैं जिनमें से कई प्रकाशित भी हो चुके हैं। प्राकृत, संस्कृत और गुजराती तीनों भाषाओं में इन्होंने रचना की है। इनमें से कई ग्रंथ तो बहुत उच्च कोटि के हैं। पादपूर्ति काव्य रचने में ये विशेष रूप से सिद्धहस्त थे। मेघदूत, नैषध, माघ और किरात की समस्यापूर्ति में इनके रचे हुए काव्य उपलब्ध हैं और पाणिनीय द्व्याश्रय विज्ञप्ति लेख भी प्राप्त है। 'दिग्विजय' महाकाव्य इनका मौलिक महाकाव्य है जो तेरह सर्गों में समाप्त हुआ है। इनका सप्तसंधान महाकाव्य तो विश्व-साहित्य में अनूठा ग्रंथ है। इस ग्रंथ के प्रत्येक श्लोक में ऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर—इन पाँच जैन तीर्थंकरों के साथ सुप्रसिद्ध महापुरुष राम और कृष्ण का चरित साथ साथ चलता है। द्विसंधान, त्रिसंधान एवं पंचसंधान काव्य तो संस्कृत साहित्य में मिलते हैं पर सप्तसंधान काव्य यह एक ही उपलब्ध है। कवि की विलक्षण प्रतिष्ठा का इससे भली भाँति परिचय मिल जाता है। इनके

---

२—युक्तिप्रबोध की प्रशस्ति में इनके लुंपकों को सन्माननगर में जीतने का उल्लेख है।

३—पट्टावली समुच्चय में पृ० ११० में आठ शिष्यों तथा प्रशिष्य एवं उनके शिष्य कुशलविजय (सं० १८१० में आगरा के शीतलनाथ जिनालय के प्रतिष्ठापक) तक का उल्लेख है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ज्योतिष के ग्रंथ भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। 'मेघमहोदय', 'वर्षप्रबोध' एवं 'हस्तसंजीवन' एतद्विषयक प्रधान ग्रंथ हैं। नीचे इनके समस्त ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

## समस्यापूर्ति काव्य

(१) शांतिनाथ चरित्र—यह सुप्रसिद्ध नैषध काव्य की समस्यापूर्ति के रूप में शांतिनाथ प्रभु का जीवनचरित है। यह छः सर्गों का है। इसमें कवि ने नैषध काव्य के केवल अंत्य पाद को ही लेकर पादपूर्ति नहीं की, प्रत्युत प्रथम सर्ग में समस्त श्लोकों के चारों पदों की समस्यापूर्ति की है। ग्रंथकार ने अपने काव्य के प्रत्येक श्लोक में एक पाद नैषध के श्लोक का लिया है और तीन पाद अपनी ओर से जोड़े हैं। बत्तीस बर्ष हुए, जैन-विविध-साहित्य-शास्त्रमाला के सातवें ग्रंथांक के रूप में यह पाइय-सद्द-महण्णवो नामक प्राकृत भाषा के कोश के निर्माता पं० हरगोविंद दास द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हुआ था।

(२) देवानंद महाकाव्य—यह 'माघ'-काव्य की समस्यापूर्ति के रूप में है। इसमें विजयदेव सूरि का जीवनचरित वर्णित है। आनुषंगिक रूप से विजयप्रभ सूरि जी का भी वृत्तांत दिया गया है। यह सात सर्गों का है। ऐतिहासिक काव्य होते हुए भी इसमें काव्यत्व की प्रधानता है। सं० १७२७ की विजय-दशमी को सादड़ी में इसकी रचना हुई। गुजरात के प्रसिद्ध भाषाशास्त्रविद् एवं जैनागमों के विशेष अभ्यासी पं० बेचरदास द्वारा संपादित होकर सिंघी-जैन-ग्रंथमाला के सातवें ग्रंथांक में, तेरह वर्ष हुए, यह काव्य प्रकाशित हो चुका है।

(३) किरात समस्यापूर्ति—इसकी एक प्रति श्री विजयेंद्र सूरि के पास होने का उल्लेख पं० अंबालाल प्रेमचंद शाह ने दिग्विजय महाकाव्य की प्रस्तावना में किया है।

(४) मेघदूत-समस्या-लेख—मेघदूत की समस्यापूर्ति के रूप में यह एक विज्ञप्तिपत्र है जो कवि ने देवपाटण में अवस्थित विजयप्रभ सूरि को अवरंगाबाद (नवरंगाबाद) से लिखा है। इसमें कवि के माघ-समस्यापूर्ति काव्य का उल्लेख होने से इसकी रचना सं० १७२७ की निश्चित है। आत्मानंद सभा (भावनगर) से यह पहले प्रकाशित हुआ था। अभी मुनि जिनविजय द्वारा संपादित विज्ञप्ति-लेख-संग्रह में पुनः मुद्रित हुआ है। इसकी श्लोक-संख्या १३१ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



( ५-६ ) पाणिनीय द्व्याश्रय विज्ञप्तिलेख—विजयप्रभ सूरि एवं विजयरत्न सूरि को लिखे गए ये दो विज्ञप्तिपत्र हैं। इनमें ४-४ विश्राम हैं। इसकी ११ पत्रों की एक मात्र प्रति भांडारकर इंस्टीट्यूट (पूना) में है, जिसकी प्रतिलिपि हमारे संग्रह में है। प्रथम विज्ञप्तिलेख १३८ श्लोकों का, दूसरा ४७ श्लोकों का है।

पादपूर्ति काव्य का निर्माण साधारण कार्य नहीं है। उसमें दूसरे काव्य के भाव की संगति बैठाते हुए अपना वक्तव्य दिया जाता है। कहीं-कहीं काव्य के पाद को भिन्नार्थ रूप में ग्रहण कर संगति बैठानी पड़ती है। पादपूर्ति-काव्य-निर्माण में कवि परतंत्र रहता है, अतः उसमें भावों की स्पष्टता कम होने से काव्य दुरूह हो जाता है। बंधन में रहकर भी स्वतंत्र प्रतिभा का परिचय देनेवाले सफल कवि बिरले ही होते हैं। उपाध्याय मेघविजय ऐसे ही सफल कवियों में हैं, जिन्हें अन्य-रचित काव्य के पदों एवं भावों को अपने अनुकूल बना लेने की अपूर्व क्षमता प्राप्त थी। इनके काव्यों को पढ़ने से लगता है मेघदूत, रघुवंश, माघ, नैषध, किरात आदि काव्य इन्हें कंठस्थ से थे और उनके भावों को इन्होंने पूर्ण रूप से से पचा लिया था।

जैन संस्कृत साहित्य में और भी बहुत से पादपूर्ति काव्य मिलते हैं जिनपर "जैनसिद्धांत भास्कर" (भाग ३ अंक २-३) तथा 'भावारिवारण पादपूर्तिस्तव' की प्रस्तावना में प्रकाश डाला जा चुका है। जैन पादपूर्ति काव्यों में जिनसेन का पार्श्वाभ्युदय काव्य विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें मेघदूत के समग्र चरणों की पादपूर्ति की गई है। परंतु इस प्रकार के काव्य-निर्माताओं में मेघविजय सर्वाग्रणी हैं।

## स्वतंत्र काव्य

( ७ ) दिग्विजय महाकाव्य—इसमें श्री विजयप्रभ सूरि का जीवनचरित है। तेरह सर्गोंवाले इस काव्य में शब्दालंकार एवं अर्थालंकारमय कवित्वपूर्ण वर्णन ही प्रधान है। इसमें विजयप्रभ सूरि जी के दिग्विजय अर्थात् उनके उदयपुर, शंखेश्वर, सिरोही, आगरा, बनारस, पटणा, समेतशिखर आदि में किए हुए विहार और धर्म-प्रचार का वर्णन है। पं० अंबालाल प्रेमचंद शाह के संपादन में सिंघी जैन-ग्रंथमाला से यह पाँच वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है।

( ८ ) सप्तसंधान महाकाव्य—यह नौ सर्गों का है और कुल ४४२ पद्य हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, यह एक अभूतपूर्व चमत्कारपूर्ण रचना है। इसमें ऋषभ, शांति, नेमि, पार्श्व, महावीर, राम एवं कृष्ण इन सात महापुरुषों के चरित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रत्येक श्लोक में श्लेष से वर्णित हैं। शब्दालंकार, अर्थालंकार, विविध छंद, ऋतु-वर्णनादि महाकाव्य के सभी लक्षणों से यह युक्त है। जैन-विविध-साहित्य-शास्त्र-माला के तृतीयांक के रूप में (मूल मात्र) यह लगभग तैंतीस वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका था, परंतु श्लेषमय होने से टीका के बिना दुरूह लगता था। विजयामृत सूरि जी ने इसपर 'सरणी' नामक विस्तृत टीका बनाकर सुगमता कर दी है। इसका सटीक संस्करण सूरत की श्री जैन-साहित्य-वर्धक सभा द्वारा वि० सं० २००० में प्रकाशित हो चुका है। यह काव्य कवि की अंतिम रचना है। सं० १७६० में इसका निर्माण हुआ था।

(९) चित्रकोश—यह चित्रकाव्य रूप विज्ञप्तिपत्र है। हमारे संग्रह में इसके मध्य के चार पत्र प्राप्त हैं, जिनमें द्वितीय अधिकार 'नगर-वर्णन' सैंतालीस श्लोकों का है। तीसरे अधिकार 'परमगुरुराज-वर्णन' के केवल चार ही श्लोक प्राप्त हैं। यह विज्ञप्तिलेख विजयप्रभ सूरि जी को सादड़ी भेजा गया था। इसकी पूर्ण प्रति अन्वेषणीय है।

कवि के रचे हुए अन्य भी कई विज्ञप्तिलेख प्राप्त है। सं० १७३०–४६-५१ के विज्ञप्तिलेखों का उल्लेख प्रो० हीरालाल कापड़िया ने भक्तामररतवादि की प्रस्ता-वना में किया है। एक विज्ञप्तिलेख की प्रति मुनि जिनविजय जी के पास भी अभी देखने में आई है।

(१०) लघु त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र—हेमचंद्राचार्य रचित त्रिषष्टिशलाका-पुरुष महाकाव्य का यह संक्षेप है और इसकी श्लोक-संख्या ५००० है। दूसरी प्रति पूने के भांडारकर इन्स्टीट्यूट में विद्यमान हैं और यह अभी अमुद्रित है। यह कोठारी वनराजा की अभ्यर्थना से रचा गया था।

(११) भविष्यदत्त कथा—धनपाल कृत अपभ्रंश की 'भविसयत्त कहा' की भाँति इसमें पंचमी-माहात्म्य पर भविष्यदत्त की कथा वर्णित है। पं० अंबालाल शाह के कथनानुसार इसकी रचना सं० १७५० के बाद हुई थी। पं० मफतलाल झवेरचंद गाँधी द्वारा संशोधित होकर यह दानदयामृत हिम्मत ग्रंथमाला से वि० सं० १९९२ में प्रकाशित हुआ है।

(१२) पंचाख्यान—पूर्णभद्र सूरि रचित पंचाख्यान का यह संक्षिप्त रूप है। इसकी एक प्रति बीकानेर राज्य के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में मेरे देखने में आई है, जिसमें रचना-काल सं० १७१६ और रचना-स्थान नवरंगपुर लिखा है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रति सं० १७५१ की लिखी हुई है। इसमें ६६ पत्र हैं। ग्रंथ गद्य में लिखा गया है। कवि का मौलिक गद्य ग्रंथ यह एक ही है।

(१३) विजयदेव-माहात्म्य-विवरण—इस विवरण में कवि ने खरतरगच्छीय श्री वल्लभ उपाध्याय रचित विजयदेव-माहात्म्य नामक ऐतिहासिक काव्य के कठिन शब्दों का अर्थ स्फुट किया है। जैन-साहित्य-संशोधक-समिति से मुनि जिनविजय द्वारा संपादित होकर यह लगभग २०-२२ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था।

## व्याकरण

(१४) चंद्रप्रभा (हेमकौमुदी)—आचार्य हेमचंद्र के सिद्धहेमव्याकरण की कौमुदी के रूप में प्रस्तुत ग्रंथ की रचना सं० १७५७ में आगरे में हुई थी। इसका ग्रंथ-परिमाण ६००० श्लोकों का है। कवि ने अपने शिष्य भानुविजय के लिये इसे बनाया और सौभाग्यविजय एवं मेरुविजय ने दीपावली के दिन इसका संशोधन किया था। जैन-श्रेयस्कर-मंडल (म्हेसाणा) से सन् १६२८ में यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है।

(१५) हेमशब्दप्रक्रिया—यह ३५०० श्लोक-परिमाण का मध्यम व्याकरण है। इसकी प्रति भांडारकर इंस्टीट्यूट (पूना) में है।

(१६) हेमशब्दचंद्रिका—विद्यार्थियों के प्राथमिक प्रवेश के लिये अत्यंत संक्षेप में तीन प्रकाशों में यह ग्रंथ रचा गया है। हमारे संग्रह में इसकी सं० १७६१ की लिखित प्रति है और पूने में सं० १७५५ की। मुनि चतुरविजय जी द्वारा संपादित होकर यह चाँपसी खीयशी कोठरा (कच्छ) से प्रकाशित हो चुका है। इसका ग्रंथ-परिमाण ६०० श्लोक का है।

## छंदशास्त्र

(१७) वृत्तमौक्तिक—सं० १७५५ में स्वशिष्य भानुविजय के पढ़ने के लिये कवि ने इसकी रचना की थी। इसकी १० पत्रों की प्रति मुनि विनयसागर के संग्रह में प्राप्त है। (विशेष परिचय के लिये द्रष्टव्य "जैन-सत्य-प्रकाश", वर्ष १२ अंक ५-६ में प्रकाशित लेखक का एतद्विषयक लेख।)

## न्याय

(१८) मणिपरीक्षा—यह सुप्रसिद्ध नैयायिक गंगेश उपाध्याय के चिंतामणि ग्रंथ की आलोचना के रूप में लिखा गया था। इसमें चार विमर्श हैं। विजयप्रभ सूरि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


समय में इसकी रचना होने का उल्लेख होने से इसका सं० १७५० से पूर्व रचित होना निश्चित है। इसकी ८ पत्रों की एक मात्र प्रति भुवनभक्ति भांडार (बीकानेर) में उपलब्ध है।

## शास्त्रीय आलोचना

(१६) युक्तिप्रबोध नाटक—सतरहवीं शती में कविवर बनारसीदास से दिगंबर संप्रदाय में एक वाणारसीय मत का प्रादुर्भाव हुआ। उसके एवं दिगंबर संप्रदाय के मतभेदों का इसमें विस्तृत रूप से खंडन किया गया है। श्री ऋषभदेव जी केशरीमल जी श्वेतांबर संस्था ( रतलाम ) से वि० सं० १६८४ में यह प्रकाशित हो चुका है। इसमें २२२ ग्रंथों के प्रमाणों के साथ खंडन किया गया है, इससे ग्रंथकार के विस्तृत अध्ययन एवं आलोचनापटुत्व का भलीभाँति परिचय मिल जाता है। इसकी रचना विजयप्रभ सूरि के समय में होने से इसका सं० १७४० के पश्चात् रचा जाना निश्चित है। मूल ग्रंथ प्राकृत गाथाओं में है। इस ग्रंथ का परिमाण ४३०० श्लोकों का है।

(२०) धर्ममंजूषा—इसमें ढूढकों ( जैनों का स्थानकवासी संप्रदाय ) का खंडन तथा जिन-प्रतिभा का मंडन आगमों एवं युक्ति के आधार पर किया गया है। इसकी प्रति बीकानेर के बृहद् ज्ञानभांडार में उपलब्ध है।

## ज्योतिष

(२१) वर्षप्रबोध ( मेघमहोदय )—इसमें उत्पातप्रकरण, कर्पूरचक्र, पद्मिनीचक्र, मंडलप्रकरण, सूर्य-चंद्र-ग्रहण का फल, प्रत्येक महीने की वायु का विचार, वर्षा होने और बंद करने के मंत्र-यंत्र, षष्टि-संवत्सर-फल, ग्रह के राशि पर उदय-अस्त का फल, अयन, मास-पक्ष-दिन का विचार, संक्रांतिफल, वर्ष के राजा-मंत्री, वर्षागर्भ, विश्वा, आयव्यय, सर्वतोभद्र चक्र तथा वर्षा के जानने के शकुनादि पर अनेक शिष्यों का विवेचन तेरह अधिकारों में किया गया है। ग्रंथ संस्कृत एवं प्राकृत में है तथा हिंदी एवं गुजराती अनुवाद सहित प्रकाशित भी हो चुका है। विजयरत्न सूरि के समय में इसकी रचना होने से यह सं० १७५० के लगभग लिखा गया होगा। इसका ग्रंथ-परिमाण ३५०० श्लोकों का है। इसमें कई अनुपलब्ध ग्रंथों के उल्लेख एवं उद्धरण हैं जिनमें प्राचीन जैन ज्योतिष के अनुपलब्ध प्राकृत ग्रंथ भद्रबाहु-संहिता के उद्धरण महत्त्व के हैं।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(२२) हस्तसंजीवन—मूल ग्रंथ ५२५ श्लोकों का है जिसपर 'रेखाशास्त्र' नामक वृत्ति तथा 'सामुद्रिक लहरी' नामक ३७०० श्लोकों की स्वपोज्ञ विस्तृत वृत्ति प्राप्त है। सामुद्रिक हस्तरेखा के संबंध में प्रस्तुत ग्रंथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसका अपर नाम 'सिद्धज्ञान'[४] भी है। ग्रंथ के महत्त्वपूर्ण होने के कारण ही इसका प्रकाशन जैनेतर संस्थाओं ने भी किया है। वैसे मोहनलालजी ग्रंथमाला ने वृत्ति सहित एवं साराभाई नवाब ने गुजराती अनुवाद सहित प्रकाशित किया है।

(२३) उदयदीपिका—इसमें प्रश्नोत्तर निकालने की पद्धति का विशद वर्णन है। सं० १७५२ में श्रावक मदनसिंह के लिये प्रश्नोत्तर के रूप में इसकी रचना हुई थी। हस्तसंजीवनी वृत्ति का इसकी प्रशस्ति में उल्लेख होने से वह इससे पहले की निश्चित होती है। ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है। पूने के भांडारकर इंस्टिट्यूट में इसकी प्रति विद्यमान है।

(२४) प्रश्नसुंदरी—इसमें प्रश्नोत्तर निकालने की पद्धति संक्षेप में बतलाई गई है। इसकी प्रशस्ति में कवि के कतिपय ग्रंथों का रचना-क्रम भी निर्देशित है। ग्रंथ अप्रकाशित है।

(२५) रमलशास्त्र—इसका उल्लेख मेघमहोदय में किया गया है। इसकी रचना मेरुविजय के लिये की गई थी। ग्रंथ अभी अनुपलब्ध है।

## यंत्र

(२६) वीशा यंत्रविधि—इसमें पद्मावती काव्य के विवरणानुसार वीशा यंत्र की विधि वर्णित है। अर्जुनपताका और विजय यंत्र की विधि भी इसमें बतलाई गई है। ग्रंथकार ने संभवतः अन्य भी कई यंत्र बनाए थे। प्रस्तुत ग्रंथ महावीर-ग्रंथमाला से प्रकाशित हो चुका है। प्रो० हीरालाल कापड़िया ने इसका नाम 'भूविश्वेत्यादि काव्यविवरण' लिखा है। कई विद्वानों ने अर्जुनपताका यंत्र को स्वतंत्र ग्रंथ माना है पर संभवतः ये सब एक ही ग्रंथ में सम्मिलित हैं।

## अध्यात्म

(२७) मातृकाप्रसाद—इसकी रचना सं० १७४७ के पौष शुक्ल में धर्मनगर में हुई थी। इसमें 'ॐ नमः सिद्धम्' तथा 'वर्णाम्नाय' का विवरण है। ॐ शब्द का रहस्य भी इसमें स्पष्ट रूप से बतलाया गया है।

४—प्रो० हीरालाल कापड़िया ने इसे स्वतंत्र ग्रंथ माना है, पर पं० अंबालाल के निर्देशानुसार यह हस्तसंजीवन का ही नाम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
यह पुस्तक वितरित न की जाय NOT TO BE ISSUED


( २८ ) अर्हद्गीता—इस ग्रंथ में ३६ अध्याय हैं। इसमें जैन दर्शन का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। महावीर ग्रंथमाला से यह प्रकाशित भी हो चुका है।

( २९ ) ब्रह्मबोध—इसका उल्लेख मात्र प्राप्त है, प्रति नहीं मिली है।

## स्तोत्र तथा फुटकर रचनाएँ

( ३० ) तपागच्छ पट्टावली—इसमें विजयसेन सूरि से विजयप्रभ सूरि तक का ऐतिहासिक वृत्तांत है। मूल चार गाथाएँ प्राकृत में हैं जिनपर विस्तृत विवरण है। मुनि दर्शनविजय द्वारा संपादित पट्टावलीसमुच्चय में यह प्रकाशित हो चुकी है। सं० १७३२ के लगभग इसकी रचना हुई थी।

( ३१ ) पंचतीर्थस्तुति सटीक—श्री देसाई के लेखानुसार इसके प्रत्येक श्लोक से पाँचों तीर्थंकरों से संबंधित पाँच अर्थ निकलते हैं।

( ३२ ) शिवपुरी-शंखेश्वर-पार्श्वनाथ-स्तवन—इसकी श्लोक-संख्या २१ है। यह निम्नोक्त भक्तामरटीका के साथ प्रकाशित हो चुका है। इसकी सं० १७३६ की लिखित प्रति उपलब्ध है।

( ३३ ) भक्तामरटीका—यह सुप्रसिद्ध भक्तामरस्तोत्र की टीका है और देवचंद लालभाई पुस्तकोद्धार निधि ( सूरत ) से प्रकाशित भक्तामर-कल्याणमंदिर नमिऊण-स्तोत्रत्रय में प्रकाशित हो चुकी है।

## लोकभाषा की रचनाएँ

( ३४ ) विजयदेव-निर्वाण-रास—जैन ऐतिहासिक रासमाला और जैन ऐतिहासिक सझायमाला भाग १ में प्रकाशित है। कई विद्वानों ने इसे कवि के गुरु कृपाविजय द्वारा रचित बतलाया है, पर वह ठीक नहीं हैं।

( ३५ ) पार्श्वनाथ नाममाला—इसकी रचना सं० १७२१ में दीवबंदर में हुई है। पद्य-संख्या ३५ है। 'प्राचीन-तीर्थमाला' में यह स्तवन प्रकाशित भी हो चुका है।

( ३६ ) थावच्चाकुमार सझाय ( ३७ ) सीमंधरस्वामी स्तवन

( ३८ ) चौबीशी ( भाषा ) ( ३९ ) दशमत स्तवन

( ४० ) कुमतिनिवारण हुंडी गाथा ७६ ( यति रामलालजी के संग्रह में )

इनके अतिरिक्त स्वर्गीय मुनि विचक्षणविजय जी के पास इनके रचे 'रावणवंशस्येतिहासः' एवं 'रावणपार्श्वनाथाष्टक' आदि ग्रंथ थें, ऐसा प्रो० हीरालाल कापड़िया ने उल्लेख किया है।

यह पुस्तक वितरित न की जाय NOT TO BE ISSUED
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रुति-साहित्य की काव्योन्मुखता

[ श्री राजेंद्रनारायण शर्मा ]

श्रुति साहित्य में परमात्मा के विशेषणों में कवि शब्द का व्यवहार अनेक बार हुआ है। ईशोपनिषद् तो 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः' कह छुट्टी पा लेती है, किंतु ऋग्वेद गुण-व्यापार समन्वित व्याख्या के साथ कहता है—'पश्य देवस्य काव्यम्, न ममार न जीर्यति'। अर्थात् देव के काव्य ( इस सचराचर सृष्टि ) को देख, न जीर्ण होता है न मरता है। प्रथम कवि परमात्मा की ऐसी अजरामरवत् अनंत रमणीय रचना के द्रष्टा वेदों के ऋषि, कवि-परंपरा में आदि रचनाकार के बाद पहले कवि हुए। परमात्मा की कविता के रस-रहस्य के संवेदनशील इन मनीषियों ने जिन मंत्रों की रचना की उनमें अनेक आदि काव्य-साहित्य की कोटि के हैं। यहाँ उनके उद्धरणों का अभिप्राय रचना-प्रपंच-चारुत्व में उनकी अनुभूति की गहराई तथा रस-प्रतीति की तीव्रता का निदर्शन है। वेदों में सृष्टिकर्ता के द्वारा सर्ग-संपादन के प्रसंग में सुंदर से सुंदर मनोहारी वर्णन भरे हैं। उनसे सृष्टि-निर्माता के, एक महाकवि की भाँति अपने हृदय की संवेदना के सजीव स्फुलिंगों का जाल फैलाने का परिचय मिलता है। इन सरस सूक्तियों को सारगर्भित मंत्रों के रूप में रखनेवाले ऋषि कवियों की ऊँची कल्पना-शक्ति, संवेदनशीलता और भावाभिव्यंजन-कुशलता अलौकिक है।

अति पूर्व में उस निबिड़ वैश्व विष्कंभ की नीरव अस्पष्टता को भेद, ज्ञान-चक्षुवाले मनीषियों ने पहले-पहल देखा। तब न दिन ही था और न रात। इनके सूचक उपकरणों का भी चारों ओर प्रतिषेध-सा व्याप्त हो रहा था। दिशा और काल की कल्पना भी नहीं ठहर पाती थी। जान पड़ता था, कुछ भी नहीं है। पर कुछ तो अवश्य था ! वह क्या था ? वह 'है' ( सत् ) और 'नहीं है' ( असत् ) दोनों का प्रेरक ( भावाभावप्रेरकः ), सबका सविता ( जनिता, पिता या पालक ), वेद्यांतरस्पर्शशून्य, अविनश्वर, प्रजापति, एकाकी 'शिव' था, जिसके कुहक से चराचर-रचना-प्रगल्भ ज्ञानमयी प्रज्ञा की ( प्रतिभा की ) शाश्वत चैतन्य-धारा निकल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कर विभु को अपनी अखंड कृतियों से भरती रहती है। वही समस्त अनुभूतियों के आकर सर्वगत देवता 'शिव' थे—

यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासच्छिव एव केवलः।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी॥

—श्वे० उप० ४।१८

उसी रहस्य-परिभेदन की स्पष्टि के उजाले में पूर्व ऐतिहासिक युग के चिन्नेत्र मनीषियों ने वह दृश्य भी देखा जब विश्व-रचनाकार के आदि सर्जन-समारंभ से पहले, निर्ज्योति या न समझ में आनेवाली शब्दहीन स्तब्धता के अवकाश में, गाढ़-नील आवरण और तुहिन-धूम-आकृति वाली उत्ताल तरंगों पर, गहन गंभीरतम तुषार की लहरें लोट रही थीं—लिपटी जा रही थीं। उनके आरपार कुछ न सूझता था। हाँ, उस निर्वात और सीमाविच्छिन्न महाशून्य में एक अनंतव्यापी विश्व की रहस्य सत्ता, अव्यक्त के तुषारावरणों से आच्छादित ज्वालामुखी के कुक्षिगह्वर में प्रथम परिग्रह की, काम की ( काम = विश्वानुभूतियों का महाअयन ), आदि इच्छाशक्ति की, ज्योतिशिखा-सी धधक रही थी। गुहांतर में अपनी स्वेच्छा-स्वधा के विनिःश्वसन से झिलमिल करती हुई उस ज्योति का महाप्राण अपनी नाम-हीनता के निरतिशय मध्यांतःकरण में धीरे-धीरे परात्पर काल से अकेले स्पंदित हो रहा था। उस रिक्त निस्सीमता की गहराई में उससे परे कहीं भी कुछ और सत्तावान् न था।

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्नपरः किञ्चनास। —नासदीय सूक्त, ऋ० १०।१२९।२

उस प्रकाशानंद चेतनामय अखंड सत्ताधारी के चिरंतन स्पंद से यह विश्व उसी भाँति निकलता, उसमें प्रविष्ट होता और पुनः उसी ( अव्यक्त ) से विनिःसृत होता देखा गया जैसे अग्नि से स्फुलिंग या ऊर्णनाभि ( मकड़ी ) से तंतु-समूह। जैसे पृथ्वी से वनस्पति-राजि समुद्भूत होतीं, मनुष्य की देह से केश-लोमादि निकलते हैं, वैसे ही सत्ता और चेतना के अपरिमेय केंद्र से विश्व का सर्जन, प्रसारण और निष्क्रमण समाहार चलता है।[1]

---

१—यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्या ओषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥
—मु० उप० १।१।७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उसी रमणीय दृश्य में उन ऋषियों ने देखा कि उस विराट् पुरुष ( पुरुष= पुरि शयानो याति; पुरि=हृदयाऽकाशे, अन्तर्व्योम्नि ) के समीप सूर्य, चंद्र, तारक, विद्युत् और महा-अग्नि कोई भी अपने प्रकाश की अभिव्यक्ति नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी प्रभा अपनी नहीं प्रत्युत उसी आलोकपुंज, ज्योतिर्मय की है जिसके चमकने से ही ये सब चमकीले लगते तथा जिनकी ही सौंदर्य-विभा के प्रतिभासन से ये प्रतिभासित होते हैं—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ मु० २।२।१०

सब दिशाओं को[२] अपनी उज्ज्वल ज्योत्स्नाभिव्यक्ति से प्रकाशित कर चमकनेवाले प्रखरतेज सूर्य के समान भास्वर उस श्रेष्ठ ज्योत्स्नाशाली देव का भास-स्पर्श करने ऋषि रूप कवियों की दृष्टि गई, जिसके मन से—संकल्प से चंद्रमा ( सुधांशु ), नेत्रों से लोकचक्षु सूर्य, श्रुति-कुहर से पवन और सप्तप्राण तथा तैजस-स्थान मुख से 'वाग् माता' अग्नि के प्रादुर्भाव का प्रत्यक्षीकरण मंत्रद्रष्टाओं को हुआ तथा जिसकी गाथा यजुर्वेद के द्वारा उन्होंने इस प्रकार गाई—

चन्द्रमा मनसो जाता चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥

उस कवि की अखंडमंडलाकार 'निष्कल' काया का पार न पाकर ऋषियों की सुसूक्ष्म दृष्टि भी लौट पड़ी, क्योंकि वहाँ दृष्टि-दर्शन-दृश्यों को विराम सा लग गया।

जैसे जगत् का समस्त वारिवेग अपने उत्स सागर की ओर, अग्नि की समस्त अर्चियाँ अपने समुदय-केंद्र सूर्य की ओर, सब दिशाओं से प्रतिक्षण अनुधावित हैं वैसे ही, अनुभूति की दृष्टिधारा भी अपने महान् अयन की ओर प्रतिपल प्रवाहित होती रहती है। विश्वानुभूति के उस महासागर में अनुभव की सत्ता का निमज्जन ही उसका परम अभीष्ट है। यही कारण है कि परम आत्मा में पूर्ण एकत्व ( तन्मयत्व ) के अभीप्सु 'प्रयत्नाद्यतमान' योगी को, कृष्ण ( योगेश्वर ) की 'सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं'वाली सलाह न मानकर वहीं दृष्टि जमाने का आदेश अपरोक्षानुभूति-

---

२—सर्वादिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान् ॥
—श्वेत० ५।४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कार शंकराचार्य ने इन पंक्तियों में दिया—'दृष्टिदर्शनदृश्यानाम् विरामो यत्र वा भवेत्। दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या...... ॥'

वहाँ दृष्टि रमाने से दीख पड़ा व्रणरहित निष्कल और निःकलंक, उज्ज्वल तथा अपापविद्ध, पूर्ण निर्दोष और अपरिच्छद धवल तुषार वर्ण वाला—शुक्रम्[3]—अपने तेजसमूह से जल रहा है। जान पड़ा यही विशेष ज्ञान का, स्वयंभूत प्रज्ञा का, एक अधिपति मनीषी है। 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्' कवि है जो समस्त प्राणिजगत् को यथायोग्य आनंद-रस के अभिवर्षण से सींचकर उनकी निखिलार्थ परितृप्ति करता है—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धं ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ईश० ८

विश्वात्मा का दर्शन अनुभूति की आँखों से कर लेने पर विभक्त पार्थिव सत्ता का ज्ञान ही लुप्त हो जाता है। नमक की गुड़िया समुद्र की गहराई जानने के लिये जाकर लौटती नहीं देखी गई। उसका शरीर सागर की विराट् देह में समाकर उसकी गहराई और गरिमा का, मान-मर्यादा का पार तो पाता है किंतु इस ज्ञानाभिक्रम में गुड़िया का भी समुद्र बन जाता है। अग्नि के दाह का बीज ग्रहण करने के लिये उसमें प्रविष्ट पदार्थ स्वयं अग्नि हो जाता है। श्रुति के—'...य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति' वचनानुसार उस अमृत को जाननेवाला स्वयं अमृत हो रहता है। जिसने उसे जाना वह वही हो गया ( तन्मया अमृता वै बभूवुः )। अपिच, जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई —तुलसीदास।

जब तक ज्ञान की चेतना नहीं मिली थी तब तक ऋषि ( तत्त्व-जिज्ञासु ) ऐसी पंक्तियों के द्वारा—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ ईश० १५

विश्व-सत्य के रमणीय मुखमंडल से सुनहला ( हिरण्मय ) घूँघट हटाने की प्रार्थना भगवान् ज्योतिर्मय से करते रहे। किंतु 'तपःप्रभावाद्देवप्रसादात्' अज्ञान के आवरण की यवनिका हटी, इनके अंतर्दृग खुले, तब जो कुछ दीख पड़ा उसका

---

३—श्रुति के 'तच्छुक्रम् ज्योतिषां ज्योतिः' तथा गीता के 'कवीनामुशना कविः' से 'शुक्रम्' कवि है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साश्चर्य अवलोकन कर वे सपुलक कह उठे—अरे भगवन्! तुम्हारा (अन्यतम सत्ताधारी कल्याणनिधि देवाधिदेव का) यह मधुरतम रूप[४] जिसे हम देख रहे हैं, यह तो आपादतलमस्तक वही है जो हम (अहम्) हैं। जो परम प्रेमनिधि सुदीप्त आदित्य-मंडल में है वही यह 'मैं' (अहम्) भी तो है—योऽसावादित्ये पुरुषः सोहमस्मि।

उसी महासत्ताधारी में तपस् की महान् शक्ति से असर्जित सर्गावस्था के बीच वह एक (अनेजदेकं) प्रस्फुटित हुआ दीख पड़ा। उस एक में पहली बार महा स्वेच्छा-कंपन की तरंग से स्वभावतः सृष्टिविस्तार की प्रवृत्ति अथवा रचनाप्रगल्भ लीलाविग्रह की सुंदर कामना प्रादुर्भूत हुई। उस सूत्रात्मा एक के और मनन करने पर इस महाकामना ने अपना प्रकृत रूप आदि-बीज 'प्रेम' की कला में प्रकट किया। तब हृदय में आसम्यक् उस अन्वेष्टव्य की खोज करनेवाले तत्त्वाभिनिवेशी ऋषि प्रचुर अनुभाव और विमर्श के बाद मनीषी (ज्ञानात्मक) अथवा कवि होकर ही जान सके कि सत् को असत् से बाँधने, विराट् को अणु-अणु अथवा पूर्ण को तदीयांश से युक्त करने तथा नाम (शक्ति चेतना या स्पिरिट) को रूप (आधार या यूनिवर्सल मैटर) देने या निरुपाधिक ब्रह्म में उसके सोपाधिक विपर्ययशील दृश्य सृष्टि के प्रथम निबंधन (लक्षित संबंध) का कारण यही महाकाम है।

> कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीद्।
>
> सतोबन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥ —ऋ० १०।१२६।४

यह स्मरण रखना होगा कि वेदों में प्रेम के पर्याय स्वरूप सृष्टिप्रवर्तक महाकाम शब्द का ही प्रयोग हुआ है। चैतन्य को अचेतन से युक्त करनेवाली प्रेम की उस महाकामना का हृदय में अन्वेषण करने पर जिन्होंने पता पाया, जिनके उज्ज्वल अंतःकरण में सबसे पहले उस विश्वव्यापी एक अव्ययी प्रेम-सत्ता (इयं विसृष्टिर्यत आबभूव) की ज्योति का उन्मीलन हुआ, वे थे कवि और मनीषी। अपने ही अभिज्ञात आलोक का लोक-तिमिर से, अमृतमय अनंत जीवन का (उसके पुनरांकुरण हेतु) मृत्यु से, नव विकास के लिये द्वंद्व-निबंधन करनेवाले उस अलौकिक महाकाम को—जिससे निकलकर जगती की समस्त लोक-कामनाएँ अंत में फिर उसी में अपनी सत्ता गँवा कर अनंत विश्राम करती हैं—जो जान सके, प्रज्ञा से पकड़ सके, आदि स्रष्टा के बाद सच्चे कवि वे ही थे।

---

४—यत्ते कल्याणतमं रूपं तत्ते पश्यामि। योऽसावसौ पुरुषः सोहमस्मि। —ईश० १६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उषा की अरुण-कांति-लिप्त कंचन किरणों को तुषारावृत सिंदूरी उदयाचल पर प्रभाविकंपित पुलकविह्वल नृत्य करते देखकर प्रथम श्रेणी के सहृदय, विशदीभूत मनोमुकुरवाले उन ऋषियों के अंतःकरण में कोमल कोमल कमनीय कविता के मधुर हर्षजात भावों का सरस संचार हुआ, जिनकी हिलोरों में निमग्न होकर अपने मुग्ध हृदय में उन्होंने तन्मयीभूत आस्वादन-क्रिया से प्रतिपन्न आनंद-रस की अपार सृष्टि की। स्वानुभूति की तीव्रता की सिहर से, परिपूर्ण कुंभ के छलकने के समान उनकी रागात्मक वृत्तियाँ तरंगायित हो उठीं। भाव-स्पंद और हृदय-संवाद से चित्त की तदात्मयी सुकुमार वृत्तियों ने हर्ष-प्रतीति रूप रस को, स्वांकुरित अभिव्यंजना के आवेशवश समुचित, तारुण्यमय और मनोहारी पद्यों ( अतुकांत मंत्र रूपी ऋचाओं ) का सुंदर रूप दिया। उषा पर हृदयहारी भिन्न तुकवाले छंद[५] बने। प्रकृति के स्निग्ध-श्यामल मधुर क्रोड़ में स्वच्छंद विहरण करनेवाले संसार के आदि सहृदयों ( मनुज कवियों ) की वाणी का वर्णनात्मक स्रोत नगराज की हिम-हेममयी 'तलहटी' में प्रवहमान हुआ। ऋग्वेद में इस प्रकार की अविश्रांत काव्य-सुधारस-निष्यंदिनी अनेक ऋचाएं पाई जाती हैं।

अपनी असंख्य किरणों से आलोक-चूर्ण बरसाकर जगती के दारिद्र्य, दुःख, अंधकार तथा अज्ञान-कुहर का नाश करनेवाले, वनस्पतियों के जीवनदाता, प्रजा-पालक और सबकी बुद्धि के प्रेरक भगवान् भास्कर प्राण के साक्षात् स्वरूप हैं। अंतरिक्ष के सुनील अवकाश में हेमकूट के उत्तुंग शिखर पर रश्मिमालाकुल अवधूत ज्योतिमंडल को मंगल-घट सा धीरे-धीरे प्राची से उठते देखकर आनंद-गद्गद ऋषि-मंडली मोहित हो जाती है। हृदय उस अलौकिक शोभा और श्रद्धा से भर उठता है। उनके मस्तक नमस्कार-उक्ति के विधान में स्वयं झुक जाते हैं और रसावेश में प्रकृति-सौंदर्य के उपासक वे ऋषि कह उठते हैं, अरे यह देखो—

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

यह स्तवन प्रशंसा के विशेषणों, सुंदर प्रतीकों से शबल अर्थों और ध्वनन-शील शब्दों का कवित्वपूर्ण संकलन है। इनके प्रणेता कवि थे, इसमें संदेह नहीं। दिवाकर की दीप्त किरणें इनके लिये यशोज्ञापिका शुभ्र पताकाएं हैं—'अदृश्रमस्य केतवो विरश्मयो जनाँ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा।' प्रभात के सोन्मीलनकारी

५—अनियमवद्वाक्य ( सूत्र ) या अबद्धपद छंद।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रहरों में अप्रदात अंतःकरण वाले जीवनधर किंतु जीवन्मुक्त ये मेधावी उषा के आगमन को जिस दृष्टि से देखते थे उसे ऋग्वेद के उषा संबंधी मंत्रों में देखिए।

लज्जा की ललाई का मनोहर दुकूल धारण किए मस्त चाल से धीरे-धीरे अपने (दिग् व्योम) पथ का अतिक्रमण करती, समय का आवर्तन-चक्र (चूड़ियों सा) घुमाती, सुंदर नेत्रोंवाली 'सूनरी' (सुष्ठु नेत्री, या सुष्ठु नयति) जगत्रय की प्रबोधदात्री उषा नवयुवती की भाँति (योषेव) आती है। चलती ऐसी है मानो उसके पैर हों (पद्वत् ईयते)। यद्यपि वह निःशब्द आगे बढ़ती है, पर उसकी आहट से वनों में मधुर कलरव जाग उठते हैं। अपने अपने नीड़ों में बैठे या सोए हुए पक्षी जो उसे मिलते हैं उनको उड़ाती हुई वह वन-रमणी सी आ रही है—

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती।
जरयन्ती वृजिनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः॥ ऋ० १।४८।५

प्रत्यूष-प्रभा के प्रकृति-सौंदर्य के सार्धव्यक्त रूप-योजना वाले ये प्राचीन वर्णन आज भी अपने उद्गायक ऋषियों के हृदय की काव्यपूर्ण रागरसिकता का परिचय देते हैं। तब हृदय के इन सहज-विनिर्मुक्त भावोद्गीरणों की अभिव्यक्ति के उपर्युक्त समस्त पदों और श्लोकों के बंध की परंपरा का आविर्भाव न था। कदाचित् इसीलिये संगीतात्मक या सहज गेय न होने से ये पंक्तियाँ काव्य-साहित्य में वह स्थान पाने से वंचित रहीं जो लयतुकादि-युक्त पदों को मिलता है। किंतु जहाँ तक भाव की सीधी-सादी हृदयग्राहिणी आरंभिक अभिव्यक्ति का और रस-प्रतीति का संबंध है, इनकी महत्ता सामाजिक की दृष्टि में कम न होकर इनके निर्माणयुग, विकास और रचनाकाल की परिस्थिति के विचार से आज भी अतर्क्य है। 'कलातीत' (कलाओं से अतीत) की नित्य ज्ञानगाथा का यह साहित्य (वैदिक साहित्य) वस्तुतः शब्द-विन्यास-कौशल की अपनी दृढ़ सत्ता के लिये व्यंजना में मानस की, आत्मा की, संकल्पात्मक अनुभूति को ही मूल आधार मानकर चला है। विषय के आध्यात्मिक मनोभावों से शबल होने के कारण शब्द-प्रपंच के बाह्य आवरण 'शब्दजालं महाऽरण्यं चित्तभ्रमणकारणम्'—पर ध्यान न देकर सारभूत सूत्रों के रूप में ही अर्थ-निरूपण का प्रयास किया गया है, भले ही वाक्यों में व्यावहारिक काव्यचारुता की पूर्णता न हो; क्योंकि वह तो इन आर्य-साहित्य-प्रणेताओं का प्रधान लक्ष्य न था, यहाँ वे अपौरुषेयशास्त्र[६] के कवि स्वरूप से सम्मुख आते हैं। फिर भी

६—अपौरुषेय शास्त्र के अंतर्गत वेद (उपांग सहित) श्रुति मंत्र और ब्राह्मण सब हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भावुकता और जगन्मंगल-भावना की सुकुमार उत्सुकता अनुरोध बनकर उनके हृदय से बाहर छलक ही पड़ती है। मनीषियों के अंतःकरण का लालित्य उफनकर अनुभूति के संचित संस्कारों की सरसता के प्रभाव से शास्त्र-साहित्य को काव्योन्मुख कर देता है। भाव के अनुरूप शब्द-चयन भी होने लगता है। नीचे वसुधातल पर प्रत्येक पार्थिव धूलिकण, अंतरिक्ष में घूमता हुआ प्रत्येक ज्योतिपुंज, एक ही मधुरिमा से आक्रांत हो जाता है। उस रस-व्यापकता में—'मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमान् अस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः' ऐसी अभिव्यक्तियाँ निर्झर सी झर पड़ती हैं। यहाँ केवल ऐहिक लोक-सिद्धांत और तथ्य का सूत्र-संकलन नहीं है जो कि धर्मशास्त्र का एक विज्ञानमय व्यापार है। विकल्पात्मक सीमा से ऊपर उठकर इनमें श्रेय और प्रेय दोनों के आत्मसामंजस्य का विनियोग लक्षित होता है।

उषा-प्रकरण में ही आगे चलकर इनकी वाणी का विलास विशेषतामय हो जाता है, जब ये कहते हैं—प्रकाश की पुत्री ( दुहितर्दिवः ) यह कांति लिप्त उषा सूर्य और चंद्र की मधुरोज्ज्वल ज्योत्स्ना लेकर हम लोगों के लिये चारों ओर प्रभूत शोभा का विभव विकीर्ण करती हुई स्थूल-सूक्ष्म-चेतनाचेतन वस्तु-जगत् को निज चारुता से वैसे ही प्रकाशित करती है जैसे सुकन्या अपने शील से मातापिता और पति उभय कुलों की शोभा बढ़ाती है—

उषा आभाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ (१।४८।९)

फिर वह कैसी है, उसकी क्या सौष्ठव-प्रणाली है, इसका विविध वर्णन करते हुए वे उससे ही कहते हैं—ओ चित्र-विचित्र धन-रत्नादि से सुशोभित ( चित्रा मघे ) रमण-साधन 'यानों' और रंग-बिरंगी ज्योतियों से जटित रमणीयलोचने उषे ! तुझ में ही विश्व के चराचर जीवन के अनुप्राणन और ओज-धारण की प्रेरणा है। इसलिये तू हम लोगों की भी श्रवण योग्य बातें सुन ( श्रुधि )—

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं ते वियदुच्छसि सूनरि।
सा नो रथेन बृहता विभावरि[७] श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ (१।४८।१०)

उन सुनने और सुनाने योग्य बातों की परिग्रह-प्रणयिनी अनुरोध-भावना भी दर्शनीय होती है। उषा को 'गोमती'—इंद्रिय-चेतना-संपन्न प्राणी-सा संबोधित कर वे सुकवि कहते हैं—सब इष्ट पदार्थों को प्राप्त कराने में प्रवीणा तू ऊपर से अलौकिक

७—या विविधतया भाति तत् सम्बुद्धौ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गुण-संपन्न सत्त्वों को हम सोमपान करनेवालों के लिये ( सोमपीतये[८] ) ला दे। और वही तू पृथ्वी की प्रशंसनीय किरणावलियों से युक्त इंद्रियोंवाले, विज्ञान और अन्नमय ( प्राणों वा अन्नम्—तै० ) उत्तमोत्तम ओजवान् तुरगमय प्राण को हम मानवों में धारण कर—

विश्वाँ देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यमुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ (१।४८।१२)

इसी स्वर में एक उक्ति और है—

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रतिभद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ (१।४८।१३)

अर्थात् जिस उषा की तमसविनाशिनी मंगल-ज्वालामयी किरणें ('भद्रा अर्चयः') प्रत्यक्ष हो रही हैं वह अपनी रूप-विभा से आच्छादित करनेवाली शोभन राज्यलक्ष्मी हम लोगों के लिये विश्व को प्रदान कर रही है।

इस प्रकार एक सुलक्षणा युवती के शुभागमन से जिन मधुर भावों का उन्मेष, जिन सुखानुभूतियों का समुदय और जिस मंगल का समारोह मानवजगत् में छा जाता है उन सबका रूपक के व्याज से सांकेतिक ध्वनिमिश्र[९] यह वर्णन अपनी प्रशस्तियों से आज भी अपने प्रणेताओं की ऊर्ज प्रतिभा का परिचय दे रहा है। इनमें अनुभूति की विशिष्ट सत्ता है। यही हेतु है, शब्दों और वाक्-समूहों की लाक्षणिकता में समय-समय पर बड़ा विपर्यास उत्पन्न होने और तत्समयापेक्षी व्यापक रुचिभेद उत्पन्न होने पर भी इनकी मौलिक रमणीयता में कमी न आने पाई। अपने निर्माणकाल की 'अनुवर्तिनी' उत्तम श्लाघा और समादर की पात्रता का वहन ये आज भी उस समाज में कर रहे हैं जो इनमें आरोपित ब्रह्मवाक्यता की पुनीत परंपरा में विश्वास न कर इन्हें केवल इतिहास-साहित्य की दृष्टि से देखता है।

प्रकृति की, ज्योतिष्पति की सुकन्या उषा के प्रति राग और आशंसापूर्ण हृदयहारी संबोधनों से भरे काव्य-गुण-संपन्न छंद, इनसे भी अधिक सुंदर पदप्राय मंत्र, ऋग्वेद के कवियों की गहरी भावुकता, वर्णनपटु काव्यकुशलता और व्यंजना-शक्ति का बहु विज्ञापन कर रहे हैं। ये मंत्र भी हैं; काव्य भी हैं। इनके रचयिता ऋषि भी थे; कवि भी। क्योंकि रस कहीं भी हो, वह अनेक नहीं, एक है।

---

८—सोमपीतये, सोमानां पीतिः पानं यस्मिन् व्यवहारे तस्मिन्।

९—एक उद्भट वेदभाष्यकार के मतानुसार उक्त मंत्रों में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वैदिक साहित्य में राम-कथा का बीज

[ श्री चंद्रभान ]

पुराणों में वर्णित तथा लोक में प्रचलित अनेक कथा-कहानियों का बीज वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। रामायण के अध्येताओं के सम्मुख यह प्रश्न रहा है कि राम-कथा का कोई सूत्र वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है अथवा नहीं। यदि कोई सूत्र है तो उसका क्या रूप है और उसका किस प्रकार विकास हुआ है।

राम-कथा के विषय में पाश्चात्य विद्वानों के तीन प्रमुख मत सामने आते हैं। प्रथम सिद्धांत 'लासेन' का है।[१] इस सिद्धांत के अनुसार रामायण की कथा एक रूपक है जिसमें आर्यों की दक्षिण-विजय के सफल प्रयत्न का प्रतिबिंब है। दूसरा सिद्धांत वेबर का है। इनके अनुसार रामायण की कथा आर्य-सभ्यता के दक्षिण-भारत और लंका में विस्तार का रूपक है। ये सिद्धांत रूपक पर बल देते हैं। इनके आधार से राम-कथा के सभी तत्त्वों की संतोषजनक व्याख्या नहीं हो पाती। उक्त सिद्धांत अयोध्या के राजवंश से संबंधित कथा-भाग के लिये कोई उत्तर नहीं देते। दूसरे कथा-भाग की व्याख्या मात्र ही करते हैं। दूसरे कथा-भाग में भी जो दिव्य तथा ईश्वरीय तत्त्व आ गए हैं उनकी भी विशद व्याख्या नहीं हो पाती।

तीसरा सिद्धांत वैज्ञानिक अधिक है। इस सिद्धांत से अंतर्राष्ट्रीय कथा-गाथाओं की व्याख्या की गई है। इस मत के अनुसार प्रत्येक गाथा भाषा का विकार है। इस विकृत रूप में रूपकवत् अथवा विशेषणवत् जो शब्द होते हैं वे अपनी स्वतंत्र सत्ता में स्थित होने लगते हैं। यह भूल जाया जाता है कि ये कवि के दिए नाम हैं, जिन्होंने शनैः शनैः देवत्व प्राप्त किया है।[२] अतः इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक गाथा प्राकृतिक घटना के रूपक पर बनी है। पर पहले स्थूल मूर्त गाथा का निर्माण हुआ, तत्पश्चात् उसे भाषा-प्रतीकों में अभिव्यक्ति मिली।[३] इस सिद्धांत को

---

१—ए० मैकडानल, 'ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिट्रेचर', पृ० ३२१

२—मैक्समूलर, लेक्चर्स ऑन सायंस ऑव लैंग्वेज', पृ० ११

३—टेलर, 'प्रिमिटिव कल्चर', जि० १, पृ० २६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आधार मानकर राम-कथा की व्याख्या अनेक विद्वानों ने की है।[४] इस व्याख्या के अनुसार 'सीता' ऋग्वेदीय इंद्र की पत्नी हो जाती है, 'इंद्र' 'राम' में परिवर्तित होता है। 'रावण' 'वृत्र' है (उसका बेटा 'इंद्रजीत' कहा भी है। 'इंद्रशत्रु' ऋग्वेद में इंद्र का विशेषण भी है)। सीता का हरण गायों की चोरी से साम्य रखता है जिन्हें इंद्र ढूँढ़कर, राक्षसों से संघर्ष करके लाता है। हनुमान मारुति का प्रतीक है, जिसने गायों की खोज में इंद्र का साथ दिया था। 'सरमा' इंद्र का संदेश-वाहक था, जो 'रसा' के समुद्रों को पार करके गायों की खोज करता है; यही वह राक्षसी है जो सीता को धैर्य देती है। इस प्रकार से याकोबी ने राम-कथा की रूपकात्मक व्याख्या की है। इसी व्याख्या को आधार मानकर वैदिक साहित्य में राम-कथा के बीज की खोज आरंभ होती है।

ऋग्वेद-काल वह युग है जब मानव की सभ्यता का प्रथम अध्याय लिखा जा रहा था। उस समय ऋग्वेदकालीन आर्य ने पहली बार अपनी आकृति के अनुरूप देवताओं की अभिसृष्टि आरंभ की। डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने लिखा है—'मानव-मस्तिष्क में जो देव-सर्जन का कार्य आरंभ हुआ, उसका जैसा स्पष्ट और भव्य रूप ऋग्वेद में देखने को मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं।'[५] उस युग के मंत्रद्रष्टा ने अपनी नित्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उन नवनिर्मित देवताओं का स्तवन किया। इन स्तवनों में दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि प्रमुख है। आर्य जाति के सम्मुख भारत की विस्तृत, समतल, उर्वरा भूमि थी, पयस्विनी नदियों से भूमि अभिसिंचित थी। उसके कृषि-जीवन में स्पृहणीयता भर गई। भूमि के गर्भ से राशि-राशि धान्य उत्पन्न होता था। भूमि में मातृत्व की स्थापना इसी सूत्र के आधार से हुई होगी। भूमि में मातृत्व के आरोप का प्रौढ़ तथा विकसित रूप अथर्ववेद में प्राप्त होता है। ऋषि गा उठता है—

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।[६]

किंतु अथर्ववेदीय 'पृथिवी-सूक्त' से पूर्व ही, आरंभिक वैदिक साहित्य में ही, भूमि को देवत्व प्राप्त हो गया था। प्रत्येक नदी, जलाशय, पर्वत को उसने देवत्व प्रदान किया। किंतु आर्यों का सीधा संबंध कृषि-भूमि से था। उसी को उन्होंने अपने

४—याकोबी, 'डास रामायन'।

५—'इंडियन फिलासफी', खंड १, पृ० ७३

६—अथर्ववेद, १२।१।१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हल से चीरा था। वहीं से उन्हें राशि-राशि शस्य प्राप्त हुआ था। पृथ्वी के प्रति उस आर्य जाति की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करते हुए अनेक स्तवन मिलते हैं। पृथ्वी का स्तवन दो रूपों में बहुधा मिलता है—एक तो स्वतंत्र रूप से समस्त भूमि का स्तवन; दूसरा, कुछ अन्य देवताओं—क्षेत्र[७] और सीता[८]—के नाम से है। यहाँ 'सीता' शब्द विचारणीय है।

'सीता' वस्तुतः हल चलाए जाने से उत्पन्न 'कूँड़' या चिराव को कहते हैं, जिसमें बीज बोया जाता है। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, मैक्समूलर ने धर्म-गाथा का विकास शब्द-विकार से माना है। उसके मतानुसार आदि मानव ने प्रकृति के दिव्य व्यापारों को देखकर उन्हें किसी शब्द का अर्थ माना, अथवा उस व्यापार को शब्द में अभिव्यक्ति दी। समय पाकर शब्दों में अर्थ-परिवर्तन हुआ। फलतः प्रकृति-व्यापारवाची शब्द दिव्यता अथवा देवत्व के द्योतक हो गए। पहले शब्द रूपकालंकार के रूप में प्रयुक्त हुए। आगे चलकर रूपक का भाव लुप्त हो गया। इसी प्रकार 'सीता' शब्द का विकास हुआ। पहले 'सीता' मात्र एक कृषि-प्रक्रिया का परिणाम थी। अब 'सीता' पर व्यक्तित्व का आरोप किया गया, वह देवी बन गई। इस रूप में आने पर 'सीता' को इंद्र-पत्नी के रूप में देखना स्वाभाविक था।[९] इंद्र निश्चित रूप से वृष्टि और विद्युत् का देव है। इंद्र द्वारा प्रेरित जल-वृष्टि से 'सीता' को सिंचित होते हुए उस ऋषि-कवि ने देखा। अभिसिंचित सीता को बीज धारण करते हुए भी उसने देखा। बीज-काल के पश्चात् उसने कृतज्ञ नेत्रों से देखा कि उस 'सीता' से शस्य की उत्पत्ति हो रही है। अतः ऋग्वेद में 'इंद्र' को 'उर्वरापति' कहा गया।[१०] इस समस्त व्यापार ने ऋषि के कल्पनाशील कवि-मस्तिष्क में 'रूपक' का भाव उत्पन्न किया। फलतः दांपत्य के भाव का आरोप इंद्र और सीता में हुआ। इस प्रकार सीता-कथा का वैदिक विकास आरंभ होता है। वृत्र एक राक्षस है जो बादलों में मेघ के जल को बंद रखनेवाला है। वर्षा-जल के वृत्र द्वारा अवरुद्ध हो जाने पर 'सीता' (कूँड़) का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक है। उसकी उर्वरा शक्ति तथा बीज धारण करने की शक्ति अपहृत हो जाती है। तब इंद्र

७—ऋग्वेद, ४।५७

८—वही ४।५७।६

९—पारस्कर गृह्यसूत्र, २।१७।९

१०—ऋग्वेद, ८।२१।३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अपनी 'पत्नी' ( सीता ) की शक्ति को अपहरण करनेवाले वृत्र को मारता है। अग्नि वृत्र-विनाश में उसका सहायक होता है।[११] इस 'रूपक' का साहित्यिक क्षेत्र में पर्याप्त प्रचार हो गया था। इसका प्रमाण यह है कि कालिदास ने अपने 'कुमारसंभव' में इस 'रूपक' को अलंकार रूप से ग्रहण किया है ( यहाँ भी 'सीता' का अर्थ 'कूड़' ही है )—

सखीभिरश्रोत्तरमीक्षितामिमां
वृषेव सीतां तदवग्रहक्षताम्।[१२]

पार्वती जी अपने प्रियतम शिव जी से वियुक्त होकर उसी प्रकार खिन्न हैं जिस प्रकार इंद्र द्वारा वर्षा के अभाव में 'सीता' क्षुब्ध हो जाती है। इस कहानी का रूप तैत्तिरीय संहिता में और अधिक स्पष्ट हो जाता है। अथर्ववेद में 'सीता' के व्यक्तित्व की रूप-रेखा और निश्चित रूप से उभर आती है। वहाँ देवी रूप में 'सीता' का आह्वान किया गया है। इस स्थान पर विश्वेदेवा को उनका पति बताया गया है।[१३] उक्त वर्णन में मरुत् का भी संबंध सीता से बताया गया है। इंद्र ने मरुत् की सहायता से ही वृत्र को मारा था। मरुत् ने युद्ध भी किया था।[१४] इसलिये मरुत् का उल्लेख 'सीता' के साथ हुआ है। इसी मरुत् के संबंध से हनुमान की कल्पना की जा सकती है। हनुमान को रामायणकार ने मरुत् का पुत्र कहा है। इंद्र और सीता को साथ-साथ भेंट देने की बात 'पारस्पर गृह्यसूत्र' में मिलती है।[१५] इस प्रकार सीता, इंद्र, मरुत्, अग्नि और वृत्र आदि वैदिक पात्रों द्वारा एक कहानी खड़ी होती है। इसी कहानी को रामकथा के उत्तरार्द्ध (सीताहरण से रावण-वध तक) का मूल कुछ विद्वानों ने माना है।

'सीता-कथा' के इस वैदिक रूप की पुष्टि में आदिकवि द्वारा दी हुई सीता की उत्पत्ति-कथा ली जा सकती है। वहाँ यह कथा आई है कि मेनका को जनक ने आकाश में देखा। उसे देखकर जनक के मन में कामना हुई कि मेनका से कोई

११—वही ५।६।११
१२—कुमारसंभव, पंचम सर्ग।
१३—अथर्ववेद, १७।४-६
१४—ऋक्०, ६।६६।११
१५—'पारस्परगृह्य सूत्र,' २।१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संतान उत्पन्न हो। आकाशवाणी हुई—'ऐसा ही होगा। खेत के कूँड़ में जनक को सीता मिलती है। वह जनक की मानस-पुत्री घोषित की जाती है। इस प्रकार वाल्मीकीय सीता का जन्म भी पृथ्वी से ही होता है।[१६]

वैदिक साहित्य में राम-कथा का बीज यही 'सीता' शब्द के 'रूपक' रूप में विकसित होने से बननेवाली कथा कही जा सकती है। इसी रूपक के साथ कुछ ऐतिहासिक तत्त्व आकर मिल गए, जिससे यह गाथा शुद्ध प्राकृतिक गाथा ही नहीं रह गई। वस्तुतः आगे के वैदिक साहित्य में विष्णु की महत्ता इंद्र से बढ़ गई। विष्णु के इंद्र-पद पर प्रतिष्ठित होते ही विष्णु और सीता का संबंध संपन्न हुआ और फिर वह स्थान विष्णु के अवतार 'राम' ने ले लिया होगा। इस वैदिक कथा के आसपास फिर अन्य वैदिक देवगण सहायक रूप में इकट्ठे होते हैं। इसका निर्देश आदिकवि ने इस प्रकार किया है—'अवतरित होने से पूर्व विष्णु ने देवताओं से अपने सहायक रूप में जन्म लेने के लिये कहा। इसपर सभी देवता किसी न किसी रूप में अवतरित हुए और राम को रावण-वध में सहायता दी।[१७] आगे नामावली भी गिनाई गई है—सुग्रीव सूर्य का, तार बृहस्पति का, नल विश्वकर्मा का, नील अग्नि का, द्विविद और मयंद अश्विनों के, सुषेण वरुण का, शरभ पर्जन्य का तथा हनुमान वायु का अवतार था।[१८] उक्त सभी देवता प्रसिद्ध वैदिक देवता ही हैं। इन सभी देवताओं ने व्यक्त-अव्यक्त रूप में इंद्र-वृत्र-कथा में भाग लिया था। इस प्रकार 'राम'के प्रायः सभी प्रमुख सहायकों का मूल हमें वैदिक साहित्य में उपलब्ध हो जाता है। इन सभी देवताओं को मिलाकर वेदों ने जो इंद्र-वृत्र-कथा खड़ी की उसी की प्रतिकृति आगे प्रचलित होनेवाली कथाएँ कही जा सकती है। आगे के युगों में अनेक लोक-तत्त्व भी आकर राम-कथा के वैदिक तत्त्वों में मिल गए। इस प्रकार लोक-वेद-समन्वित रामकथा अमर हो गई। ब्रह्मा के रूप में आदिकवि के ब्रह्म ने इस अमरता का आभास पहले ही पा लिया था और घोषणा की थी—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

---

१६—वाल्मीकि रामायण, बंगाल, ३।४।१०; निर्णयसागर, १।६६।१४
१७—ग्रिफिथ रामायण, १।८६; निर्णय० १।१७
१८—वही, १।६३; निर्णय० १।१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# धार से प्राप्त एक शिलालेख

[ श्री वि० श्री० वाकणकर ]

धार अथवा धारा-नगरी की गणना मालव के अत्यंत प्राचीन एवं ऐतिहासिक नगरों में की जाती है। टालेमी ने अपने यात्रा-विवरण में जिस 'भोरो गिरी' का उल्लेख किया है वह संभवतः 'धारागिरी' अथवा 'धारा' ही है। महापराक्रमी परमार राजाओं के राज्यकाल में इस नगरी का सुवर्णकाल रहा। वाक्पतिराज मुंज तथा राजा भोज ( प्रथम ) के काल में यहाँ अनेक साहित्यिक, चित्रकार, शिल्पी तथा अन्य प्रकार के कलाकार और गुणीजन रहते थे। यह धारा अपने चौरासी चतुष्पथों से शोभायमान होती थी ( पारिजात-मंजरी )। परमारों का धारा से इतना अनन्य संबंध हो गया था कि एतद्विषयक कुछ लोकोक्तियाँ सर्वत्र प्रचलित हो गई थीं। यथा—

जहाँ पुआँर तहँ धार है, और धार तहाँ पुआँर।
धारा बिण पुआँर नहीं, नहिं पुआँर विण धार॥
पृथिवी पुआँरा तणी, अनी पृथिवी तणया पुआँर।
एक आबू गड बेसबो, दूजी उजेणी धार॥

राजा भोज के समय में प्रतिकालिदास कवि पद्मगुप्त धार में ही रहते थे। मदन कवि द्वारा विरचित 'पारिजात-मंजरी' तथा पद्मगुप्त का 'नवसाहसांकचरित' धार और परमारों के वैभव का अतीव सुंदर चित्रण करते हैं। स्वयं भोजराज ने अनेक संस्कृत ग्रंथों की रचना की, जिनमें से 'कोदण्डकाव्यम्' तथा 'समराङ्गण-सूत्रधार' सर्वप्रसिद्ध हैं।

धार के ख्यातनामा श्री काशिनाथ कृष्ण लेले के प्रयत्न से धार का प्राचीन इतिहास प्रकाश में आया। उन्होंने धार-स्थित भोजशाला अथवा सरस्वती-मंदिर से अनेक शिलालेख प्राप्त किए। कोदंडकाव्य तथा पारिजातमंजरी के अत्यंत विशाल तथा सुलिखित शिलालेख उन्हीं के परिश्रम से प्राप्त हुए। दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी में प्रचलित नागरी लिपि में वे उत्कीर्ण किए हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लेखक को संवत् २००६ के वसंत में पुरातत्त्व-संग्रहालय के चपरासी छोटे-लाल द्वारा सूचना मिली कि एक लिखित शिला भालीवाड़ा ( धार ) के खेतों में पड़ी है। एक दिन प्रातः जाकर उसे देखा तथा श्री रामचंद्रदेव की सहायता से वह शिला धार-संग्रहालय में लाई गई। धार के प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० अ० वा० वाकणकर जो उस समय वहाँ इतिहास विभाग के प्रमुख थे, उसे प्राप्त कर हर्षित हुए। उन्हीं की सहायता से उसे पढ़ा भी गया।

लेख स्लेट पत्थर पर उत्कीर्ण है। इसकी लिपि धार के अन्य लेखों के समान ही ग्यारहवीं शताब्दी की प्रतीत होती है तथा पंक्तियाँ पद्यबद्ध हैं। कुल सतरह पंक्तियाँ उत्कीर्ण की गई है। लेख त्रिकोणाकृत टूटी शिला पर होने के कारण उसकी ऊपर की पंक्तियाँ पर्याप्त लंबी हैं तथा अंतिम पंक्ति केवल चार अक्षरों की रह गई है। श्लोकों की संख्या इस प्रकार है—

॥१२॥, ॥२३॥, ॥३१॥, ॥८३॥, ॥४॥

इससे प्रतीत होता है कि किसी काव्य के दो खंड इसमें लिखे हैं प्रथम खंड के १२, २३, ३१, ८३ तथा द्वितीय के ४ संख्यक श्लोक के अंश इसमें आ गए हैं। उत्कीर्ण करने की पद्धति अत्यंत सुंदर है।

लेख की भाषा प्राकृत तथा कोदंडकाव्य से मिलती-जुलती है। इसकी पंक्तियाँ दोनों ओर टूटी होने के कारण अर्थबोध नहीं होता। सामने के पृष्ठ पर इसकी प्रतिकृति दी जाती है। मूल लेख की लंबाई १५ इंच तथा चौड़ाई १२ इंच के लगभग है। लेख इस प्रकार पढ़ा गया है*—

| पंक्ति संख्या | लेख |
|---|---|
| १ | ल्लवि उंदेइने अवसाण[1]। मेल्लवई अम्मणातंम... |
| २ | णरायाण ॥१२॥ हिअएवसि उणमए[2] एत्वले यंने अ... |
| ३ | इसुद्धे आम्हे[3] कज्जस्स जस्मवादित्ता[4] ते नु (?) हसिद्धेए[5]... |
| ४ | उण अद्धयं दंभडिज्जं तो न सोहेई ॥२३॥ माणो... |

* कुछ अक्षर अन्य प्रकार से पढ़े गए, नीचे टिप्पणी में उनका संभव पाठ दे दिया गया है। —सं०

१—अवेसाण। २—ऊण। ३—अम्हे। ४—हित्ता। ५—दंए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



५ गो विंदुमाणेणं अज्जं गहि उदुजंपए ए अं...उ...
६ णेहिं कमुद्दा[६] मोण सुहाणं कज्ज परि (?)...डिए दुव...
७ ...दईऊ। महिलाणं होई हेर्पे (?) माणो पडिहा...
८ माणो तपिई मुद्दे मंपिदुरा खसे[७] (?) तहय पुण दई
९ तीए विदु पडिगहि उतहा पूणो काय रोविहिउ। ...
१० ॥३१॥ झडिज्जं तो विइहंमाणो नय जाई लडह...
११ ...माणोतणे इमुद्दे अवहिर[८] सुमंदु एत्छ पड़िग...
१२ जेत्ताण[९] ॥८३॥ लच्चय तुल्लं मुद्देतं मंइई[१०] उणात...
१३ ...हसिउ। तुहहि अयं मई नायं हि अयत्छंतु हनसि...
१४ ...रई आई। सयवारं आवत्तीजेणं ए आ...
१५ ........... इहं सुणम्वि ॥ ४ ॥ पिह तुहा...
१६ ...................ए अंमुद्दा दुअ०भेसई[११]...
१७ .................................. ? ? ? ...

---

६—समुद्दा। ७—हु शंख सि। ८—हीर। ९—जुत्ताए। १०—मं रई।
११—भसइ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार से प्राप्त एक शिलालेख

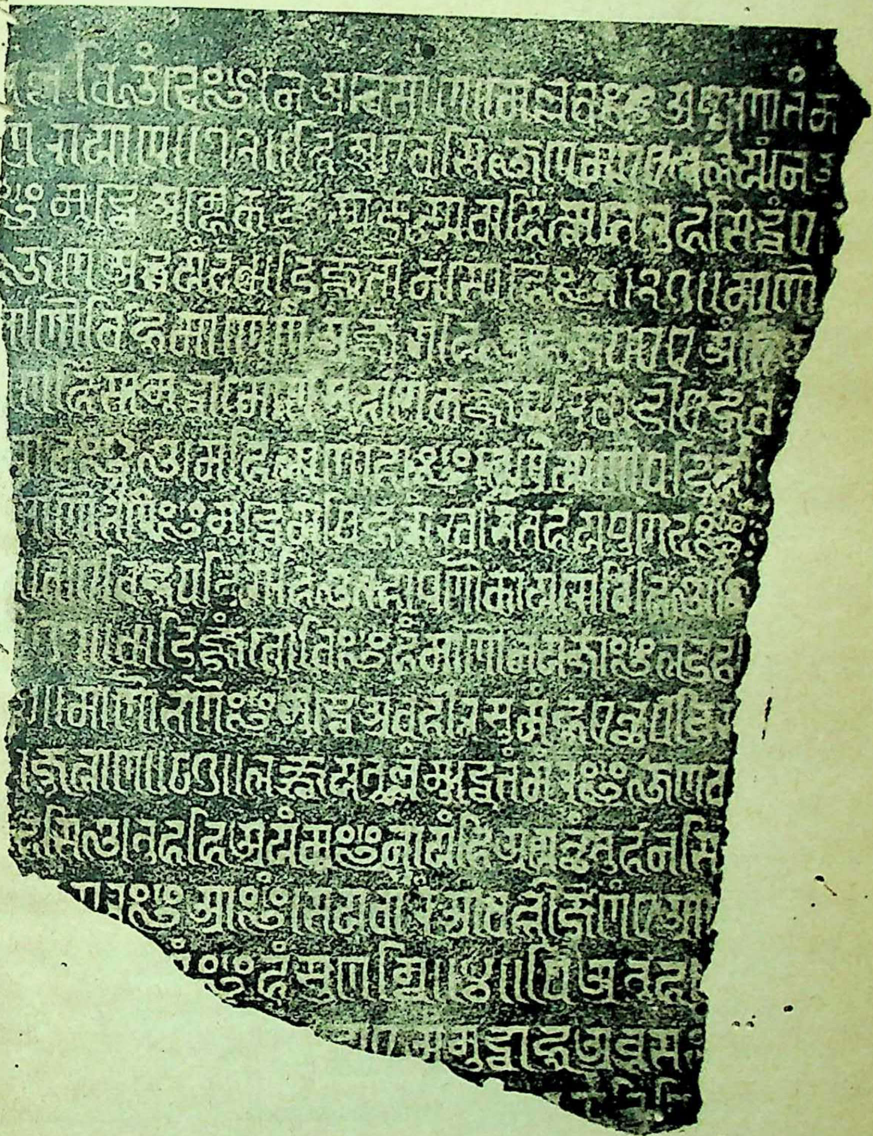

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विमर्श

## वाल्मीकि-आश्रम

नागरीप्रचारिणी पत्रिका के तिरपनवें वर्ष के तृतीय-चतुर्थ अंक में एक लेख वाल्मीकि-आश्रम के संबंध में श्री किशोरीलाल गुप्त लिखित प्रकाशित हुआ है। उसमें अ० ति० रेलवे के भीटी स्टेशन से दक्षिण बनकट स्थान को 'सीतामढ़ी बनकट' बतलाकर उसे गंगा के तट पर स्थित बतलाया है और कहा गया है कि सीता जी ने अयोध्या से निष्कासित होने पर अपने वनवास के दिन यहीं बिताए थे तथा यहीं उनके लव और कुश पुत्रों की उत्पत्ति हुई थी। इस संबंध में वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही विचार होना आवश्यक है, क्योंकि रामचंद्र और सीता के संबंध में ऐतिहासिक तथ्य वाल्मीकि रामायण से ही प्राप्त हो सकते हैं। किसी इधर के काव्य-ग्रंथ, तुलसीकृत रामायण अथवा 'साकेत' आदि को आधारभूत मानना अधिक युक्तियुक्त नहीं होगा। एक सीतामढ़ी स्थान मुजफ्फरपुर जिले में नैपाल राज्य की सीमा पर स्थित है। वहाँ सीता जी की जन्मभूमि कही जाती है। इसी प्रकार भीटी स्टेशन के पास सीतामढ़ी की ऐतिहासिकता किसी और कारण से हो सकती है। गंगा के उत्तरी तट पर सीता जी का निष्कासित अवस्था वाला वनवास-स्थल तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि लक्ष्मण जी ने गंगा पार करने पर उन्हें निष्कासन की आज्ञा सुनाई थी और उस पार के स्थान पर ही महर्षि वाल्मीकि उन्हें अपने आश्रम ले गए थे। हम आगे चलकर इस संबंध में विशेष चर्चा करेंगे। हाँ, वाल्मीकि-आश्रम को लेकर इस स्थान का समर्थन हो सकता है; सो भी गंगा के उत्तरी तट को लेकर नहीं, दक्षिणी तट के विषय में ही इसकी उचित चर्चा हो सकती है। इलाहाबाद जिले के सिरसा नामक स्थान से पाँच-छः कोस पूर्व बनकट स्थान है और वहाँ वाल्मीकि जी का आश्रम होना कहा जाता है। वाल्मीकि रामायण में वाल्मीकि जी के आश्रम को लेकर हमें तीन स्थानों का उल्लेख मिलता है। उन्हें हम क्रमशः बतलाने का प्रयत्न करेंगे।

**प्रथम आश्रम**—पहले आश्रम का वर्णन वाल्मीकि रामायण के बालकांड में है। रामचंद्र जी राज्य कर रहे थे। एक बार नारद मुनि वाल्मीकि के आश्रम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आए। दोनों की बातचीत में यह प्रसंग उठा कि इस समय इस संसार में कौन ऐसा महापुरुष है जो एक साथ ही गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़व्रत, चरित्रवान्, प्राणिमात्र का हितैषी, विद्वान्, समर्थ, अति दर्शनीय, धैर्यवान्, क्रोध को जीतनेवाला, तेजस्वी, ईर्ष्यारहित तथा क्रोधयुक्त होने पर देवताओं को भी भयभीत करनेवाला हो? वाल्मीकि के इस प्रश्न के उत्तर में नारद ने तीनों लोकों की जानकारी के आधार पर कहा कि आपने जिन गुणों का उल्लेख किया है उनका किसी एक में मिलना अति दुर्लभ है; परंतु इक्ष्वाकु-वंश-प्रभव राम में उन गुणों की विद्यमानता है। इसी प्रसंग में नारद ने राम के शरीर और गुणों का उल्लेख करते हुए उनके जीवन-चरित का ही संक्षेप में वर्णन कर दिया है। यह वर्णन पूरे प्रथम सर्ग में हुआ है और इसे मूल रामायण कहते हैं।

इस कथा को सुनकर महर्षि वाल्मीकि का रामचंद्र की ओर आकर्षण बढ़ा और रामायण अथवा रावण-वध काव्य की रचना का विचार उनके हृदय में उत्पन्न हुआ। नारद तो वाल्मीकि और उनके शिष्यों से पूजा प्राप्त कर आकाश-मार्ग से गमन कर गए, इधर वाल्मीकि अपने शिष्य भरद्वाज को साथ ले दो घड़ी में उस स्थान पर पहुँचे जहाँ तमसा नदी है। तमसा के निर्मल और कीचड़-रहित जल को देख शिष्य से कहा कि कलश को रख हमें वल्कल वस्त्र दो, हम यहाँ स्नान करेंगे। महर्षि वाल्मीकि वल्कल वस्त्र ले नदी के किनारे टहलने लगे। इसी बीच एक क्रौंच पक्षी के जोड़े को मिथुनावस्था में एक व्याध ने अपने तीर का निशाना बनाया। नर पक्षी रक्त से लथपथ भूमि पर लोटने लगा और मादा करुण विलाप करने लगी। इस दृश्य से ऋषि के कोमल हृदय को चोट लगी और उन्होंने उसे डाँटकर कहा कि तू अब इस वन में कभी न आना। तूने कामपीड़ित जोड़े को दुख पहुँचाया है अतएव तुझे भी बहुत दिनों तक शांति न मिले। ये क्रोधयुक्त वाक्य उनके मुख से निम्न रूप में निकले—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ (वा० रा० १।२।१५)

इन वाक्यों के व्यक्त होने पर महर्षि उसके अर्थ और उसकी रचना का विचार करने लगे। उन्होंने अपने शिष्य से कहा कि अरे इसमें तो चार पाद हैं और प्रत्येक पद में समान अक्षर हैं। यह वीणा पर भी गाया जा सकता है। यह यशोरूप हो मेरा यश बढ़ाए। उन्होंने और उनके शिष्य ने उसे कंठ कर लिया और अपने आश्रम में लौट आए (१।२।१६-२०)। उसी समय वाल्मीकि-आश्रम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ब्रह्मा जी आए और उनसे भी इस संबंध में परामर्श हुआ। उस चार-पाद वाले वृत्त का नाम अनुष्टुप् छंद हुआ और इसी छंद में ब्रह्मा जी ने रामचरित-वर्णन का परामर्श दे उन्हें नारद-कथित रामचरित के गुप्त प्रकट सभी वृत्तांत जानने की शक्ति प्रदान की ( १।२।२३-३५ )।

इस प्रकार वाल्मीकि के जिस आश्रम में रामायण-कथा के आरंभ का प्रदुर्भाव होता है वह स्थान तमसा नदी के तट के कहीं समीप ही दो घड़ी में पहुँचने योग्य होना चाहिए। तमसा नाम की दो नदियों का उल्लेख मिलता है। एक तो उत्तर-तमसा जिसके तीर, वनवास के पश्चात् शीघ्र ही रामचंद्र जी का रथ पहुँचा था—'तमसा तीर तुरत रथ आवा'। यह नदी अवध से बहती हुई आजमगढ़ होकर आगे सरयू में मिल जाती है। दूसरी दक्षिण-तमसा रीवाँ राज्य और इलाहाबाद जिले की सीमा से बहती हुई इलाहाबाद जिले के सिरसा नामक स्थान से पश्चिम गंगा जी में मिलती है। इसे टौंस या तमसा कहते हैं। वाल्मीकि-आश्रम कहीं समीप ही इसी तमसा के किनारे होना चाहिए। सिरसा से पश्चिम थोड़ी ही दूर पर इस समय तमसा और गंगा का संगम है। यहाँ से पाँच छः कोस पूर्व वनकट स्थान है। संभव है यहाँ वाल्मीकि का आश्रम रहा हो और यहाँ से वे अपने शिष्य सहित दो घड़ी में पहुँच गए हों। श्री किशोरीलाल जी का अभिप्रेत वाल्मीकि-आश्रम यहीं हो सकता है। जो हो, इस आश्रम का संबंध सीता जी के निवास से न हो तो भी रामायणी कथा के आरंभ समय से हो सकता है। यह बनकट स्थान भीटी से दक्षिण गंगा के दक्षिण पार है और इसी पार ऊँचडीह नाम का एक स्थान ई० आई० आर० का स्टेशन है। गोसाईं जी का वर्णित दिगपुर यह डीह भी हो सकता है। यहाँ खोदाई करने पर पुराने नगर का पता भी लगा है। गंगा के उस पार भीटी या भीटा अर्थात् उच्च स्थान और इस पार ऊँचडीह अर्थात् पुराना ऊँचा स्थान सार्थक है, किंतु यह स्थान भी बनकट से छः कोस दूर है। जो हो, बनकट के पास वाल्मीकि जी का एक आश्रम होना सिद्ध हो सकता है।

सीता को वनवास देते समय रामचंद्र ने लक्ष्मण से वाल्मीकि के आश्रम का जो उल्लेख किया था उसमें भी तमसा नदी का नाम आया है—

गंगायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मनः ॥
आश्रमो दिव्य संकाशस्तमसातीरमाश्रितः ।
तत्रैनां विजने देशे विसृज्य रघुनन्दन ॥ (वा० ७।४५।१७,१८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और यही कारण है जो बनकट में सीता जी के रहने की बात कही जाती है। इस समय बनकट से पूर्व नाले के उस पार थोड़ी दूर पर सीतामढ़ी स्थान है। परंतु यह स्थान तमसा किनारे नहीं, तमसा से छः सात कोस दूर पूर्व की ओर है। हो सकता है नदी की धारा में इतने दिनों के बाद कुछ परिवर्तन हो गया हो। वहाँ के लोगों में कोई ऐसी जनश्रुति तो प्रचलित नहीं है, किंतु धारा के टेढ़ेमेढ़ेपन से अनुमान लगाया जा सकता है। पर कुछ ऐसे भौगोलिक कारण हैं जिनसे यहाँ सीता के त्याग की बात संदिग्ध हो जाती है। इसका विचार हम वाल्मीकि जी के तीसरे आश्रम की चर्चा के समय करेंगे।

**द्वितीय आश्रम**—ऐसा अनुमान होता है कि या तो वाल्मीकि के कई आश्रम रहे हों या समयानुसार वे आश्रमों का परिवर्तन करते रहे हों। बात जो हो, किंतु उनके दूसरे, और शायद उपर्युक्त तमसा के पासवाले आश्रम के पहले के, एक और आश्रम का पता हमें वाल्मीकि रामायण से लगता है जो कहीं चित्रकूट आश्रम के आसपास था। रामचंद्र जी को वनवास हो चुका है और वे लक्ष्मण और सीता के साथ शृंगवेरपुर से गंगा पारकर प्रयाग में भरद्वाज-आश्रम पहुँचे हैं। महर्षि भरद्वाज ने उनका आदर-सत्कार कर उनसे वनवास की अवधि तक अपने पास प्रयाग में ही ठहरने का आग्रह किया; परंतु राम ने अयोध्या के समीप होने और अवधवासियों के यहाँ सहज ही आते-जाते रहने की शंका के कारण वहाँ रहना उचित नहीं समझा और अन्य कोई समुचित स्थान बतलाने की प्रार्थना की। इसके उत्तर में महर्षि ने कहा—

दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन्निवत्स्यसि। महर्षिसेवितः पुण्यः सर्वतः सुखदर्शनः ॥
गोलाङ्गूलानुचरितो वानरर्क्षनिषेवितः। चित्रकूट इति ख्यातो गन्धमादनसंनिभः ॥
(२।५४।२८,२६)

अर्थात् यहाँ से दस कोस की दूरी पर ऋषियों से सेवित एक पर्वत (का आरंभ होता) है[1] जहाँ लंगूर, बंदर, रीछ आदि घूमा करते हैं। अनेक वन्य जीवों

१—इस दस कोस की दूरी और भरद्वाज-आश्रम और प्रयाग संगम तथा चित्रकूट के बीच की वर्तमान दूरी को लेकर आजकल कुछ विद्वान् संगम की वर्तमान स्थिति को संदिग्ध मानते हैं। प्रथम तो आजकल के कोस से उस समय के कोस को मैं बड़ा ही मानता हूँ। दूसरे चित्रकूट की १० कोस की दूरी से मतलब उस स्थान से नहीं है जहाँ रामचंद्रजी ने कामदगिरि पर निवास किया था, बल्कि वहाँ अभिप्राय है चित्रकूट पर्वत के शिखरों के आरंभ-स्थल की दूरी से। इस समय भी यमुना के उस पार प्रयाग से बारह-पंद्रह मीलों के बाद चित्रकूट पर्वत के शिखरों का आरंभ हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


से युक्त गंधमादन के समान सुंदर चित्रकूट पर्वत है, वहाँ आप निवास करें। यमुना के उस पार प्रयाग से दस-बारह कोस पर आज भी एक घने जंगल के बीच एक पहाड़ी है जिसे 'ऋषिपन' कहते हैं। यह ऋषिपन स्थान वर्तमान वाल्मीकि पहाड़ी से कुछ इधर ही है और यहीं से ऋषि-आश्रम आरंभ होता है। वहाँ इस समय भी जंगली जानवरों की अधिकता है और प्रायः रात में वहाँ लोग नहीं ठहरते।

प्रयाग-माहात्म्य में दो वटों का वर्णन मिलता है—एक श्वेतातपत्र और दूसरा नीलातपत्र। श्वेतातपत्र वट तो प्रयाग में ही था जहाँ आजकल अक्षयवट बतलाते हैं; और दूसरा नीलातपत्र यमुना के उस पार, जहाँ आजकल अमिलियन का मेला लगता है उससे इधर ही कहीं था। रामचंद्र जी ने यमुना को वर्तमान तिल्हापुर से इधर ही कहीं कर्मा के आसपास पार किया था और उस पार उन्हें वह श्यामवट मिला था। उसके आगे ही ऋषिपन स्थान है। किंतु रामचंद्र जी वट से भी आगे यमुना के किनारे-किनारे चलते गए। आगे नदी के किनारे समान भूमि पर उन्होंने पहली रात बिताई। यहीं से 'चित्रकूटमिमंपश्य' कहकर रामचंद्र जी ने लक्ष्मण से चित्रकूट का संकेत किया। दूसरे दिन यमुना-स्नान कर वन और पर्वत की शोभा देखते हुए चित्रकूट पर्वत के उस भाग में पहुँचे जहाँ वाल्मीकि मुनि का आश्रम था। इस आश्रमवाले भाग को वाल्मीकि रामायण में चित्रकूट ही कहा गया है। वह आश्रम का भाग बहुत मनोहर था। वहाँ अनेक प्रकार के पक्षी कलरव करते थे। कंद-मूल-फल की बहुतायत थी; सुंदर जल के कुंड थे। वृक्ष और लताएँ फल-फूल-मूलों से परिपूर्ण थीं। उसकी रमणीयता से प्रसन्न हो रामचंद्र जी कहने लगे कि यहाँ ऋषि-मुनियों के निवास के समीप हमारा समय अच्छी तरह कट जायगा।

इस प्रकार निश्चय कर श्री रामचंद्र लक्ष्मण और सीता सहित हाथ जोड़े हुए वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचे और उन्हें अभिवादन किया—

इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृतांजलिः।
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन्॥ (२।५६।१७)

धर्मात्मा महर्षि वाल्मीकि ने इन्हें देखकर प्रसन्नता प्रकट की और इनका पूजन कर आसन दे स्वागत किया। इसके बाद रामचंद्र जी ने महर्षियों को अपना तथा लक्ष्मण और सीता का परिचय देकर वनवासादि का कारण बताया। यहाँ महर्षि से


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विशेष बातचीत का उल्लेख नहीं हैं। यों तो किसी प्रतिष्ठित अतिथि के आने पर प्रसन्नता सभी को होती है, परंतु इस प्रसन्नता का एक और भी कारण हो सकता है। इसका उद्घाटन उत्तरकांड में होता है। वहाँ सीता जी का त्याग करते समय लक्ष्मण ने सीता से कहा है कि मुनिपुंगव वाल्मीकि जी मेरे पिता महाराज दशरथ के परम सखा हैं। वहाँ उनकी सेवा करती हुई तुम सुख से रहना—

तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम् ॥
पुण्यञ्च रमणीयञ्च मा विषादं कृथाः शुभे ।
राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनिपुंगवः ॥
सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः ।
पादच्छायामुपागम्य सुखमस्य महात्मनः ।
उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे ॥ (७।४७।१५-१७)

अतएव सखा-पुत्रों को देख महर्षि का प्रसन्न होना स्वाभाविक था।[२]

अस्तु, राम ने वहीं पर कुटी बनाने के लिये लक्ष्मण को आज्ञा दी और कुटी तैयार होने पर वास्तुपूजा कर सबने उसमें प्रवेश किया। यहाँ पर एक नदी में स्नान करने का भी उल्लेख हैं और आगे चलकर उसका नाम माल्यवती कहा गया है—

सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीञ्च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम् ।
ननन्द रामो मृगपक्षिजुष्टां जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात् ॥ (२।५६।३२)

यह विचारणीय है कि यहाँ चित्रकूट की मंदाकिनी या पयस्विनी नदी की चर्चा नहीं आई। परंतु जहाँ महात्मा भरद्वाज ने भरत को रामचंद्र जी का पता बतलाया है, वहाँ साढ़े तीन योजन की दूरी* (राम से दस कोस की दूरी और इनसे चौदह कोस की दूरी) और पर्वत से उत्तर की ओर बहनेवाली मंदा-

---

२—आश्चर्य है कि राम के मिलने पर न तो राम के द्वारा और न महर्षि के द्वारा इसका रहस्योद्घाटन हुआ; और न वाल्मीकि रामायण में राम और वाल्मीकि के किसी विशेष वार्तालाप का ही वर्णन आया। हाँ, तुलसीकृत रामायण में इसकी कसर पूरी की गई है।

* अर्धतृतीयेषु योजनेषु (२।६२।१०) का अर्थ राम-तिलक के अनुसार 'साढ़े तीन योजन पर' नहीं, प्रत्युत 'ढाई योजन पर' (सार्धयोजनद्वयेऽतीते इत्यर्थः) अर्थात् 'दस कोस पर' ही है। —सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किनी नदी का भी उल्लेख किया है। भरत जी जब चित्रकूट पहुँचे हैं, तब भी मंदाकिनी का उल्लेख हुआ है। भरत के आगमन के कुछ समय पहले रामचंद्र जी ने चित्रकूट के दर्शनीय दृश्यों को दिखलाते हुए भी मंदाकिनी का नाम लिया है, और उसकी ओर संकेत कर देखने के लिये कहा है। संभव यह प्रतीत होता है कि रामचंद्र जी ने वाल्मीकि-आश्रम के पास कुटी बनाई (प्रयाग से उस समय के दस कोस पर) और फिर कुछ दिनों के बाद वहाँ से पश्चिम-दक्षिण छः या सात (उस समय के चार कोस) अर्थात् प्रयाग से चौदह कोस पर कामदगिरि में वासार्थ गए। यदि भरत से मिलने के समय राम वाल्मीकि-आश्रम के पास होते तो वे स्वयं अथवा वसिष्ठादि उनसे मिलने अवश्य जाते। राम ने जब पिता की मृत्यु सुनने के बाद उन्हें जलांजलि दी, तब भी माल्यवती नहीं मंदाकिनी का उल्लेख है। भरत जी के महर्षि वाल्मीकि से मिलने का उल्लेख न तो चित्रकूट जाते समय और न लौटते समय हुआ। इससे जान पड़ता है उस समय वाल्मीकि का आश्रम राम-निवास के चित्रकूट से कुछ दूर ही था। प्रयाग से दो दिन में जिस वाल्मीकि-आश्रम में राम पहुँचे थे वह पहाड़ी राजापुर से दक्षिण कुछ पूर्व लिए पाँच-छः कोस पर इस समय भी 'वाल्मीकि पहाड़ी' नाम से प्रसिद्ध है। यात्री लोग वहाँ जाते-आते रहते हैं। वहाँ एक नदी भी है, जिसे इस समय वाल्मीकि नदी कहते हैं। ज्ञान पड़ता है वाल्मीकि रामायण में इसी का नाम माल्यवती लिखा है। इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि का यह दूसरा स्थान चित्रकूट पर्वत श्रेणी में चित्रकूट कामदगिरि से पूर्वोत्तर भाग में पाँच-छः कोस पर और राजापुर से दक्षिण-पूर्व पाँच-छः कोस पर विद्यमान हैं।

**तृतीय आश्रम**—एक तीसरा वाल्मिकि-आश्रम कानपुर से पश्चिम ब्रह्मावर्त बिठूर के पास गंगा-किनारे कहा जाता है। श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने भी नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के तिरपनवें वर्ष के तीसरे-चौथे अंक में इसका वर्णन किया है। पृष्ठ २४० में लिखा है, "वाल्मीकि—इनका आश्रम कानपुर के समीप बिठूर में था। सीता वनवास के समय यहीं रहीं और यहीं लव-कुश का जन्म हुआ। वाल्मीकि द्वारा रामायण-प्रणयन यहीं हुआ बताया जाता है।" हमें भी यह कथन सयुक्तिक जान पड़ता है। यद्यपि सीता का परित्याग करते समय श्री रामचंद्र ने लक्ष्मण से कहा था कि तमसा के तीर वाल्मीकि का आश्रम है, उसी निर्जन वन में सीता को छोड़ आओ, पर सीता का परित्याग करते समय तमसा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसके सिवा कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह असिद्ध होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कि सीता का परित्याग वाल्मीकि के तमसातीर वाले आश्रम के पास हुआ था। जान पड़ता है अयोध्या से चलते समय लक्ष्मण को यह पता लग गया होगा कि महर्षि आजकल तमसा-तीर वाले आश्रम में नहीं, बल्कि ब्रह्मावर्त के पास के आश्रम में विराजते हैं। लक्ष्मण सीता को रथ में बैठाकर प्रातःकाल अयोध्या से चले थे। पहली रात उन्होंने गोमती-तीर के आश्रम में बिताई थी। दूसरे दिन सबेरे उन्होंने सुमंत से कहा था कि शीघ्र रथ जोतिए, मैं आज भागीरथी के जल को शिर पर धारण करना चाहता हूँ। इस प्रकार वे दोपहर तक गंगा-किनारे पहुँच गए थे। यदि तमसा-तीर के आश्रम की ओर वे जाते तो सुलतानपुर के पास कहीं गोमती पार होते। यहाँ से तमसा-तीर का आश्रम लगभग ६० मील दूर पड़ता। एक गर्भवती स्त्री को बैठाकर रथ से दोपहर तक वहाँ पहुँचना, संभव नहीं जान पड़ता। यदि लक्ष्मण ने कहीं लखनऊ के पास गोमती को पार किया हो तो बिठूर पहुँचने में उन्हें लगभग ५० मील चलना पड़ा होगा। अतएव यही संभव प्रतीत होता है कि लक्ष्मण ने नाव में बैठाकर सीता को गंगा के उस पार कर परित्याग की आज्ञा सुनाई और फिर गंगा पारकर वहाँ पहुँचे जहाँ उनका रथ लिए सुमंत प्रतीक्षा कर रहे थे। सीता जी को रोती-विलखती देख ऋषिकुमारों ने महर्षि वाल्मीकि को सूचना दी और वे सांत्वना दे सीता को अपने आश्रम ले गए। आश्रम के पास जहाँ मुनिपत्नियाँ रहती थीं वहाँ ले जाकर ऋषि ने सीता को उन्हें सौंपा और उन्हें सुखपूर्वक रखने की बात समझाकर अपने आश्रम को लौट आए। ऋषिपत्नियों ने सीता के साथ वाल्मीकि जी के पहुँचने पर कहा था कि हे मुनिश्रेष्ठ, आपका स्वागत हो। इस बार हम लोगों को बहुत दिनों बाद आपके दर्शन मिले। हम सब आपको प्रणाम करती हैं। आज्ञा दीजिए, हम क्या करें?

स्वागतं हे मुनिश्रेष्ठ चिरस्यागमनं च ते।
अभिवादयामस्त्वां सर्वा उच्यतां किं च कुर्महे॥

(७।४६।१५)

इससे जान पड़ता है इस आश्रम में ऋषि बहुत अधिक नहीं रहते थे और कुछ दिन पहले ही वहाँ पहुँचे थे। इस वर्णन-प्रसंग में कहीं तमसा का उल्लेख नहीं आया। लौटती बार लक्ष्मण जी ने किसी केशिनी नगरी या केशिनी नदी के किनारे रात बिताई थी। इस केशिनी का पता लगने से इसका रहस्य और भी खुल सकता है। हो सकता है कि सई नदी का नाम केशिनी रहा हो। तब तो उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रायबरेली जिले या उन्नाव जिले से प्रयाण किया होगा, और वह मार्ग बिठूर का ही हो सकता है।

एक और घटना का वर्णन वाल्मीकि रामायण में मिलता है। उससे भी यही विदित होता है कि बिठूरवाले आश्रम के पास ही सीता जी ने परित्याग-अवस्था का समय बिताया होगा। सीता-परित्याग के कुछ दिनों बाद मथुरा के पास के च्यवन आदि ऋषियों का एक दल रामचंद्र जी से मिला और मधु राक्षस के पुत्र लवणासुर के अत्याचारों का वर्णन कर उसे मारने की प्रार्थना की। उनकी बात मानकर रामचंद्र जी ने यह कार्य शत्रुघ्न जी को सौंपा और नारायणास्त्र तथा एक अच्छी सेना, चार हजार घोड़े, दो हजार रथ और सौ हाथी, दूकानें, बाजार, नट नर्तक, सामान आदि उन्हें देकर ऋषियों के साथ विदा किया। उन्हें आदेश था कि ग्रीष्म ऋतु समाप्त होने पर वर्षा के आरंभ में लवणासुर को मारना उचित होगा (७।६४।१०)। शत्रुघ्न जी ने सेना को पड़ाव आदि का आदेश देकर ग्रीष्म के अंत में (वर्षा के पहले) गंगा पार करने की आज्ञा दी (७।६४।११) और वे स्वयं एक महीने बाद अकेले वहाँ से प्रस्थान कर मार्ग में दो रात बिता तीसरे दिन वाल्मीकि आश्रम में जा पहुँचे (७।६५।१-२)। जिस रात शत्रुघ्न जी वाल्मीकि-आश्रम में ठहरे, उसी रात सीता जी के दो पुत्र कुश और लव उत्पन्न हुए थे। शत्रुघ्न जी भी आधी रात के समय सीता की पर्णशाला तक गए औ उनसे कहा—यह बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम्हारे पुत्र हुए। उस समय संभवतः श्रावण मास का आरंभ था—

> तदा तस्य प्रहृष्टस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः।
> व्यतीता वार्षिकी रात्रिः श्रावणी लघु विक्रमा॥ (७।६७।१३)

इसके बाद शत्रुघ्न जी पश्चिम दिशा की ओर चलकर सात रात मार्ग में बिता पुण्य-कर्मा च्यवनादि ऋषियों के यमुना-पार के आश्रम में पहुँचे।

अब सोचने की बात है कि अयोध्या से मथुरा जाने के लिये शत्रुघ्न जी कौन सा मार्ग चुन सकते थे। अयोध्या से बनकट पूर्व-दक्षिण दिशा में लगभग सवा सौ मील पर है और बिठूर दक्षिण-पश्चिम सौ मील के लगभग पड़ता है। बनकट से बिठूर लगभग पौने दो सौ मील पड़ेगा। बिना कारण इतना लंबा मार्ग वर्षा के आरंभ समय में नहीं चुना जा सकता। इसके सिवा बनकट के मार्ग से मथुरा पहुँचने में यमुना के दक्षिणी किनारे-किनारे जाना पड़ता और तमसा, वाल्मीकि, पयस्विनी, बागमती, धसान, केन, चंबल आदि कितनी ही नदियाँ पार करनी पड़तीं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किंतु बिठूर से होकर वे गंगा और यमुना के बीच के मार्ग से बिना किसी नदी पहाड़ का सामना किए मथुरा के पास यमुना-किनारे पहुँच सकते थे। अयोध्या से यों प्रायः सौ मील का मार्ग बिठूर तक पूरा कर दो सौ मील और चलकर मथुरा पहुँचा जा सकता है। हुआ भी यही; दो रात बिता तीसरे दिन शत्रुघ्न जी वाल्मीकि-आश्रम पहुँचे और सात रात बिता मथुरा पहुँच गए। राम से लवण-वध की प्रार्थना करनेवाले च्यवन आदि ऋषियों का आश्रम यमुना के उस पार था। इसलिये शत्रुघ्न जी ऋषियों से मिलने के लिये यमुना पारकर तब मथुरा के फाटक तक पहुँचे थे—

एतस्मिन्नन्तरे वीर उत्तीर्य यमुनां नदीम्।
तीर्त्वा मधुपुरद्वारि धनुष्पाणिरतिष्ठत ॥ (७।६८।३)

यदि बनकट वाले आश्रम से उन्हें मथुरा जाना पड़ता तो फिर उन्हें यमुना पार करने की आवश्यकता न पड़ती; क्योंकि बनकट के यमुना-संगम से पूर्व में होने के कारण गंगा पार होनेपर पश्चिम की ओर चलकर यमुना के दक्षिणी तट से ही चलते हुए उन्हें मधुपुरी मिल जाती। इसलिये यही अनुमान उचित प्रतीत होता है कि सीता जी का वनवास वाल्मीकि जी के बिठूरवाले आश्रम में ही बीता था।

इतना ही नहीं। शत्रुघ्न जी ने लवणासुर को श्रावण मास में ही मारकर उसी महीने में वहाँ अपना राज्य प्रतिष्ठित किया। बारह वर्ष बीतने पर उन्होंने इच्छा की कि अब चलकर रामचंद्र जी का दर्शन करना चाहिए। तब फिर पूर्व की भाँति सात-आठ दिन चलकर शत्रुघ्न जी वाल्मीकि-आश्रम पहुँचे (७।७१।१,२)। रात में उन्होंने सीता के बालकों को वीणा के स्वर में रामचरित गाते हुए सुना (७।७१।१४-१६)। अस्तु, यही निश्चित जान पड़ता है कि उस समय अयोध्या से मथुरा जाने के लिये बिठूर होकर ही उचित मार्ग था। वह मार्ग बनकट या तमसा-तीर होकर कभी हो नहीं सकता। अतः यह भी निश्चित है कि सीता जी ने अपने वनवास का समय वाल्मीकि जी के बिठूरवाले आश्रम में ही बिताया था।

इस प्रकार उस समय वाल्मीकि ऋषि के तीन आश्रम रहे होंगे—एक तमसा और गंगा के संगम के निकट; दूसरा यमुना के दक्षिणी किनारे चित्रकूट के समीप; और तीसरा गंगा के दक्षिणी किनारे पर बिठूर के पास।

—जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भूषण का रचनाकाल

भूषण का जन्मकाल जो 'शिवसिंहसरोज' में दिया गया है वह १७३८ है। 'शिवभूषण' के निर्माणकाल का जो दोहा मिलता है उसमें १७३० संवत् दिया गया है। जनश्रुति के अनुसार 'शिवाबावनी' पहले बनी और 'शिवभूषण' बाद में। 'शिवाबावनी' में संवत् १७३० के बाद की घटनाएँ हैं इसलिये शिवभूषण के निर्माणकाल को श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित जाली मानते हैं। शिवभूषण के निर्माण-काल का दोहा हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की 'खोज की रिपोर्ट' (सन् १६२३) में दिया हुआ है। इसमें दो प्रतियों के विवरण हैं। एक तो वही प्रति है जिसके आधार पर श्री मिश्रबंधु महोदयों ने अपनी भूषण-ग्रंथावली संपादित की और दूसरी अन्यत्र की। काशिराज के पुस्तकालय में जो शिवभूषण है उसमें भी यह दोहा है, पर पाठ में अंतर है। अभी हाल में मुझे एक प्रति स्वर्गीय वैद्यराज पंडित चुन्नीलाल जी के संग्रह से श्री लक्ष्मीशंकर जी व्यास द्वारा मिली है जो प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन है। इसका लिपिकाल १८१८ है। इसमें वह दोहा उपस्थित हैं। पाठ वही है जो काशिराज के पुस्तकालय वाली प्रति में है। गोविंद गिल्ला भाई के पास एक प्रति थी जिसका हवाला उन्होंने अपने गुजराती 'शिवराजशतक' में दिया है। उसमें भी यह दोहा मिलता है। इस प्रकार दोहा जाली नहीं। अतः 'शिवभूषण' का निर्माणकाल संवत् १७३० निःसंदिग्ध है।

अब 'शिवसिंह सरोज' में दिए जन्मकाल को देखिए। हिंदी के ऐतिहासिकों को 'शिवसिंह सरोज' के संबंध में बहुत बड़ा धोखा हुआ है। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उसमें कवियों का कविताकाल दिया गया है, जन्मकाल नहीं। स्वयं शिवसिंह जी ने अपनी भूमिका में स्पष्ट लिखा है—"फिर कवियों का एक सूचीपत्र बनाकर उनके ग्रंथ, उनके विद्यमान होने के सन्-संवत् और उनके जीवन-चरित्र; जहाँ तक प्रकट हुए लिखे।" ये सन्-संवत् लिए कहाँ से गए, इसका भी उल्लेख है। "जिन कवियों के ग्रंथ मैंने पाए उनके सन्-संवत् बहुत ठीक ठीक लिखे हैं और जिनके ग्रंथ नहीं मिले उनके सन्-संवत् हमने अटकल से लिख दिए हैं।" भूषण का इन्हें कोई ग्रंथ नहीं मिला। ये साफ लिखते हैं—"इनके बनाए हुए ग्रंथ शिवराजभूषण, भूषणहजारा, भूषणउल्लास, दूषणउल्लास ये चार सुने जाते हैं।' फिर यह १७३८ इन्होंने किस अटकल से लिखा? शंभुनाथ सुलंकी और मतिराम को इन्होंने मित्र लिखा है और दोनों के सं० १७३८ हैं। भूषण और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मतिराम को भाई माना है, अतः मतिराम का १७३८ संवत् यहाँ भी रख दिया गया है। रही यह बात कि शिवसिंहसरोज में 'में उत्पन्न हुए' क्यों छपा है। इसका उत्तर यह है कि ग्रंथ छापते समय छापनेवालों या उसके संपादन की यह करतूत है। ह० लि० हिंदी ग्रंथों की खोज की रिपोर्ट ( सन् १६२३ ) में 'शिवसिंहसरोज' की हस्तलिखित प्रति का जो विवरण दिया गया है उसमें 'उ०' ( 'में उत्पन्न हुए' का संक्षेप ) किसी कवि के नाम के साथ नहीं है। शिवसिंहसरोज के इन सन्-संवतों के जन्मकाल मानकर डाक्टर ग्रियर्सन, श्री मिश्रबंधु महोदय, आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि सभी साहित्य के इतिहास-लेखकों को धोखा खाना पड़ा है और जहाँ उन्हें अन्य साधनों से कवि का समय मिला है वहाँ परेशानी भी बढ़ी है। अंत में कहीं कहीं, विशेषतः श्री मिश्रबंधुओं ने, यह भी लिखा है कि शिवसिंह-सरोज के सन्-संवतों को कविताकाल स्वीकृत करने पर साहित्य के इतिहासों में बहुत कुछ उलट-फेर होगा, और इसके सिवा कोई चारा नहीं है।

'शिवाबावनी' को लीजिए। इसे 'शिवभूषण' से पहले की रचना मानना बहुत बड़ा भ्रम है। 'शिवाबावनी' और 'छत्रसालदशक' नाम के संग्रह स्वयं भूषण किए क्या प्राचीन काल के संग्रह तक नहीं हैं। संवत् १६४६ में सबसे पहले गोवर्धनदास लक्ष्मीदास ने कच्छभुज से ये दोनों संग्रह प्रकाशित किए हैं। इसे वे स्वयं स्वीकार करते हैं—

"कोई कोई रसिक लोगों के पास सें एकाधे कवित्त का पता मिलें वहाँ जाय लिख लेना जारी रख थोडे कवित्त जमा किए थे. बाद भगवत्संकल्प ऐसा ही हुआ की, प्रतापी भूषण कविराज के श्रम का नाश न होना और उन्होंने बनाई हुई क़विता का पुनर्जन्म या जीर्णोद्धार होना वास्ते निमित्त रसिक सारस्वत व्यास हरीराम सूर जी और मित्रवर्य रा० रा० काशीनाथ पांडुरंग परब ईन महाशयों ने यह ग्रंथ प्रसिद्ध करने का मुजे उत्तेजन दिया उसपर सें मुजे हिम्मत हुआ मैनें बहुत सा शोध करने में कुछ कवित्त जमा हुए और जिस ग्रंथ का नाम हम उपर लिख गए हैं वो सिवराजभुखण संपूर्ण ग्रंथ भी हाथ आया बाद भासा काव्य में परिपूर्ण पेहेलवान् मिसिर श्री गुरुप्रसाद जी भवानीप्रसाद जी इन्होंने कवित्तों की और इस ग्रंथ कों सोधने कीं वहोत-सी मदद करने सें यह अपूर्व काव्य शिवाबावनी ग्रंथ खडा हुआ. जो यह कृपापूर्वक श्रम न लेते तो ईस सहर में यह ग्रंथ खडा न होता. इस ग्रंथ में शिवाजी महाराज छत्रपती के युद्ध प्रसंग के चुने हुए ५२ कवित्त रखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


गए हैं. और महाराजा छत्रसाल पन्नानरेस के इसी कविराज भूखण के बनाये हुए १२ कवित्त रखे हैं और कुछ छुट काव्य भी रखी है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि सं० १९४६ के पूर्व न तो 'शिवाबावनी' का पता था और न 'छत्रसालदशक' का। इन संग्रहों की कोई हस्तलिखित प्रति भी तो आज तक नहीं मिली या सुनी गई। इस प्रकार भूषण का प्रामाणिक रचनाकाल सं० १७३० ही है, क्योंकि यही उनके 'शिवभूषण' के समाप्त होने का संवत् है।

—विश्वनाथप्रसाद मिश्र



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चयन

## जैसलमेर का जिनभद्र ज्ञानभंडार

जैसलमेर के बहुत प्राचीन जैन-ग्रंथ-संग्रह 'जिनभद्र ज्ञानभंडार' का डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल लिखित परिचय जो दिल्ली के "हिंदुस्तान" ( हिंदी ) पत्र में प्रकाशित हुआ था, ज्ञानपिपासुओं के लिये उसकी उपयोगिता और महत्त्व की दृष्टि से यहाँ उद्धृत है—

जैसलमेर के 'जिनभद्र ज्ञानभंडार' से हस्तलिखित पुस्तकों का एक भंडार अभी हाल ही में प्रकाश में आया है । इस भंडार की स्थापना पंद्रहवीं शती में हुई थी और उसके बाद से यह जनता के लिये प्रायः बंद ही रहा । अभी हाल में स्वनामधन्य मुनि पुण्यविजयजी के प्रयत्न से यह भंडार खोला गया है और इसके ग्रंथों की सूची बनाई गई है। संरक्षकों की अनुमति से भंडार के विशिष्ट और चुने हुए ग्रंथ माइक्रोफिल्म फोटोग्राफी के लिये दिल्ली लाए गए और वाणिज्य-मंत्रालय की कृपा से ऐडमिनिस्ट्रेटिव इंटेलिजेन्स रूम, क्वींसवे, नई दिल्ली में इनकी माइक्रोफिल्म प्रतिलिपियाँ तैयार हुईं ।

जैसलमेर वापस जाने से पूर्व इनकी एक प्रदर्शनी करने का विचार श्री फतेहचंद्र बेलाणी ( वेलानी ) ने प्रकट किया, जो इन ग्रंथों की कार्य-व्यवस्था के मंत्री हैं। तदनुसार राष्ट्रीय संग्रहालय, गवर्नमेंट हाउस, नई दिल्ली में इनके प्रदर्शन का प्रबंध किया गया और प्रदर्शनी शनिवार २४ फरवरी को १ से ५ बजे तक जनता के लिये खुली रही।

इस भंडार में ४०० ग्रंथ ताड़पत्र पर और एक सहस्र से ऊपर कागज पर लिखे हुए हैं। ये ग्रंथ दसवीं शताब्दी से लेकर पंद्रहवीं शताब्दी तक के हैं। इनमें से अधिकांश ग्रंथ ग्यारहवीं, बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के हैं। ज्ञात होता है कि जिस समय पंद्रहवीं शती में यह भंडार जैसलमेर में स्थापित किया गया उस समय इसके संस्थापक ने गुजरात की तरफ के भंडारों में से कई शताब्दी पहले के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह किया, अथवा यह भी संभव है कि गुजरात ही के किसी प्राचीन भंडार के अधिकांश ग्रंथों को सुरक्षा की दृष्टि से जैसलमेर ले जाकर एक नए भंडार की स्थापना की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अपने देश के सैकड़ों जैन-मंदिरों के साथ लगे हुए सैकड़ों ज्ञानभंडार इस समय भी है। इनमें सुरक्षित ग्रंथों की संख्या लाखों तक पहुँचती है। यह अनमोल सामग्री मंदिरों की कृपा से अभी तक बची रह गई है। इन सबमें भी जैसलमेर के 'जिनभद्र ज्ञानभंडार' को बहुत ही प्राचीन समझना चाहिए। इस भंडार में देश के कुछ सबसे प्राचीन ताड़पत्रीय ग्रंथ पाए गए हैं। सबसे प्राचीन ग्रंथ दसवीं शती का है जिसका नाम 'विशेषावश्यक भाष्य' है। भंडार में जैनों के आगम ग्रंथों का बहुत अच्छा संग्रह है। मूल अर्धमागधी के अन्य ग्रंथ, उनके निर्युक्ति भाष्य और टीकाओं के विशिष्ट हस्तलेख यहाँ मिले हैं जिनके आधार पर अंग साहित्य का संशोधित संस्करण प्रकाशित करने में सुविधा होगी। आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवती सूत्र, भगवती विवाह-प्रज्ञप्ति, ज्ञाता धर्मकथा, उपासक दशांग, विपाकसूत्र राजप्रश्नीय आदि संपूर्ण आगम ग्रंथों की कई कई प्रतियाँ मिली है। इसी प्रकार इन सूत्र-ग्रंथों पर लिखी हुई बृहत्काय निर्युक्ति, चूर्णि एवं भाष्य भी प्राप्त हुए हैं।

किंतु इस ज्ञानभंडार की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सांख्य, मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग आदि भारतीय दर्शन एवं काव्य, अलंकार, छंद, नाटक, आख्यायिका, कथा-साहित्य, कोष, व्याकरण आदि विषयों के भी चुने हुए अनेक ग्रंथ संगृहीत किए गए थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र की भी एक नई प्रति प्राप्त हुई है जिसकी हस्तलिखित प्रति चौदहवीं शती में उतारी गई थी। इससे ज्ञात होता है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र की परंपरा अपने देश में चौथी शती ई० पूर्व से चौदहवीं शती तक चालू रही। आशा है इस टीका के संपादन और प्रकाशन से अर्थशास्त्र की सामग्री पर नया प्रकाश पड़ेगा।

ई० प्रथम शती से लेकर लगभग एक सहस्र ई० तक इस देश में विशाल बौद्ध साहित्य की रचना हुई। उसके कुछ मूल संस्कृत ग्रंथों की प्राप्ति इस भंडार में हुई है। आचार्य दिङ्नाग-कृत 'न्यायप्रवेश' ६४६ ई० का लिखा हुआ मिला। नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य कमलशील लिखित 'तत्त्वसंग्रह' ग्रंथ उनकी पंजिका टीका के साथ बारहवीं शती का लिखा हुआ इस भंडार में मिला है। न्यायप्रवेश ग्रंथ पर जैन पंडित मल्लवादिकृत टिप्पणी भी प्राप्त हुई है।

'सांख्यसप्तति' पर दो नई टीकाएँ प्राप्त हुई हैं (वि० सं० ११७३ और १२०० में लिखित)। हेमचंद्र व्याकरण पर कनकविजयकृत न्यास टीका की लेखक की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



निजी प्रति ( १२७१ वि० सं० ) मिली है। प्रसिद्ध जैन युगप्रधान पंडित श्री जिनदत्त सूरि की निजी प्रति ( बारहवीं शती ) निशीथसूत्रकी भंडार में सुरक्षित है।

प्राचीन कथा-साहित्य विषय के कुछ बहुत अच्छे ग्रंथ भंडार में रखे मिले हैं। जैसे धनपालकृत 'तिलकमंजरी' ( ११३० वि० सं० ), राजा भोजकृत 'श्रृंगार-मंजरी' (ग्यारहवीं शती, अभी तक अज्ञात नया ग्रंथ), उद्योतन सूरिकृत 'कुवलयमाला कहा' ( वि० सं० ११३६ ), सुबंधकृत 'वासवदत्ता' ( वि० सं० १२०७ ), जिन्न-चंद्र सूरिकृत 'संवेग रंगशाला' ( नवीन अप्रकाशित ग्रंथ जिसमें श्रृंगार और वैराग्य-संबंधी कहानियाँ हैं, वि० सं० १२०७ ), 'विलासवती कथा' ( अपभ्रंश भाषा ), हरि-भद्र सूरिकृत 'समराजित कथा' ( प्राकृत, वि० सं० १२५० ), जिनेश्वर सूरि कृत 'निर्वाण लीलावती' ( वि० सं० १२६५ )।

नैषधचरित्र की नारायणी टीका वि० सं० १२५२ में लिखी गई थी, उसके कुछ ही वर्ष बाद की प्रति भंडार में मिली है। न्यायसूत्रों पर वात्स्यायन भाष्य, भारद्वाज-कृत न्यायवार्तिक, उसपर वाचस्पति की न्यायतात्पर्य टीका, उसपर उदयन लिखित न्यायतात्पर्य परिशुद्धि और उसपर श्रीकंठ कृत न्यायटिप्पणक, ये सब ग्रंथ एक ही संग्रह में ताड़पत्र और कागज दोनों पर लिखे मिले हैं, जो तेरहवीं शती वि० में लिखे गए थे।

अभी तक हमारे देश में जो कागज पर लिखे गए प्राचीन ग्रंथ मिले हैं उनमें सबसे प्राचीन 'कर्मग्रंथ टिप्पण' नामक ग्रंथ वि० सं० १२४६ का लिखा हुआ प्राप्त हुआ है। अपने देश में कागज लगभग उसी समय आना शुरू हुआ था।

मध्यकाल में ताड़पत्र हिंदेशिया के द्वीपों से लाया जाता था जिसे 'श्रीताल' कहते थे। भंडार में ३४ इंच लंबे ताड़पत्र मिले हैं और प्रदर्शनी में भी ३४ इंच लंबा ताड़पत्रीय ग्रंथ प्रदर्शित है। प्रत्येक पत्र पर चार से आठ तक पंक्तियाँ सुंदर काली स्याही में ग्यारहवीं, बारहवीं शती की देवनागरी लिपि में लिखी हुई हैं।

## राजभाषा-परिषद् का अध्यक्षीय भाषण

गत १० मार्च को दिल्ली में आयोजित राजभाषा-परिषद् के अध्यक्ष पद से दिए गए श्री ग०वा० मावलंकर ( भारतीय संसद् के अध्यक्ष ) के भाषण का मुख्य अंश राजभाषा हिंदी के निर्माताओं के विचारार्थ यहाँ उद्धृत है—

भारतीय संविधान के ३४३ अनुच्छेद ने निश्चय किया है कि भारतीय संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी और अनुच्छेद ३५१ ने ऐसा आदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दिया है कि हिंदी भाषा का प्रसार और उसका विकास करना संघ का कर्तव्य होगा।

भारत के स्वतंत्र होने पर यह तो साफ बात है कि भारत का सारा व्यवहार अब अंग्रेजी में नहीं चल सकता, क्योंकि लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनने से यह आवश्यक हो गया है कि हमारा सारा व्यवहार ऐसी भाषा में होना चाहिए जिसे आम लोग समझ सकें। वर्षों से प्रचलित प्रथा को यदि हम जल्द से जल्द बदलने की कोशिश न करें तो इस संविधान का उद्देश्य यानी स्वतंत्रता की प्राप्ति हम बहुत समय तक नहीं कर सकेंगे। इसलिये राजभाषा हिंदी का भारत के सब प्रांतों में प्रचार करना, इसको हरएक व्यवहार में दाखिल करना और इसका विकास करना, हमारा कर्तव्य है।

वह हिंदी कैसी हो, इस संबंध में संविधान के अनुच्छेद ३५१ में कहा है कि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी तथा अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिये मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित हो। अष्टम अनुसूची में हिंदी के अतिरिक्त असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तामिल, तेलेगु, पंजाबी, बंगला, मराठी, मलयालम और संस्कृत भाषाओं का उल्लेख है। संविधान के इस अनुच्छेद में राजभाषा हिंदी का स्वरूप कैसा होना चाहिए, इसका चित्र दिया है और इसमें इस भाषा का क्षेत्र और उसकी मर्यादा भी दी हुई है।

इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है और यह भारतीय जीवन के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हरएक प्रकार के हरएक पहलू में पहुँच जाती है और इसकी मर्यादाएँ ये हैं—

१—भारत के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संपूर्ण तत्त्वों की अभिव्यक्ति का वह माध्यम हो सके।

२—भारत में प्रचलित अन्य भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करे।

ऐसी अखिल-भारतीय स्वरूप की भाषा बनाने में, उसके शब्द-भंडार के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहां मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः दूसरी अन्य प्रांतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की स्वतंत्रता दी गई हो।

किसी भी भाषा का विकास करने के लिये उसमें शास्त्रीय दृष्टि और शास्त्रीय पद्धति रखना आवश्यक है। परंतु साथ ही साथ यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि आम जनता जिस भाषा को समझ सकेगी, वही भाषा आखिर में लोकभाषा बनेगी। इसलिये शास्त्रीय दृष्टि और पद्धति रखते हुए भी यह ध्यान में रखना जरूरी है कि आम जनता किस प्रकार के शब्दों को ग्रहण कर सकेगी। विद्यमान प्रांतीय भाषाओं का इतिहास आप सभी जानते हैं। उन सारी भाषाओं की माता संस्कृत ही है। परंतु व्याकरण-शुद्ध संस्कृत भाषा सामान्य लोग चूँकि बोल नहीं सके और न बराबर लिख सके, इस कारण प्राकृत यानी जनपद की भाषा का निर्माण हुआ और संस्कृत का यह एक प्रकार का भ्रष्ट रूप था। इस प्राकृत में अनेक प्रकार की अदला-बदली अलग अलग प्रांतों में अलग अलग प्रकार से हुई जिससे अनेक प्रकार की प्राकृत भाषाएँ अलग अलग प्रांतों में प्रचलित हुईं और आगे चलकर ऐसी भाषाओं से विद्यमान प्रांतीय भाषाओं का जन्म हुआ। भाषाओं का यह इतिहास ध्यान में रखते हुए, चाहे राजभाषा का स्वरूप जनपद की भाषा का रखना हो, अथवा संस्कृतमय रूप रखना हो, यह बात ध्यान में रखनी होगी कि भारत की अन्य प्रचलित भाषाएँ जिस स्वरूप में आज बोली जा रही है, उस स्वरूप को ध्यान में लेकर राजभाषा के शब्दभंडार को बनाना आवश्यक होगा। केवल शास्त्रीय दृष्टि से या शास्त्रीय पद्धति से चाहे कितनी शुद्ध हिंदी हो, मुझे भय है कि ऐसी शुद्ध संस्कृतमय हिंदी केवल पंडितों की पुस्तकों में अथवा सरकार के कानूनों में पड़ी रहेगी और लोकभाषा का प्रवाह अपने निजी ढंग पर चलता रहेगा, वह इससे प्रभावित न हो सकेगी।

मेरे कहने का यह मतलब नहीं है कि हम भाषा में शास्त्रीय शुद्धि का प्रयत्न न करें। उसका तो हम प्रयत्न अवश्य करें और धीरे-धीरे जैसे जैसे लोग इसके शब्द-भंडार को समझेंगे, तैसे तैसे इसमें समय समय पर तबदीली होती जायगी। भाषा को बढ़ाने का विचार मान्य होते हुए भी पहले तो अंग्रेजी भाषा को हटाने का विचार अधिक महत्त्व का है। ऐसा विचार करने में हमारे मन में अंग्रेजी के लिये कोई विरोध या द्वेष का भाव नहीं है, लेकिन अपनी आत्मीयता हम तभी स्थापित कर सकेंगे जब हम अपने सभी आवश्यक व्यवहार में इस भाषा की जगह अपनी भाषा को स्थापित कर सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हमारा तो काम आज अंग्रेजी भाषा की जगह अपनी भाषा को दाखिल करना है। और जो कुछ हम इस दिशा में प्रयत्न करेंगे उससे अगले १०-१५ वर्ष में भाषा का अवश्य विकास होगा। आज जो भाषा हम बनाएँ, उसमें जो भी शब्द हम रखें उसमें आगे चलकर हम आवश्यक हेरफेर कर सकते हैं। हमारे ही देश में क्या, अन्य देशों में भी भाषा सदा एक तरह से नहीं रहती है, उसमें सदैव परिवर्तन होते रहते हैं और इसी प्रकार से हम हिंदी का भी विकास कर सकेंगे।

हम जिस प्रकार की हिंदी चाहते हैं उसमें शास्त्रीय और शुद्ध हिंदी रखने का हम अवश्य प्रयत्न करेंगे, और शब्द-भंडार को समृद्ध करने के लिये जहाँ हमको आवश्यक या वांछनीय प्रतीत होगा वहाँ हम संस्कृत के शब्द भी अवश्य लेंगे। लेकिन ऊपर मैंने जो खास बात भाषा के स्वरूप के बारे में कही, उसको ध्यान में रखना चाहिए। आज की संसार की और भारत की स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक है कि हम सब संगठित रहें, आपसी मेल-जोल से रहें और हमारे बीच कम से कम झगड़े हों और हम एक दूसरे का विश्वास और सहयोग प्राप्त कर सकें। भाषा की शुद्धि या शास्त्रीय दृष्टि का परिपोषण चाहे इसमें कम हो, तो भी ऐसी कमी से कुछ देश को या देश की संस्कृति को हानि नहीं पहुँचेगी, परंतु देश में यदि पारस्परिक सहयोग और विश्वास न हो तो न मालूम भविष्य में हमारी स्थिति क्या होगी। इस उद्देश्य को सामने रखते हुए और आज की परिस्थिति में अच्छी तरह से सोच समझ कर हमें भाषा का स्वरूप निश्चित करना चाहिए, और ऐसा करते समय कई बातों का ख्याल रखना चाहिए। इसको मैं थोड़े उदाहरण देकर बतलाऊँगा।

पहली बात तो यथार्थ में धार्मिक न होते हुए भी धर्म के नाम पर आज तक हमारी कमनसीबी के कारण इस देश में सांप्रदायिक झगड़े हुए और आखिर में इतनी हद तक ये चले कि देश का विभाजन हुआ। इस बारे में मैं अधिक नहीं कहना चाहता, सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि संस्कृत के प्रति भारतीय मुसलमानों का और उर्दू तथा अरबी के प्रति भारतीय हिंदुओं का विरोध-भाव धर्म के कारण भी है। दूसरी बात राजनीतिक स्वरूप की है कि सभी अहिंदी भाषा-भाषियों के मन में कुछ ऐसा संदेह है कि हिंदी भाषा-भाषी प्रांतवाले उनके ऊपर अपनी हुकूमत चलाना चाहते हैं। तीसरी बात यह है कि प्रांतीय भाषावालों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कुछ ऐसा लगता है कि हिंदी को स्थापित करने में उनकी जो अपनी प्रांतीय भाषाएँ हैं, उनको हटानेका प्रयत्न चल रहा है।

इस प्रकार की भिन्न भिन्न मान्यताओं की वास्तविकता में कुछ आधार है, ऐसा मैं नहीं कहना चाहता, लेकिन हम यह बात नहीं भुला सकते कि ऐसा भय और संशय लोगों के दिलों में है। उस भय और संशय को हटाना हमारा कर्तव्य है।

साथ ही साथ हिंदी भाषा का स्वरूप निश्चित करने में हम विद्यमान हिंदी में ऐसी अखिल-भारतीय हिंदी कौन सी भाषा को समझेंगे। हिंदी-भाषाभाषी प्रांतों में बोली जाती हिंदी के अलग अलग रूप हैं। जैसे उत्तरप्रदेश में कई भागों में वह ठीक-ठीक सामान्य स्वरूप की है और कई भागों में इसको लगभग उर्दू का स्वरूप प्राप्त हुआ है। मध्यभारत और राजस्थान इत्यादि में इसका स्वरूप ज्यादातर संस्कृत-मय होता है। तो यदि यह कहें कि हिंदीवाले जो भाषा आज बोलते हैं, उस भाषा को हिंदी माना जाय तो इसमें भी यह कठिनाई पड़ती है कि हिंदी का स्वरूप अधिक संस्कृतमय हो या अधिक उर्दूमय हो।

आज आवश्यकता इस बात की है कि जिस हिंदी को हम राजभाषा का स्वरूप देना चाहते हैं, वह अखिल-भारतीय भाषा हो जिससे कन्याकुमारी का भारतीय, द्वारका का भारतीय और बंगाली, हर कोई आसानी से उसको समझ सके। ऐसा उसका व्यापक रूप होना चाहिए। इसी कारण प्रांतीय भाषाओं में जो शब्द काफी प्रचलित हैं, उनको हिंदी भाषा में अपनाने की खास जरूरत है जिससे अन्य प्रांतवालों को समझने में सुविधा हो। इतना ही नहीं, बल्कि उनमें से ऐसी भावना पैदा हो कि राजभाषा हिंदी में उनका भी स्थान है और वे उससे किसी प्रकार से बहिष्कृत नहीं हैं।

अंत में सभी प्रांतीय भाषावालों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि इस प्रकार का भय और संशय रखने की जरूरत नहीं है कि हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रसार और विकास होने पर दूसरी प्रांतीय भाषाएँ नष्ट हो जायँगी। मैं तो समझता हूँ कि प्रांतीय भाषाएँ पहले से और अधिक समृद्ध होंगी। आज अनेक लिपियों और भाषाओं के होने के कारण एक दूसरी भाषा में जो कुछ अच्छा साहित्य-भंडार होता है, उसकी जानकारी दूसरी भाषावाले को बहुत कम होती है, लेकिन जब सबकी एक लिपि हो जायगी तब तो मेरे जैसे आदमी तामिल या बँगला को आसानी से पढ़ सकेंगे और सबकी नींव एक संस्कृत जो सब भाषाओं की माता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है, होने से एक दूसरे के साहित्य को आसानी से पढ़ सकेंगे और अपनी अपनी भाषा का विकास कर सकेंगे। प्रांतीय भाषाओं और हिंदी में आपस में कोई विरोध-भाव नहीं है, बल्कि मैं तो मानता हूँ कि वे बहनों के समान एक दूसरे का साथ देनेवाली और मदद करनेवाली भाषाएँ हैं।

## निर्देश

### हिंदी

आधुनिक हिंदी साहित्य—श्रीराम शर्मा; "विशाल-भारत", फरवरी १६५१ [ हिंदी साहित्य के इतिहासों में दो ही एक मौलिक, शेष पिष्टपेषण मात्र। पं० पद्मसिंह शर्मा और कविवर "शंकर" जैसे हिंदी साहित्य के महान् व्यक्तियों के संबंध में उनमें अल्पज्ञता और उपेक्षा। ]

काव्य की प्रेरणा—बलदेव उपाध्याय; "कल्पना", फरवरी १६५१ [ भारतीय आलोचकों की दृष्टि में आत्मा ही काव्य की प्रेरक शक्ति। आधुनिक मनोविज्ञान में काव्य के संबंध में फ्रायड और ऐडलर के मत एकांगी; परंतु हेडफील्ड के अनुसार मानस-विकास का लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार। युग-सिद्धांत के अनुसार आत्म-साक्षात्कार की वृत्ति ही काव्य की प्रेरक शक्ति। यह मत उपर्युक्त भारतीय मत से मिलता है।]

गीताज्ञान—वासुदेवशरण अग्रवाल; "विक्रम", मार्च १६५१ [ गीता-ज्ञान मनुष्य के लिये है। प्राचीन कुरु जनपद में प्रचलित सामान्य लोकधर्म गृहपति-धर्म का आदर्श। वही पीछे गीताधर्म के रूप में प्रकट हुआ। भागवतों ने इस धर्म को स्वीकृत और विकसित कर धार्मिक समन्वय की दिशा में इस देश में बड़ा कदम उठाया। ]

चिकित्सा-विज्ञान के हिंदी पारिभाषिक शब्द—सुरेंद्रनाथ गुप्त; विशाल-भारत, मार्च १६५१ [ उक्त विषय के संबंध में विशेष रूप से तथा सामान्यतया सभी विषयों के पारिभाषिक शब्दों के संबंध में विचार तथा उपयोगी सुझाव। ]

चीन का महाकवि लिपो—शची रानी गुर्टू; "भारती", मार्च १६५१ [ १२०० वर्ष पूर्व के चीन के इस महाकवि की ख्याति आज तक अक्षुण्ण। उसी का भावात्मक परिचय। ]

देवनागरी और रोमन लिपि—संपादकीय लेख; "कल्पना", फरवरी १६५१ [ हिंदी के लिये रोमन लिपि के समर्थक डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के मत का उल्लेख



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



करते हुए नागरी लिपि के दोषों और रोमन के विशेष गुणों को हिंदी पाठकों के विचारार्थ उपस्थित किया गया है। ]

प्रसाद की याद ( क्रमशः )—राय कृष्णदास; "नई धारा", फरवरी १९५१ [ कवि जयशंकर प्रसाद के सरस एवं स्फूर्तिदायक संस्मरण। ]

प्राचीन यूनानी सभ्यता और संस्कृति—विश्वंभर नाथ पांडे; "विश्ववाणी", मार्च १९५१ [ ऐतिहासिक विवरण। ]

भगवान कालप्रियनाथ का प्राचीन मंदिर—वा० वि० मिराशी; भारती, मार्च १९५१ [ आधुनिक कालपी में ही प्राचीन कालप्रियनाथ का सूर्य-मंदिर था जो सूर्य के तीन सर्वप्रसिद्ध मंदिरों में से था। भवभूति के नाटकों के प्रयोग इसी मंदिर में हुए थे। ]

महाराष्ट्र की संत कवयित्रियाँ—उषा कोलते; "नया समाज", फरवरी १९५१ [ ग्यारह कवयित्रियों—महदाइसा, मुक्ताबाई, जनाबाई, सोयराबाई, निर्मला, कान्हो पात्रा, प्रेमाबाई, बहिणाबाई, राजाई ( नामदेव की पत्नी ), वेणाबाई, बाइया बाई—और उनकी रचनाओं का परिचय। ]

शाक्यों के विनाश का मूल कारण—आ० कौसल्यायन; भारती, मार्च १९५१ [ शाक्यों का विनाश बुद्ध के अहिंसा सिद्धांत को अपनाने के कारण नहीं, मिथ्या जात्यभिमान के कारण हुआ था। ]

समकालीन हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ और उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि—सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन; "कल्पना" फरवरी १९५१ [ वर्तमान पीढ़ी के हिंदी साहित्य में लक्षित त्रिविध प्रवृत्तियों और उनकी प्रेरक सामाजिक स्थिति एवं भावनाओं की समीक्षा। ]

सम्राट् अशोक बनाम संप्रति—मिथिलाशरण पांडेय; विशालभारत, मार्च १९५१ [ नवंबर १९५० के विशालभारत में प्रकाशित श्री नेमिचंद्र शास्त्री के "जैन धर्म का महान् प्रचारक सम्राट् संप्रति" शीर्षक लेख की आलोचना। 'परिशिष्ट पर्वन्' ग्रंथ का प्रमाण संदिग्ध। संप्रति का जन्मकाल ई० पू० ३०४ ऐतिहासिक प्रमाण के विरुद्ध। महान् अशोक से संप्रति की कोई तुलना नहीं। ]

सोम—वासुदेवशरण अग्रवाल; "कल्पना" दिसंबर १९५० [ वेदों के 'सोम' शब्द का विशेष आध्यात्मिक अर्थ ( रेत, वीर्य ), सोदाहरण व्याख्या। ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## अंग्रेजी

आर द त्रिवेंद्रम ड्रामाज़ ऑव भास जिन्युइन ? —एन० वेंकटकृष्ण राव; श्रीवेंकटेश्वर ओरियंटल इंस्टीट्यूट पत्रिका, १।१।१ [ १६१०-१५ ई० में त्रिवेंद्रम में प्राप्त भास के नाटक ६० प्रतिशत मूल भास रचित ही हैं, एक-आध दृश्य यत्र-तत्र बदले गए हों यह असंभव नहीं। स्मृतियों से तुलना करने पर स्पष्ट कि भास पर कौटिल्य और मनु का प्रभाव है। कौटिल्य का अनुमित समय ३०० ई० पू०, भास का २४०-१७० ई०पू०, मनु-पतंजलि १५० ई०पू०, कालिदास १८०-११० ई०पू० याज्ञवल्क्य १५० ई० पू०। ]

ऑन टू माइनर ऋग्वेद प्रॉब्लेम्स—वित्तोरे पिसानी; "भारतीय विद्या" भाग १० [ ऋ० १।३२।४ और १।३२।६ का अर्थ। ]

ए नोट ऑन द वर्शिप ऑव इमेजेज़ इन जैनिज्म ( २०० ई० पू०-२०० ई० ) प्रियतोष बनर्जी; बिहार रिसर्च सोसायटी पत्रिका ३०।१।२ [ जैन मत में मूर्ति-पूजा का इतिहास ]

ओरिएंटल ऐंड रिनासाँ आर्ट फ़ॉर्म्स—मदनजीत; "ईस्ट ऐंड वेस्ट" (इटली), भाग १ अंक २ [ भारतीय कला तथा यूरप की पुनर्जागरणकाल की कलाकृतियों में कुछ बातों में साधारण साम्य, परंतु भाव की प्रधानता और शांतिदायक वातावरण भारतीय कृतियों की विशेषता, यद्यपि उनमें बाह्य सौंदर्य भी उच्चकोटि का। ]

कल्चुरल रिलेशंस बिट्वीन इटैली ऐंड इंडिया—कार्लो फ़ॉरमीची; ईस्ट-ऐंड-वेस्ट, १।२ [ मध्यकाल और पुनर्जागरणकाल में दोनों देशों के संबंधों का इतिहास ]

कॉन्सिडरेशंस ऑन ऋग्वेद १।१५२—लुई रेनाउ और लिलियन सिलबर्न; भारतीय विद्या, भाग १० [ उक्त का अर्थ। इस मंत्र में वैदिक ज्ञान के संपूर्ण तत्त्वों का सारांश। ]

कौटिल्य ऐंड द वेदज़—एच० जी० नरहरि; भा० वि० भाग १० [ कौटिल्य अर्थशास्त्र का भारतीय समाज स्मृतियों की अपेक्षा वेदों के अधिक निकट। स्मृतियों में बालविवाह, सती, स्त्रियों का पुनर्विवाह वर्जित, परंतु अर्थशास्त्र में विहित। वेदों के प्रति आदर का भाव। ]

जैमिनि-शबर ऐंड द सायंस ऑव ग्रामर—डी० बी० गर्ग; भंडारकर ओरियंटल इंस्टीट्यूट पत्रिका ३०।३-४ [ पूर्वमीमांसा-सूत्रकार जैमिनि ने एक विशेष अधिकरण में वेदों का ठीक अर्थ करने के लिये व्याकरण का प्रामाण्य स्थापित किया है। जै० सू० भाष्यकार शबर ने व्याकरण की सहायता ली है, उन्हें पाणिनि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



व्याकरण का ज्ञान था और वे पतंजलि से परिचित और प्रभावित थे। शबर का समय १०० ई०।]

द डेट ऑव कनिष्क–डी० एस० त्रिवेद; भं० ओ० रि० इं० पत्रिका ३०।३-४ [कनिष्क का भारतीय परंपरानुमोदित काल (१३५६–१३०६ ई० पू०), ही विश्वसनीय।]

द डेट ऑव मधुसूदन सरस्वती–सुलोचना ए० नचने; भं० ओ० रि० इं० प० ३०।३-४ [१५६५-१६७२ ई०। मुख्य आधार वेदांत कल्पलतिका की आनंदाश्रम (पूना) की एक ह० लि० प्रति, जिसमें रचनाकाल सं० १७१७ दिया है।]

द डेट ऑव श्रीधर स्वामी–पी० के० गोडे; भं० ओ० रि० इं० प० ३०।३-४ [भागवत पुराण आदि के भाष्यकार श्रीधर स्वामी का समय १३६०-१४५० ई०।]

द पोजीशन ऑव जगण इन मात्रा छंदज–रामनारायण बी० पाठक—भा० वि० भाग १० [मात्रिक छंदों में जगण के विधान वा निषेध के महत्त्व का हेतु, मात्रिक छंदों के गेय होने के कारण ताल में उसकी अनुकूलता या प्रतिकूलता है।]

द पॉइंट ऑव व्यू ऑव द वैयाकरणज—के० ए० सुब्रमनिया ऐय्यर; ओरिएंटल रिसर्च पत्रिका (मद्रास) १८।२ [व्याकरण वेदांग है, पर किसी एक वेद का नहीं। इसी प्रकार दर्शनों में भी सबके साथ उसका सामान्य संबंध। परंतु वैयाकरण जानते थे कि व्याकरण का अपना स्वतंत्र क्षेत्र और नियम हैं। उसका सीधा लक्ष्य वस्त्वर्थ नहीं शब्दार्थ हैं–'शब्दप्रमाणका वयम्। यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्।']

द भगवद्गीता ऐंड जैन लिट्रेचर—वी० राघवन; भा० वि० भाग १० [भगवद्गीता का जैन साहित्य पर प्रभाव।]

दाशराज्ञ, ए न्यू अप्रोच–ए० डी० पुसालकर; भा० वि० भाग १० [ऋग्वेद में दाशराज्ञ युद्ध का वर्णन पुराण और महाभारत के वर्णनों से अधिक प्रामाणिक। पुराणों के ऐतिहासिक वर्णनों की प्रामाणिकता की जाँच वैदिक वर्णनों से करनी चाहिए न कि वैदिक वर्णनों की जाँच पौराणिक उल्लेखों से।]

दि आर्कियालॉजिकल ऐस्पेक्ट ऑव एशियाटिक कंटैक्ट्स विद इटैली–मेरियो बुसाग्ली; ईस्ट ऐंड वेस्ट, भाग १ अंक १ [इटली में प्राप्त एशिया की चार महत्त्वपूर्ण वस्तुओं (ई० पू० ७३ में ध्वस्त पांपिआई नगर के अवशेषों में प्राप्त, नग्न स्त्री की हाथीदाँत की एक अत्यंत सुंदर मूर्ति; दो चीन के बने काँसे के मद्यपात्र; एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मध्यएशिया की हाथीदाँत की अन्य खंडित मूर्ति ) की समीक्षा से एशिया-यूरप के प्राचीन मार्गों और संबंधों का अनुमान । ]

दि ऐस्ट्रॉनॉमिकल क्लासिफिकेशन ऑव द महाभारत टेक्स्ट—एम० राजाराव; भा० वि० भाग १० [ ज्योतिष के आधार पर भारतसंहिता के वर्गीकरण से स्पष्ट कि भारत-कथा में सात बार संशोधन-परिवर्तन हुए हैं । ]

भगवद्गीता ऐंड अष्टाध्यायी—पी० सी० दीवान जी; भं० ओ० रि० इं० पत्रिका ३०।३-४ [ अष्टाध्यायी की परीक्षा से विदित होता है कि पाणिनि मूल भारतसंहिता, उसके कर्त्ता एवं वेद संहिताओं के संकलयिता कृष्ण द्वैपायन व्यास, उनके शिष्यों द्वारा स्थापित वैदिक 'चरणों' की परिपाटियों तथा उनके प्रशिष्यों से परिचित थे । गीता भारत का अंग, पाणिनि के पूर्व की रचना, प्रारंभिक स्मृति-काल की चीज़। ]

म्युज़िक ऐंड डांस इन कालिदास ( सचित्र )—के० वी० रामचंद्रन; ओ० रि० पत्रिका, १८।२ [ कालिदास में संगीत और नृत्यकला के उल्लेख उनके उत्कृष्ट कला-प्रेम तथा उनके समय में उन कलाओं की वास्तविक उन्नति के परिचायक हैं; जावा, श्याम, कंबोडिया आदि की जीवित परंपराओं से इसका समर्थन । ]

वृत्र—बुद्धिप्रकाश; भं० ओ० रि० इं० पत्रिका, ३०।३-४ [वृत्र पंजाब और पश्चिमी हिमालय में रहनेवाली भारतीय जाति थी जिसकी उच्च कोटि की नगर-सभ्यता थी । इनकी सभ्यता असुरों—असीरियावालों—की सभ्यता से मिलती थी । इंद्र ने सप्तसिंधु को इस जाति से मुक्त किया था । दस्यु भी आर्य-सीमा पर रहनेवाली भारतीय जाति । वृत्र दस्युओं के पुरोहित, ब्राह्मण, तपस्वी, देवों के प्रिय, मायावी । विजेता आर्यों ने उनका धर्म ग्रहण किया । वैदिक धर्म पहले अनार्य । साथ ही आर्य आक्रमणकारी भारतीय समाज में आध्यात्मिकता और सामाजिक समानता की भावना लाए । बाहरी विजेताओं के प्रभाव से सदा ही भारतीय समाज में उदारता का संचार हुआ । ]

वेदिक स्टडी, इट्स हिस्ट्री ऐंड इट्स फ्यूचर—लुई रेनाउ; ओ० रि० प०, १८।२ [ पिछले सौ वर्षों में यूरप और भारत में वैदिक साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन का इतिहास । ]

शाह हेमू विक्रमादित्य, दि एंपरर ऑव इंडिया—रावजी नेमचंद शाह; भा० वि० भाग १० [ कुछ ह० लि० पुस्तकों के आधार से प्रमाणित कि हेमू ने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पराक्रम से दिल्ली का सिंहासन हस्तगत कर ५ मास ७ दिन राज्य किया था और 'विक्रमादित्य' उपाधि धारण की थी। ]

सम टेडिशनल क्रॉनॉलॉजिकल कंसिडरेशंस—डी० आर० मनकद; भा० वि०, भाग १० [ बौद्ध, जैन तथा पुराणों की काल-सूचियों में समय-समय पर परिवर्तन किए गए। उनमें अंतर का कारण यह है कि हमारे कुछ इतिहासों में अ-राट् (राजा रहित ) कालों को छोड़ दिया है तथा महाभारत के समय में ६५३ या ७५३ वर्षों का अंतर माना है। ]

सम प्रॉब्लेम्स कंसर्निंग गुर्जर प्रतिहारज़—आर० सी० मजूमदार; भा० वि० भाग १० [ गुर्जर पहले जाति थी; जहाँ जहाँ बसी, देश को अपना नाम दिया। उन्हें विदेशी मानना आवश्यक नहीं। कन्नौज के प्रतिहार सम्राट् गुर्जर थे। उनकी मूल राजधानी उज्जयिनी मानी जा सकती है। गुर्जर-प्रतिहार का अर्थ गुर्जर जाति का प्रतिहार कुल।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# समीक्षा

साकेत-परीक्षण—लेखक श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा; प्रकाशक श्री कुसुमपाल तथा लेखक, आई० टी० कालेज, लखनऊ। पृष्ठ सं० ६२ (डिमाई अठपेजी); मूल्य १।।)

साकेत-परीक्षण में श्री मैथिलीशरण गुप्त के प्रसिद्ध प्रबंधकाव्य 'साकेत' की परीक्षा की गई है। लेखक ने परीक्षा करके यह निष्कर्ष निकाला है—"गुप्त जी कवि नहीं हैं, किंतु इसी से उनके साहित्यिक कार्य का महत्त्व घट नहीं जाता। एक समय था जब भारत-भारती को रखने और पढ़ने की वजह से स्कूलों में रस्टिकेशन किया जाता था, इधर-उधर गाँवों में शिक्षित और अर्धशिक्षित लोग भारत-भारती के हरिगीतिका छंद को पढ़ पढ़कर अपनी निद्रा में जग रहे थे, उस समय गुप्त जी की भारत-भारती ने वह काम किया जिसे हजारों आदमी भी मुश्किल से कर सकते थे।"—६२ पृष्ठों की परीक्षा-रिपोर्ट का सारांश यही है। बड़े दुःख का विषय है कि समालोचना की वह पद्धति जो शुक्ल जी के पहले चलती थी, फिर अपना सिर ऊपर उठा रही है और खंडनात्मक आलोचनाओं की रुचि बढ़ने लगी है। ऐसी आलोचनाओं का युग लद चुका है। पर स्वतंत्रता के नाम पर आलोचना का वही पुराना राग फिर से गाया जाने लगा है। साकेत में गुप्त जी कवि के निखरे रूप में आए हैं—यह मत शुक्ल जी का है, पर बहुगुणा जी ने चीर-फाड़कर यह निष्कर्ष निकाला है कि गुप्त जी कवि ही नहीं हैं, जिसे कदाचित् उनके अतिरिक्त अब कोई सत्य न मानता होगा। साकेत के नवम सर्ग में तथ्यनिरूपिणी वस्तुव्यंजनाएँ परिमाण में अधिक हैं इसी से यह परिणाम नहीं निकलता कि उसमें कवित्व ही नहीं है। जो व्यक्ति छायावादियों के लिये भी मार्ग निकालता आया हो और जो काव्य-सरिता के प्रत्येक मोड़ पर समयानुरूप परिष्कृत काव्य-वैभव का प्रदर्शन करता हुआ हिंदी की वर्तमान कविता का प्रातिनिध्य करता रहा हो उसे नेता या प्रचारक मान बैठना, कवियों की मंडली से उसे निकाल बाहर करना, साहस का काम है। हिंदी के आलोचकों की यह साहसिकता दर्शनीय है।

तुलसीदास के मानस का मानदंड मानकर साकेत की आलोचना करना गुप्त जी के प्रति अन्याय करना है। मानस के अध्ययन-मनन का प्रभाव साकेत पर पड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। पर तुलसी को देखते गुप्त जी का कवित्व साकेत में प्रस्फुट ही न हुआ हो, संप्रति कोई भी विचारशील ऐसा कहने को प्रस्तुत न होगा। साकेत का लक्ष्य दूसरा है। मानस की प्रबंधधारा में, राम की मर्यादा के निरूपण में जो अनेक जिज्ञासाएँ समय समय पर खड़ी होती हैं उनका निराकरण मुक्तक रूप में प्रस्तुत गीतावली में तुलसीदास जी ने करने का कुछ प्रयास भर किया है। गीतावली मानस से बचे कोमल भावों की पूर्ति कुछ ही करती है। साकेत में जो कथाबद्ध पूरक प्रस्तुत किया गया है वह गीतावली से भिन्न है। गीतावली तो कुछ संकेत भर देकर रह गई है। उसकी व्यवस्थित संभार-सज्जा 'साकेत' में है। अतः यह कहना कि गुप्त जी ने साकेत लिखते समय गीतावली पर ध्यान ही नहीं दिया, ठीक नहीं। गीतावली से तो उत्तेजना ही मिली है। तुलसी जिसे नहीं कर सके उसे गुप्त जी ने कर दिखाया। समालोचक ने चंद्रकुँवर वर्तवाल का स्मरण गुप्त जी के प्रतिपक्ष में छायावादियों के साथ बराबर किया है। वह उनको कहीं भूला नहीं या जान-बूझकर उसने उनका उल्लेख कई स्थानों पर किया है, यह तथ्य है। पर क्यों किया है इसका कोई संगत हेतु न मिल सका। नैयायिकों की शब्दावली में प्रतिपक्ष का खंडन होने और स्वपक्ष की स्थापना का राहित्य होने से ऐसी शैली वितंडा के अंतर्गत आती है। एक बात इस परीक्षण से अनायास हो गई है। यदि खंडनात्मक विशेषणों को हटा दें तो यह कहा जा सकता है कि लेखक ने साकेत के संबंध में सभी विचारणीय पक्षों का संग्रह इसमें अवश्य कर दिया है।

—विश्वनाथप्रसाद मिश्र

हिंदी काव्य में प्रकृति-चित्रण—लेखिका श्री किरणकुमारी गुप्ता, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रिंसिपल, मुरारीलाल खत्री गर्ल्स इंटर कालेज, आगरा; प्रकाशक हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग; सं० २००६; पृष्ठ संख्या ४८४। मूल्य ६)

प्रस्तुत ग्रंथ दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड में सिद्धांतों का विवेचन है और दूसरे खंड में विशिष्ट कवियों के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण का निर्देश। प्रथम खंड में दो अध्याय हैं—(१) सिद्धांत और विवेचन—इसमें मानव और प्रकृति का चिर साहचर्य, प्रकृति का दार्शनिक एवं साहित्यिक अभिप्राय, प्रकृति-प्रेम, कवि और वैज्ञानिक के प्रकृति के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण तथा कविसमय का निरूपण है। (२) प्रकृति-चित्रण के विविध रूप—इसके अंतर्गत आलंबन, उद्दीपन, अलंकार, मानवीकरण, रीति और उपदेश का माध्यम तथा परमतत्त्व के दर्शन और प्रकृति-चित्रण के छः रूपों का विवेचन हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


द्वितीय खंड में वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, वर्तमान काल और उपसंहार नामक पाँच अध्याय हैं। प्रथम चार अध्यायों में उक्त युगों के प्रतिनिधि कवियों के प्रकृति-चित्रण पर विचार किया गया है। उपसंहार में हिंदी के प्रकृति-काव्य का मूल्यांकन है।

कवि मानव एवं मानवेतर प्रकृति से अपने काव्य की सामग्री ग्रहण करता है। हिंदी कविता में ठीक उसी प्रकार का प्रकृति-चित्रण नहीं मिलता, जिस प्रकार अँगरेजी के प्रसिद्ध कवि वड्र्स्वर्थ ने किया है। इस कमी की ओर सबसे पहले हमारा ध्यान स्वर्गीय आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य' नामक विस्तृत निबंध के द्वारा १९२५ ई० के आसपास आकृष्ट किया। अपने कई अन्य आलोचनात्मक निबंधों में भी प्रकृति को आलंबन रूप में ग्रहण करने की प्रेरणा शुक्ल जी ने की है। शुक्ल जी ने हिंदी काव्य में प्रकृति-चित्रण के जिस अध्ययन का सूत्रपात किया था, श्रीमती गुप्ता ने उसी पर एक विस्तृत महल खड़ा कर हिंदी आलोचना-साहित्य की वृद्धि की है।

हिंदी पुस्तकों में मुद्रण की अशुद्धियों की ओर सामान्यतः ध्यान कम दिया जाता है, पर इस प्रकार के ग्रंथों में, विशेषतः कविताओं में, तो वे बहुत खटकती हैं। उनका निराकरण अत्यंत आवश्यक है। इसमें अनेक उद्धृत कविताएँ अशुद्ध छपी हैं जिससे रसास्वाद में बड़ी बाधा पड़ती है और भ्रम भी उत्पन्न होता है। ये अशुद्धियाँ तीन प्रकार की हैं—( १ ) कहीं तो कोई शब्द अशुद्ध छप गया है; यथा

चंद के मरम होत मोद है कमोदिनी कौं,
ससि संक पंकजिनी फूलि न सकति है। ( पृष्ठ १९० )

इस कवित्त में सेनापति ने शिशिर में सूर्य के निस्तेज होने का वर्णन किया है। ऊपर की पंक्ति में 'मरम' अशुद्ध है, शुद्ध पाठ है 'भरम'। शिशिर के सूर्य को कुमुदिनी भ्रम से शशि समझकर प्रमुदित एवं प्रफुल्लित हो रही है। ( २ ) कहीं कोई शब्द छपने से छूट गया है; यथा

बीच जरतारन की हीरन की जगमगी
ज्योतिन की मोतिन की झालरै। ( पृष्ठ ५१ )

यह देव के एक कवित्त का चतुर्थ चरण है। इसका मूल पाठ है—

बीच जरतारन की हीरन के हारन की
जगमगी ज्योतिन की मोतिन की झालरै।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



( न जाने कैसे 'विशाल है', 'भाल है', 'महाल है' का तुक 'झालरैं' बनाया गया है—निश्चय ही यह देव की भूल नहीं है। ) और ( ३ ) कहीं किसी चरण में एकाध शब्द ऊपर से घुस आया है; यथा—

गोरिन के रँग भीजिगो साँवरो, साँवरे के रँग सु भीजी सु गोरी। ( पृष्ठ ५३ )

पद्माकर के इस सवैए में 'भीजी' के पहले 'सु' अधिक छपकर विरसता उत्पन्न कर देता है।

केवल एक बात और, जिसकी ओर प्रकाशक को ध्यान देना चाहिए। समय और ग्रंथ के विषय को देखते हुए भी उसका मूल्य अत्यधिक है।

—किशोरीलाल गुप्त

**मीराँ, एक अध्ययन**—लेखिका श्रीमती पद्मावती 'शबनम'; प्रकाशक लोक-सेवक-प्रकाशन, काशी; सं० २००७; पृष्ठ सं० २६४ ( डि० क्रा० सोलह पेजी ); छपाई, कागज आदि सुंदर। मूल्य ३॥)

मीराँ के पदों का स्वयं प्रेमी होने के कारण ऐसे अध्ययन, पद-संग्रह आदि का सदा स्वागत करता आया हूँ और मीराँ के संबंध में लिखे गए लेखों, पुस्तकों आदि को यथाशक्ति प्राप्त कर पढ़ता रहा हूँ। इस पुस्तक के मिलने के पहले मुझे पता लगा था कि काशी ही से मीराँ पर एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसकी लेखिका कोई 'शबनम' हैं। इस फारसी उपनाम से मैंने समझा किसी 'शाअरा' ने मीराँ बाई पर कुछ लिखा होगा और हिंदी भाषा में छपा दिया होगा। पुस्तक मिलने पर वह संदेह दूर हो गया।

पुस्तक का एक पारायण करने पर ज्ञात हुआ कि यह वास्तव में मीराँ का 'एक अध्ययन' मात्र है और इसमें उनकी जीवन-घटनाओं, भक्ति, पदों आदि सभी को संदिग्धता का आवरण दे दिया गया है। स्वभावतः अपरिचित पर संदेह-दृष्टि रखनी ही पड़ती है और 'शबनम' जी ने कुछ ऐसा ही 'मीराँ' के साथ किया है। जिस प्रकार लेखिका ने अन्य लेखकों के संबंध में लिखा है कि वे अपने निर्णयों में द्विधाग्रस्त से पाए जाते हैं, उसी प्रकार वे स्वयं भी संदिग्धता से कहीं पार पाने का प्रयास नहीं करतीं, केवल संदेहों का संग्रह करती चली गई हैं। इसमें संदेह नहीं कि लेखिका ने अबतक के मीराँ-संबंधी संपूर्ण साहित्य का अध्ययन कर यह पुस्तक प्रस्तुत की है। उनका यह प्रथम प्रयास है और स्तुत्य है। पर इसी कारण एक ही उद्धरण अनेक बार आकर पुस्तक की कायवृद्धि मात्र करते हैं। अभी लेखिका की मीराँ पर और भी लिखने की इच्छा है, अतः मेरी संमति में उन्हें इस 'अध्ययन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



NOT TO BE ISSUED

पर पुनः विचार करना चाहिए। केवल एक बात लीजिए। अन्य भक्त कवियों ने अपने इष्टदेव का कीर्तन सख्य, दास्य, वात्सल्य आदि भावों से किया है और मीराँ ने माधुर्य या कांत भाव से किया है। इनके इष्टदेव श्रीकृष्ण सांसारिक प्रियतम नहीं थे और उस प्रियतम की जन्म- तथा बाललीला सभी भक्तों को ज्ञात थी और गाई जाती थी। ऐसी अवस्था में 'मुग्धा नारी द्वारा अपने ही प्रियतम के बाल-रूप व बाल-लीलाओं का वर्णन' कैसे असंगत प्रतीत होता है? प्रिय की जब सभी वस्तुएँ प्रिय होती हैं तब उसकी बालक्रीड़ाएँ या प्रौढ़ अथवा वृद्ध अवस्था की बातें क्यों न प्रिय होंगी? वस्तुतः कवि की भूमिका से दूर रहने के कारण ही उक्त असंगति प्रतीत हुई है। इस प्रकार की कई बातें हैं, जो कुछ खटकती हैं; पर तब भी यह प्रयास, प्रथम होने पर भी, आदरणीय है और इसमें प्रकट किए गए विचार अभिनंदनीय हैं।

—ब्रजरत्नदास

निर्गुण-धारा—लेखक श्री बैजनाथ, श्री विश्वनाथ; प्रकाशक मानसरोवर प्रकाशन, गया; प्रथम संस्करण, सं० २००७; पृ० सं० १० + २५६ (ड० क्रा० सोलह पेजी); मूल्य ३)

प्रारंभ के नौ पृष्ठों में क्रमशः डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'आशीर्वचन', लेखकों के गुरु प्रो० देवेंद्रनाथ शर्मा लिखित 'अवतरणिका' तथा स्वयं लेखकों की 'अपनी बात' है। पुस्तक में आठ अध्याय हैं—(१) दृष्टि कोण, (२) निर्गुण-धारा का मूल स्रोत भारतीय या अभारतीय? (३) निर्गुण-धारा और प्रातिभ ज्ञान, (४) परंपरागत योग और निर्गुणियों की योग-साधना, (५) निर्गुण-साहित्य का दार्शनिक आधार, (६) निर्गुण-साहित्य में साधु और सद्गुरु (७) निर्गुण-काव्य का विधान और भाषा-शैली, (८) निर्गुण साहित्य के कुछ पारिभाषिक शब्द और प्रतीक। इनके विषय नाम से ही स्पष्ट हैं।

प्रस्तुत पुस्तक लेखकों की एम० ए० की तैयारी के प्रसंग से लिखी गई है, परंतु निष्पक्ष होकर, यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य के एक आवश्यक किंतु उपेक्षित अंग के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त करने में इधर पंद्रह वर्षों में साहस-पूर्वक जो थोड़ा सा प्रयास उचित दिशा में हुआ है उसमें यह पुस्तक भी गिनी जायगी। यह अनुभव अब धीरे-धीरे तीव्रतर होता जा रहा है कि हिंदी साहित्य का अध्ययन जिस दृष्टि को लेकर आरंभ किया गया उससे तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति भली भाँति हुई और हमारे साहित्य का गौरव भी बढ़ा, परंतु वह हमारे अध्ययन में ऐसी उदारता, व्यापकता और निष्पक्षता नहीं ला सकी जो एक निरंतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उन्नतिशील साहित्य के लिये आज अत्यंत आवश्यक है। प्रस्तुत पुस्तक न तो अपने विषय की पूर्ण और अंतिम पुस्तक है और न इसमें प्रकट किए गए सभी विचारों से सहमत होना आवश्यक है, परंतु हमें हर्ष है कि इसमें लेखकों का आदि से अंत तक अपनी दृष्टि को व्यापक, उदार और निष्पक्ष रखने का पूरा और बहुत कुछ संफल प्रयत्न है।

किसी भी कारण से हो, पर केवल निर्गुणी संतों का ही नहीं प्राचीन प्राकृतों से लेकर आज तक का संपूर्ण लोकभाषा-साहित्य, जिसमें बौद्ध-जैन मतों तथा सिद्ध-नाथ आदि संप्रदायों का भी बड़ा विशाल साहित्य है, आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययन में भी बहुत कुछ उपेक्षित रहा है। लोक-जागरण और वैज्ञानिक अध्ययन के इस युग में लोक-साहित्य की ऐसी उपेक्षा संकीर्णता का द्योतक है और इसके चलते साहित्य और संस्कृति का अध्ययन सदा ही अधूरा रहेगा। इस उपेक्षा को दूर करने में प्रस्तुत पुस्तक के लेखकों की उपर्युक्त दृष्टि कुछ न कुछ अवश्य सहायक होगी।

पुस्तक में निर्गुणधारा का दार्शनिक आधार बहुत स्पष्ट नहीं है। इसके अतिरिक्त ऐसे विचारों से भी सर्वथा सहमत होना कठिन है कि निर्गुण-धारा का संपूर्ण साहित्य लोक-गीत के वर्ग का है (पृ० २), निर्गुण ब्रह्म का आश्रय पंडितों, राजाओं और सामंतों के जोर के कारण लेना पड़ा (पृष्ठ १२६), कबीर ने योग का समर्थन भी किया है और विरोध भी (पृ० १०९-१०) इत्यादि। परंतु निर्गुण-काव्य के मूल्यांकन के लिये 'शिष्ट'-काव्य का मानदंड उचित नहीं—यह मानने में, वर्तमान आलोचनाओं को देखते हुए, आपत्ति नहीं हो सकती, यद्यपि शास्त्रीय आलोचना के भी व्यापक सिद्धांतों की कसौटी पर किसी काव्य को—चाहे निर्गुण काव्य हो या और कोई—कसना अव्यवहार्य नहीं।

अस्तु; यह उपादेय पुस्तक प्रस्तुत करने के लिये हमारे होनहार लेखकद्वय बधाई के पात्र हैं। आशा है वे इस अध्ययन पर एम० ए० की परीक्षा का ही विराम न लगा और अधिक व्यवस्थित रूप में इसे जारी रखकर अपने परिपक्व विचार प्रस्तुत करते रहेंगे।

प्राणिशास्त्र (पत्रिका, सचित्र)—संपादक श्री 'अमर' एम० एस-सी०, प्रधानमंत्री, भारतीय प्राणिशास्त्र परिषद्, लखनऊ; वार्षिक मूल्य १५), परिषद् के सदस्यों के लिये विशेष मूल्य।

स्वतंत्र भारत में विज्ञान की प्रत्येक शाखा में उन्नति और गवेषणा की पूर्ण सुविधा हो तथा राष्ट्रभाषा हिंदी विज्ञान की शिक्षा और गवेषणा का योग्य माध्यम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बने और सुविधा की दृष्टि से विज्ञान की एक-एक शाखा के लिये भिन्न भिन्न प्रांतों में अलग-अलग केंद्र स्थापित हों—इन्हीं विचारों को लेकर, प्राणिशास्त्र की उन्नति की सुविधा लखनऊ में होने के कारण लखनऊ में ही भारतीय प्राणिशास्त्र-परिषद् की स्थापना हुई। प्राणिशास्त्र के पुस्तकालय, संग्रहालय एवं गवेषणालय इत्यादि खोलना भी उक्त परिषद् की योजना के अंतर्गत है। इस परिषद् को देश के वैज्ञानिकों और प्रसिद्ध विद्वानों तथा नेताओं की सहानुभूति और सहयोग प्राप्त है। श्री संपूर्णानंद (माननीय शिक्षामंत्री, उत्तर-प्रदेश) इसके संरक्षक हैं।

प्रस्तुत पत्रिका उक्त परिषद् की मुखपत्रिका है। इसके संपादक का० इं० कालेज के विज्ञान विभाग के अध्यक्ष श्री देवीशंकर मिश्र 'अमर' एम० एस-सी० परिषद् के आजीवन सदस्य, प्रधान मंत्री और कोषाध्यक्ष भी हैं। ये विज्ञान के साथ-साथ हिंदी भाषा और संस्कृति के भी प्रेमी हैं और उत्साहपूर्वक इन्होंने इस बड़े कार्य के गुरुभार को अपने ऊपर ले रखा है।

पत्रिका के प्रथम वर्ष का अंक १ और अंक ३ हमारे सामने है। इनकी छपाई, कागज तथा आकार-प्रकार सुंदर हैं और लेख उच्च कोटि के हैं। पत्रिका की यह विशेषता है कि वह विज्ञान विषयक आधुनिक ज्ञान को प्राचीन भारतीय ज्ञान से संबद्ध करके देखने का प्रयत्न करती है।

विज्ञान विषयक इस प्रकार की पत्रिका के संबंध में पारिभाषिक शब्दों का प्रश्न स्वभावतः उठता है। इस संबंध में तृतीय अंक (पृ० १७६) में संपादक ने अपना मत स्पष्ट किया है और संस्कृत-धातुमूलक सार्थक पारिभाषिक शब्द-निर्माण का पक्ष लिया है। डा० रघुवीर संस्था की मंत्रणा-परिषद् के मान्य सदस्य हैं, अतः उनकी भी सहायता इसे प्राप्त है। स्वभावतः अधिकांश लेखों और शब्दों का अनुवाद ही करना पड़ता है, पर मुख्य शब्दों के अंग्रेजी पर्याय कोष्ठक में दे दिए जाते हैं। अभी कोई पारिभाषिक शब्दावली विद्वानों में सर्वमान्य न होने के कारण यह कार्य अवश्य कठिन है, पर निश्चित शब्दावली प्रस्तुत होने तक प्रतीक्षा करने का यह समय नहीं है, अतः शब्दावली पर विवाद उठाना व्यर्थ है। कार्य करते-करते ही शब्दावली निश्चित होगी। निश्चित होने पर भी वह अपरिवर्तनीय न होगी, आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन होगा। अतः जिस उद्देश्य को लेकर तथा जिस साहस और उत्साह के साथ इस पत्रिका का कार्य आरंभ किया गया है वह सर्वथा स्तुत्य है। हिंदी और विज्ञान का प्रत्येक प्रेमी इसका स्वागत तथा इसकी उन्नति की कामना करेगा।

—चित्रगुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## समीक्षार्थ प्राप्त

अंजलि और अर्घ्य ( कविता )—लेखक श्री मैथिलीशरण गुप्त; प्रकाशक साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी; सं० २००७; मूल्य ।।।)

अमेरिकन इतिहास की रूपरेखा—ले० श्री फ्रांसिस फ्रीडमैन; प्रकाशक राज्य-विभाग, संयुक्तराज्य अमेरिका; सन् १९५१; मूल्य ।।।)

आधुनिक हिंदी साहित्य का विचारात्मक अध्ययन—लेखिका श्री० शकुंतला अग्रवाल; प्रकाशक शक्ति पब्लिकेशंस, लुधियाना; सन् १९५०; मूल्य १।)

आरोग्यशास्त्र—लेखक श्री फुंदनलाल अग्निहोत्री; प्रकाशक स्वास्थ्य भंडार, बरेली; सं० २००७; मूल्य २)

उपनयन संस्कार—लेखक श्री भीमसेन शर्मा तथा श्री आत्माराम राधाकृष्ण; प्रकाशक जयदेव ब्रदर्स, आत्माराम पथ, बड़ौदा; संवत् २००७; मूल्य ।।।)

कल्याण ( मासिक, स्कंदपुराणांक )—संपादक श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, श्री चिम्मनलाल गोस्वामी एम० ए०, शास्त्री; प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर; संवत् २००७; वार्षिक मूल्य ७।।)

दुष्यंत और शकुंतला ( कथा )—लेखक श्री शांति-स्वरूप गौड़; प्रकाशक राजेंद्र प्रकाशन मंदिर, आगरा; सन् १९५०; मूल्य २)

धर्म और संस्कृति ( संकलन )—लेखक श्री जमनालाल जैन; प्रकाशक भारत जैन महामंडल, वर्धा; सन् १९५१; मूल्य १।)

नियामक ज्यामिति, भाग १—लेखक डा० व्रजमोहन; प्रकाशक बिड़ला हिंदी-प्रकाशन मंडल, हिंदू विश्वविद्यालय, काशी; सन १९५०; मूल्य २।)

पृथिवी पुत्र ( कविता )—लेखक श्री मैथिलीशरण गुप्त; प्रकाशक साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी; सं० २००७; मूल्य ।।।)

प्रदक्षिणा ( कविता )—लेखक श्री मैथिलीशरण गुप्त; प्रकाशक साहित्य-सदन चिरगाँव, झाँसी; सं०-२००७; मूल्य १)

भक्ति पुष्पांजलि—लेखक श्री हरिशरण गोस्वामी; प्रकाशक श्री साधुशरण गोस्वामी, धनौती; संवत् २००७; बिना मूल्य ।

भावी समाज की भूमिका (उपन्यास)—लेखक श्री बलभद्र ठाकुर साहित्याचार्य; प्रकाशक शक्ति पब्लिकेशंस लुधियाना; सन् १९५०; मूल्य ४।।।=)

राष्ट्रभाषा गीतांजलि—लेखक श्री रूपकुमार जेठानी "घायल"; प्रकाशक भारतीय भंडार, लोहा बाजार, भूपाल; मूल्य ।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


राष्ट्रभारती ( मासिक, फरवरी १९५१ )—संपादक-मंडल : सर्वश्री राहुल सांकृत्यायन, भ० आनंद कौसल्यायन; डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, बैजनाथ सिंह; प्रकाशक राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, वर्धा; वार्षिक मूल्य ६)

रोगी-परीक्षा—लेखक श्री शिवनाथ खन्ना, एम० बी० बी० एस०, पी-एच० डी०; प्रकाशक श्री एस० पी० खन्ना, थियासाफिकल सोसायटी, बनारस; सन् १९५१; मूल्य ६)

सरदार वल्लभभाई पटेल, भाग १—लेखक श्री नरहरि द्वा० परीख; अनुवादक श्री रामनारायण चौधरी; प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद; सन् १९५१; मूल्य ६)

सर्वोदय का सिद्धांत—महात्मा गांधी, श्री विनोबा भावे आदि के विचारों का संकलन; प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद; सन् १९५१; मूल्य ॥)

हरिऔध और वैदेही-वनवास—लेखक श्री श्याम जी जोशी; प्रकाशक मोहन न्यूज एजेंसी, कोटा; मूल्य १।)

हिडिंबा ( कविता )—लेखक श्री मैथिलीशरण गप्त; प्रकाशक साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी; सं० २००७; मूल्य ॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विविध

## हा हंत !

विगत बुधवार २१ मार्च १९५१ को आचार्य पं० केशवप्रसाद मिश्र का ६५ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। इस शोकप्रद समाचार से उन्हें जाननेवाला प्रत्येक व्यक्ति मर्माहत हुआ होगा, उनके निकटस्थ जनों का घाव तो बहुत दिनों तक पूजनेवाला नहीं। उनके निधन से भारती का एक मौन और अनन्य उपासक संसार से उठ गया, काशी की सहृदय-गोष्ठी का एक अमूल्य रत्न खो गया। हमारी क्षति तो अपूरणीय है। 'पत्रिका के वर्ष ४३ से ४७ तक ( सं० १९९५-९९ ) वे इसके संपादक-मंडल के एक प्रतिष्ठित सदस्य थे और हाल ही में इसके नवसंयोजित संपादन-परामर्श-मंडल का सदस्य होना उन्होंने स्वीकार किया था, पर हम अपने दुर्भाग्य को क्या कहें, यह अंक भी प्रकाशित न हो पाया कि वे हम से बिदा हो गए !'

पंडित जी का सरल आचारनिष्ठ जीवन, उनकी काव्यमय सरसता एवं वैज्ञानिक तथ्य-ग्राहकता तथा उनकी मधुर निर्मल वाणी उनसे मिलनेवालों के हृदय पर अपनी स्थायी छाप छोड़े बिना नहीं रहती थी। स्वाध्याय और विद्यादान उनके जीवन का प्रधान कार्य था। हिंदू-स्कूल ( काशी ) के संस्कृत-अध्यापक से वे हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्राध्यापक और फिर उसके अध्यक्ष हुए थे। इस पद से अभी गत वर्ष ही उन्होंने विश्राम लिया था। उसके बाद उनपर पक्षाघात का आक्रमण हुआ जो उनके लिये घातक सिद्ध हुआ।

वे एक आदर्श अध्यापक थे। उनकी अध्यापन-शैली इतनी रोचक थी कि काव्य का तो कहना ही क्या, व्याकरण और भाषा-विज्ञान जैसे विषयों को भी वे काव्य की सरसता प्रदान करते थे। व्याकरण की शुष्क क्लिष्टता से डरकर संस्कृत में अरुचि रखनेवाले सहस्रों छात्रों को उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली द्वारा संस्कृत के प्रति आत्मीयता का बोध करा दिया। उनकी लिखी 'संस्कृतसरणिः' में छात्रों को व्याकरण के सीधे प्रहार से बचाकर वाक्य-चयन इस प्रकार से किया गया है कि प्रारंभिक छात्र को भी संस्कृत अपनी भाषा सी लगने लगती है। उनके ज्ञानभांडार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


और व्याख्यान-शैली की विशेषता तो यह थी कि स्कूल से लेकर कालेज की उच्चतम कक्षा के विशिष्ट छात्र ही नहीं, अच्छे-अच्छे पांडित्याभिमानी विद्वान् श्रोता भी मुग्ध और कृतकृत्य हो जाते थे। बातचीत में भी किसी प्रसंग पर जब उनकी विमल शीतल वाग्धारा पावन गिरि-स्रोत सी प्रवहमान होती तो अतृप्त श्रोता उसके उद्गम 'मानस' की अतल गहराई पर चकित हो रहता।

पंडित जी सर्वोपरि आदर्श भावक थे। उन्होंने राजशेखर-वर्णित कविगत कारयित्री प्रतिभा और भावकगत भावयित्री प्रतिभा का उल्लेख अपने लेखों में किया है। यह भावयित्री प्रतिभा उनमें विलक्षण थी। प्रसाद जी और गुप्त जी जैसे श्रेष्ठ प्रतिभावान् कवि उनके जैसा भावक पाकर धन्य होते थे।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं तथा काव्य, व्याकरण और भाषा-विज्ञान पर तो उनका पूर्ण अधिकार था ही, भाषाविज्ञान के प्रसंग में उन्होंने ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं में भी अच्छी गति प्राप्त कर ली थी। भाषाविज्ञान के वे अपने ढंग के एक ही विद्वान् थे। प्रसिद्धि की होड़ में अरुचि के कारण यद्यपि निरंतर कुछ न कुछ छपाते रहने की युग-प्रवृत्ति उनमें न थी, परंतु उन्होंने अपने जीवन में लिखा कम, ऐसा समझना भ्रम होगा। कितने ही ऐतिहासिक प्रामाण्य के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के लेखन में उनका प्रधान, यद्यपि अ-नाम, रूप से हाथ था। केवल कुछ ही रचनाओं को उनके नाम का प्रसाद प्राप्त हुआ, परंतु वे 'कुछ' भी उनकी कारयित्री प्रतिभा की पूर्ण परिचायक हैं; उनका मेघदूत का हिंदी पद्यानुवाद (भारत कलाभवन द्वारा प्रकाशित) अद्वितीय है। उनके 'उच्चारण' तथा '?' शीर्षक निबंध अपने ढंग के अद्भुत हैं। म० म० डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा जैसे विद्वान् ने उनके 'उच्चारण' निबंध पर रीझकर अपनी 'प्राचीन भारतीय लिपिमाला' उनपर निछावर की थी। 'काव्यालोक' और 'आदर्श और यथार्थ' पुस्तकों की भूमिका से उनका गंभीर और स्वतंत्र चिंतन प्रकट होता है। अपभ्रंश पर उन्होंने अंग्रेजी में 'डॉक्टर कीथ ऑन अपभ्रंश' शीर्षक एक अत्यंत शोधपूर्ण लेख लिखा था, जो इंडियन ऐंटिक्वेरी (जिल्द ५६, सन् १६३०) में सादर प्रथम पाँच पृष्ठों में प्रकाशित हुआ था और जिसके प्रति उक्त आदर के साथ संपादक ने बहुत प्रशंसात्मक पत्र पंडित जी को लिखा था। भाषाविज्ञान पर उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण मौलिक ग्रंथ लिखने की पूरी सामग्री तैयार की थी, परंतु उनकी लंबी अस्वस्थता और आकस्मिक निधन ने उसे प्रस्तुत न होने दिया। शब्दकोश का संपादन उनका अत्यंत मनोनीत और प्रिय विषय था


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और इसके वे विशिष्ट अधिकारी थे। हिंदी में पारिभाषिक शब्दावली के आदि निर्माताओं में वे थे। पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद में वे अर्थसाम्य, ध्वनिसाम्य और मुखसुख तीनों का ध्यान रखते थे; यथा 'फोनोग्राफ' के लिये 'स्वनग्राह' में। उनकी लिखी 'वैद्युत शब्दावली' नागरीप्रचारिणी सभा (काशी) से प्रकाशित है।

उनके त्रयोदशाह के दूसरे दिन उनके निवास-स्थान पर एक स्मृति-गोष्ठी का आयोजन किया गया था और उसमें उनकी स्मृति में एक अध्ययन-मंदिर की स्थापना की बात उठी थी। हमारी हार्दिक कामना है कि जिस सात्विक निष्ठा तथा जिस विषय और शैली के विद्वान् वे थे उसके अनुरूप ही अध्येताओं को प्रेरणा और स्फूर्ति देनेवाला अध्ययन-मंदिर उनकी स्मृति में अवश्य और यथाशीघ्र स्थापित हो।

—संपादक

## मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा

पाठकों को इस सभ्यता का पूरा पूरा चित्र ध्यान में रखना आवश्यक है, क्योंकि उससे भारत में आर्यों के अंतिम प्रवेश के समय का और उस समय की अनार्य सभ्यता का ज्ञान हो सकना संभव है तथा वेदों में अनार्यों के साथ आर्यों के युद्धों का जो वर्णन है वह ठीक ठीक समझ में आ सकता है। सर जान मार्शल की रिपोर्ट तीन भागों में १९३१ ई० में छपी थी और उसका पूरा-पूरा सारांश नागरीप्रचारिणी पत्रिका में (वर्ष ४३ अंक २) दिया जा चुका है। उसके पश्चात् और भी महत्त्व की खुदाई हुई है जिसका विवरण यहाँ संक्षेप में दिया जाता है। जो लेख मिले थे वे तो अभी पूर्ण रीति से पढ़े नहीं गए हैं।

आरंभ में सिंधु-घाटी के इन दो ग्रामों, मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा, की खुदाई से भारतवर्ष का इतिहास एकदम ३००० वर्ष ई० पूर्व तक पहुँच गया था, पर पीछे विशेष शोध से ऐसा जान पड़ा कि यद्यपि इस सभ्यता का संबंध भारतवर्ष से थोड़ा बहुत रहा हो, परंतु यह सभ्यता यहाँ विशेषतः निराली सी थी और यह अचानक ही एक उच्चतर स्तर पर पहुँच गई थी। उसके आरंभ और धीरे धीरे नाश होने के कोई चिह्न लक्षित नहीं हुए।

सन् १९४६ ई० में इन स्थानों की नई खुदाई और जाँच हुई। हड़प्पा में मज़बूत किलेबंदी के चिह्न पाए गए। यह किला ४०० गज लंबा और २०० गज चौड़ा था। इसके भीतर एक बड़ी बुर्ज भी थी जहाँ से निरीक्षण और रक्षा भली प्रकार हो सकती थी। यह स्थान अधिकारी सत्ता के राज्य का केंद्र था। ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जान पड़ता है कि जैसी राज्य-व्यवस्था ईरान खाड़ी के सिरे पर उर राज्य में थी वैसी ही हड़प्पा में भी रही होगी। इसमें सारी संपत्ति किसी देव या उसके पुजारियों की रहती थी। अन्य लोगों से गुलामी या सेवा का काम कड़ाई से लिया जाता था और व्यक्ति की उन्नति के लिये कोई प्रयत्न न था। अभी तक हड़प्पा में किसी प्रधान मंदिर का पता नहीं लगा है।

हड़प्पा का विशेष संबंध २३५० ई० पू० में सुमेर (इराक में) से था। भारतवर्ष की बनी हुई हस्ताक्षर बनाने की सात-आठ मुहरें सुमेर और आसपास के कई नगरों में पाई गई हैं।

ऐसा जान पड़ता है कि सिंधु-तरेटी की यह सभ्यता विदेशी आर्यों के आक्रमणों से थोड़े ही काल में नष्ट हो गई। नगरों की खुदाई में राख के स्तर मिले हैं जिससे जान पड़ता है कि नगर जला दिए गए थे। इन आक्रमणों का समय पुरातत्त्ववेत्ताओं ने अभी पूरे आधार बिना सन् १५०० ई० पू० रखा है। ऋग्वेद में इन किलों से सुरक्षित नगरों को 'पुर' कहा है। कभी-कभी इन किलों को धातु का बना हुआ (आयसी) कहा है। इन किलों को नष्ट करनेवाला (पुरंदर) आर्यों का देवता इंद्र था। उसने अपने भक्त आर्य दिवोदास के लिये शत्रुओं के ६४ किले नष्ट किए। अनार्य शत्रु शंबर के भी १०० किले इंद्र ने नष्ट किए थे। हड़प्पा की कीर्ति का समय २५०० से १५०० ई० पू० का है। वहाँ के लोगों के रहन-सहन का हाल यहाँ स्थानाभाव से नहीं लिख सकते, परंतु हाल में दो बहुत उपयोगी और सुंदर पुस्तकें अंग्रेजी में छपी हैं जिन्हें पाठकों को अवश्य देखना चाहिए। उनके नाम नीचे लिखे हैं[1] —

[१] आर्क्योलाजी इन इंडियां—मैनेजर, गवर्नमेंट पब्लिकेशंस, दिल्ली, १९५०; मू० ६।।।)

[२] प्रिहिस्टारिक इंडिया टु १००० बी० सी०; लेखक एंस० पिग्गट; पेंग्विन बुक्स, १९५०; मू० लगभग २)

---

१—(1) Archaeology in India; Manager of government Publications, Delhi, 1950; Rs. 6/12/-
(2) Prehistorie India to B. C. 1000, by S. Piggott; Penguin Books, 1950; about Rs 2/-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इनसे ज्ञात हो जायगा कि मोहेंजोदड़ो, हड़प्पा आदि की पूरी पूरी खोज अभी तक नहीं हो पाई है। पर यह सभ्यता अचानक ही आक्रमणकारियों द्वारा उसके प्रधान पुरों के जला दिए जाने से शीघ्र ही नष्ट हो गई। यह सभ्यता जिला मांटगोमरी के हड़प्पा से लगाकर दक्षिण में काठियावाड़ के लींबड़ी राज्य तक फैली हुई थी। अभी हाल में ही समाचार छपा है कि राजस्थान के बीकानेर विभाग में कोई ७०. स्थान भारत की पुरानी सभ्यता से संबंध रखनेवाले खोज निकाले गए हैं जिनमें से कुछ तो हड़प्पा के समकालीन जान पड़ते हैं।

नई खोजों का विवरण प्रजा के समक्ष रखने के लिये भारत सरकार "एंशंट इंडिया" नाम की सचित्र पुस्तक प्रति छः मास में निकालती है। एक अंक का मूल्य २), चार अकों का मूल्य ७), डाक व्यय कुछ नहीं।

—पंड्या बैजनाथ ( रायबहादुर )

## पर-लेख-हरण

अन्य पर-वस्तुओं की भाँति पर-लेख का भी हरण कानून से दंडनीय अपराध है। इसके लिये 'कापी-राइट' का विशेष कानून है। लेख-हरण की बारीकियों पर तर्क और निर्णय करना इस कानून का विषय है, अतः उसपर हमें यहाँ कुछ कहना इष्ट नहीं। यहाँ हम केवल लेखकों के नैतिक दायित्व की बात कहना चाहते हैं।

दूसरों के परिश्रम से लाभ उठाना कोई अनुचित या नई बात नहीं, पर किसी रूप में उसका प्रतिदान करना या कम से कम कृतज्ञ होना आवश्यक नैतिक कर्तव्य है। किसी भी युक्ति से उसे यों ही डकार जानेवाले व्यक्ति कितने ही प्रबल या प्रभावशाली क्यों न हो जायँ, समाज में वे सदा हेय और निंद्य ही होते हैं। दूसरे के लेख का हरण करनेवाला तो और भी अधिक, क्योंकि स्वयं बुद्धिजीवी होने और पाठकों की बुद्धि और हृदय पर प्रभाव डालकर उनके आचरण को भी प्रभावित करने के कारण उनका बड़ा भारी नैतिक दायित्व होता है। अतः पर-लेख-हरण वास्तविक लेखक की प्रत्यक्ष हानि के अतिरिक्त हर्ता का अपने प्रति, प्रकाशक के प्रति और पाठकों के प्रति विश्वासघात है। हृत वस्तु की लघुता से हरण की गंभीरता में अंतर नहीं आता।

हमें खेद है, पत्रिका के अंतर्गत भी पर-लेख-हरण के प्रसंग में यहाँ कुछ कहना पड़ रहा है। पत्रिका के भारतेंदु अंक ( वर्ष ५५ अंक १-२ ) में 'खड़ीबोली पद्य में भारतेंदु के प्रयोग' शीर्षक-लेख श्री नारायणप्रसाद सिन्हा के नाम से छपा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


है। उन्होंने इसी नाम से लेख हमारे पास भेजा और विशेषांक समय पर निकालने की जल्दी में हमें न उसपर कोई संदेह हुआ, न उसकी मौलिकता जाँचने का अवसर मिला। इस कारण इसी नाम से लेख छप भी गया। पीछे राँची कालेज के प्रा० श्री केसरीकुमार ने हमें सूचित किया कि लेख उनका है और जाँच करने पर हमने मान लिया, लेख उन्हीं का हैं। हम इस सूचना के लिये उनके आभारी हैं और वर्ष ५५ की वार्षिक सूची में, जो इसी अंक में अंत में छपी है, हमने उक्त लेख पर उन्हीं का नाम दे दिया है।

हृदय-संवाद के अतिरिक्त बोधपूर्वक भी अन्य लेखकों या कवियों के भावों या शब्दों को अपनाकर अपनी रचनाओं में जड़ लेना तो कुशल लेखकों और कवियों की भी सफल कला मानी जाती है, परंतु दूसरे के पूरे लेख पर चुपचाप अपना नाम दे देना—वह भी नागरीप्रचारिणी पत्रिका में—किस प्रकार का साहस है, हम क्या कहें ? हाँ, भविष्य में सावधान रहने के लिये यह लेखकों और संपादकों को चेतावनी अच्छी है।

## राजभाषा-परिषद्

१० मार्च को दिल्ली में हुई राजभाषा-परिषद् के अध्यक्ष श्री ग० वा० मावलंकर का सुविचारित एवं संतुलित भाषण हम इसी अंक के 'चयन' (पृ० ३४६) में उद्धृत कर चुके हैं। उक्त परिषद् ने प्रस्ताव स्वीकृत कर (१) भारत सरकार से अनुरोध किया है कि वह संविधान के अनु० ३५१ की पूर्ति के लिये एक हिंदी आयोग की स्थापना करे जो नियत अवधि के भीतर राजकार्य में हिंदी को अंग्रेजी के स्थान पर प्रतिष्ठित करने के लिये सब प्रकार से उपाय करे; (२) संसद् के हिंदी जानने वाले सदस्यों से प्रार्थना की है कि वे संसद् में अपने भाषणों, प्रश्नों और पत्र-व्यवहार में अंग्रेजी के बदले हिंदी का प्रयोग करें और (३) अहिंदीभाषियों को आश्वासन दिया है कि हिंदी केवल राजकार्य में अंग्रेजी का स्थान ग्रहण करेगी, वह प्रांतीय भाषाओं के विकास में बाधक न होकर सहायक ही होगी। सभी भारतीयों से यह अनुरोध किया गया है कि वे संविधान के अनुसार हिंदी को राजभाषा-पद पर प्रतिष्ठित कराने में पूर्ण सहयोग दें।

परिषद् का सदुद्देश्य और सत्प्रयत्न सर्वथा उचित और अभिनंदनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## राजभाषा का विरोध

भारतीय संविधान-परिषद् द्वारा नागरी-हिंदी के राजभाषा घोषित हो जाने पर भी अभी कुछ लोग उसे विवादग्रस्त ही समझे हुए हैं और उसके विरुद्ध आचरण कर रहे हैं। उर्दू के समर्थकों ने पहले यह मानकर संतोष किया था कि 'हिंदी सिर्फ सरकारी ज़बान मानी गई है, क़ौमी ज़बान के इंतख़ाब का मैदान अभी तक खुला हुआ है' ("हमारी ज़बान", दिल्ली, वर्ष ८ अंक १)। अब वे उसे राजभाषा बनाने का भी मत व्यक्त करने लगे हैं। ("भारत" २४ फरवरी १९५१, श्री के० जी० सैयदैन की अध्यक्षता में दिल्ली में सभा)।

यह प्रयत्न उपेक्षणीय हो सकता था। परंतु १५ मार्च को दिल्ली में भारत सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा आयोजित विद्वत्-सम्मेलन में केंद्रीय शिक्षामंत्री मौलाना अबुलकलाम आजाद ने हिंदी के प्रति जो विचार प्रकट किए उनसे हिंदी संसार बहुत चौंक गया। उसे इसका अनुमान करने का अवसर मिला कि संविधान के राजभाषा संबंधी अनुच्छेद ३५१ की पूर्ति की ओर भारत सरकार का उत्साह और गति इतनी मंद क्यों है।

मौलाना के भाषण के आपत्तिजनक अंशों की ओर पहले-पहल ध्यान दिलाते हुए श्री संपूर्णानंद (शिक्षामंत्री, उत्तर प्रदेश) ने उनका समुचित उत्तर दिया, जो पत्रों में प्रकाशित हो चुका है। अन्य विद्वानों और संस्थाओं ने भी व्यापक रूप से विरोध प्रकट किया। मौलाना के भाषण की सबसे मुख्य आपत्तिजनक बात यह थी कि आधुनिक हिंदी ब्रज और अवधी की परंपरा से विच्छिन्न, अभी थोड़े दिन पहले की भाषा है। हिंदी के संबंध में यह कितना बड़ा भ्रम है और हिंदीवालों के लिये इसका क्या अर्थ है, इसकी संभवतः उन्हें कल्पना ही न हुई। हिंदी को परंपरा-विच्छिन्न बतलाना उर्दू को राजभाषा बनाने की भूमिका में प्रथम चरण है, और इसका विरोध स्वाभाविक और उचित ही था।

बाद में (२७ मार्च को) शिक्षा-मंत्री (मौलाना आजाद) ने संसद् में प्रसंगतः कहा कि 'ज्ञात होता है लोगों को भ्रम हो गया है कि मैंने कहा कि ब्रजभाषा और हिंदी भिन्न-भिन्न हैं। मैंने तो यह कहा था कि आधुनिक हिंदी का जन्म ब्रजभाषा से हुआ है। ब्रजभाषा अवश्य ही हिंदी है किंतु इस हिंदी और आधुनिक हिंदी में उतना ही अंतर है जितना चासर की तथा टेनिसन और बायरन की अँगरेजी में है। मैं न तो आधुनिक हिंदी और न ब्रजभाषा का ही पंडित हूँ, यदि आधुनिक हिंदी का कोई पंडित मुझसे कहे कि ब्रजभाषा और आधुनिक हिंदी में कोई अंतर नहीं, तो मैं अपना मत बदल दूँगा।' उनका मूल भाषण तो हमारे सामने नहीं है, परंतु हम समझते हैं हिंदी के विद्वानों का विरोध हवाई नहीं था। फिर भी अच्छा हुआ जो उन्होंने अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण कर दिया।

—संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पत्रिका की परिवर्तन-सूची, सं० २००७

## हिंदी

| | |
|---|---|
| अदिति | पांडिचेरी |
| आगामीकल | खँडवा |
| आज (१) दैनिक (२) साप्ताहिक | काशी |
| आजकल | दिल्ली |
| आर्यमार्तंड | अजमेर |
| कर्मवीर | खँडवा |
| कल्पना | हैदराबाद (दक्षिण) |
| कल्पवृक्ष | उज्जैन |
| कल्याण | गोरखपुर |
| किशोर | पटना |
| जनवाणी | काशी |
| जीवन साहित्य | नई दिल्ली |
| जैन-सिद्धांत-भास्कर | आरा |
| ज्ञानोदय | काशी |
| दीदी | प्रयाग |
| दीपक | अबोहर |
| धर्मदूत | सारनाथ |
| नईधारा | पटना |
| नयासमाज | कलकत्ता |
| प्राणिशास्त्र | लखनऊ |
| भारत (१) दैनिक (२) साप्ताहिक | प्रयाग |
| भारतीय विद्या | बंबई |
| राष्ट्रभारती | वर्धा |
| लोकमान्य | कलकत्ता |
| विशाल भारत | कलकत्ता |
| विश्वदर्शन | दिल्ली |
| विश्ववाणी | प्रयाग |
| वीर अर्जुन | दिल्ली |
| वीणा | इंदौर |
| वेंकटेश्वर समाचार | बंबई |
| वैदिक धर्म | औंध |
| व्रजभारती | मथुरा |
| शिक्षा | इलाहाबाद |
| शुभचिंतक | जबलपुर |
| शोध पत्रिका | उदयपुर |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| | |
|---|---|
| संगीत | हाथरस |
| सचित्र आयुर्वेद | कलकत्ता |
| सम्मेलन पत्रिका | इलाहाबाद |
| सरस्वती | इलाहाबाद |
| सार्वदेशिक | दिल्ली |
| साहित्य संदेश | आगरा |
| सैनिक | आगरा |
| स्वतंत्र भारत | लखनऊ |
| हंस | काशी |
| हरिजन सेवक | अहमदाबाद |
| हिंदुस्तानी प्रचार | मद्रास |

## अँगरेजी

| | |
|---|---|
| अद्यार लायब्रेरी बुलेटिन | अद्यार |
| इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली | कलकत्ता |
| ईस्ट ऐंड वेस्ट | रोम (इटली) |
| एंशंट इंडिया | नई दिल्ली |
| एनल्स आव ओरिएंटल रिसर्च आव दि युनिवर्सिटी आव मद्रास | मद्रास |
| एनल्स आव द भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट | पूना |
| एनल्स आव द श्री वेंकटेश्वर ओरिएंटल इंस्टिट्यूट | तिरुपति |
| ऐनुअल बिब्लियाग्रफी आव इंडियन आर्क्यालाजी | लीडन (हालैंड) |
| जर्नल आव दि इंडियन हिस्ट्री | त्रिवेंद्रम् |
| जर्नल आव ओरिएंटल रिसर्च | मद्रास |
| जर्नल आव द बांबे ब्रांच आव रायल एशियाटिक सोसायटी | बंबई |
| जर्नल आव द बांबे युनिवर्सिटी | बंबई |
| जर्नल आव द बिहार रिसर्च सोसायटी | पटना |
| जर्नल ( क्वार्टर्ली ) आव दि मीथिक सोसायटी | बंगलोर |
| जर्नल आव द आंध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसायटी | राजमहेंद्री |
| थियासाफिस्ट | काशी |
| दि जैन ऐंटिक्वेरी | आरा |
| बुलेटिन आव द डेक्कन कालेज रिसर्च इंस्टिट्यूट | पूना |
| बुलेटिन आव द स्कूल आव ओरिएंटल ऐंड अफ्रिकन स्टडीज | लंदन |
| सेल्फ रिअलिजेशन मैगजीन | कैलिफोर्निया (सं० रा० अमेरिका) |
| हार्वर्ड जर्नल आव एशियाटिक स्टडीज | कैंब्रिज ( मसाचुसेट्स ) |

## अन्य

| | |
|---|---|
| केसरी ( मराठी ) | पूना |
| बुद्धिप्रकाश ( गुजराती ) | अहमदाबाद |
| भारत इतिहास संशोधक मंडल पत्रिका ( मराठी ) | पूना |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ५५, संवत् २००७

संपादक

**कृष्णानंद**

सहायक संपादक

**पुरुषोत्तम**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


संपादन-परामर्श-मंडल

( वर्ष ५५ अंक ४ से )

केशवप्रसाद मिश्र | राय कृष्णदास

हजारीप्रसाद द्विवेदी | वासुदेवशरण अग्रवाल


पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

मुद्रक—नागरीप्रचारिणी सभा, नागरी मुद्रण, काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वार्षिक विषय-सूची


भारतेंदु का संक्षिप्त जीवनवृत्त एवं साहित्य—श्री व्रजरत्नदास, बी० ए०, एल० एल० बी० ... १
भारतेंदु और उनके पूर्ववर्ती कवि—श्री किशोरीलाल गुप्त, एम० ए० ... २१
भारतेंदु के निबंध—श्री केसरीनारायण शुक्ल, एम० ए०, डी० लिट्० ... ४०
पत्रकार भारतेंदु—श्री व्रजेंद्रकिशोर अग्रवाल, बी० कॉम, साहित्यरत्न ... ५६
भारतेंदु हरिश्चंद्र और पुरातत्त्व—श्री उदयशंकर त्रिवेदी शास्त्री... ... ६७
राष्ट्रीय चेतना के प्रवर्तक कवि भारतेंदु—श्री राजेंद्रनारायण शर्मा ... ७०
खड़ीबोली पद्य में भारतेंदु के प्रयोग—श्री केसरीकुमार, एम० ए० ... ७५
भारतेंदु की छंद-योजना—श्री चंद्राकर शुक्ल, एम० ए० ... ... ८०
चंद्रावली—श्री जगन्नाथप्रसाद शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्० ... ... ८८
भारतेंदु के नाटक—एक दृष्टि—श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़, एम० ए० ... ९४
भारतेंदु और उनकी साहित्यधारा—श्री करुणापति त्रिपाठी, एम० ए० ... ९९
भारतेंदु की भारतीयता—श्री चंद्रबली पांडे, एम० ए० ... ... १०५
प्राकृत जैन साहित्य की रूपरेखा—श्री आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय ... १५७
वसुदेव हिंडी—श्री अगरचंद नाहटा ... ... ... १६४
भक्त अखा—श्री गंगाशंकर बलदेवशंकर पंड्या ... ... ... १७२
वैदेहीपुत्र अजातशत्रु और उसकी कूटनीति—श्री रत्नशंकर प्रसाद ... १७९
भारतीय मुद्राओं का सविशेष अध्ययन—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, एम० ए०, डी लिट्०, ... २६५
महाकवि मेघविजय और उनके ग्रंथ—श्री अगरचंद नाहटा ... ... २८२
श्रुति-साहित्य की काव्योन्मुखता—श्री राजेंद्रनारायण शर्मा ... ... २९२
वैदिक साहित्य में राम-कथा का बीज—श्री चंद्रभान, एम० ए० ... ३०१
धार से प्राप्त एक शिलालेख—श्री वि० श्री० वाकणकर ... ... ३०६
विमर्श
गुप्त सम्राट् और विष्णु सहस्रनाम—श्री दशरथ शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्० . २०१
वाल्मीकि आश्रम—श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल वैद्य, साहित्यवाचस्पति ... ३०९
भूषण का रचनाकाल—श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ... ३१९
चयन
पद्य [ भारतेंदु ] ... ११५
जातीय संगीत [ भारतेंदु ] ... १२४


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ? [ भारतेंदु ] ... १२७
वैद्यनाथ की यात्रा [ भारतेंदु ] ... १३४
सरयूपार की यात्रा [ भारतेंदु ] ... १३६
ले० क० सारंगधर सिंह का भाषण ... २०६
सम्मेलन के सभापति का अभिभाषण ... २१४
हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव ... २२६
जैसलमेर का जिनभद्र ज्ञानभंडार ... ३१६
राजभाषा-परिषद् का अध्यक्षीय भाषण ... ३२४

समीक्षा

तपोभूमि; ब्रह्मविद्या—समीक्षक श्री बलदेव उपाध्याय, एम० ए० ... २३०
श्याम-संदेश; सुंदरप्रकाश—स० श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ... २३२
नई धारा; महादेव भाई की डायरी—स० श्री शंभुनाथ वाजपेयी ... २३५
सच्ची शिक्षा; बुनियादी शिक्षा—स० श्री चित्रगुप्त ... २३६
साकेत-परीक्षण—स० श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ... ३३५
हिंदी काव्य में प्रकृति-चित्रण—स० श्री किशोरीलाल गुप्त ... ३३६
मीरौं [ एक अध्ययन ]—स० श्री ब्रजरत्नदास ... ३३८
निर्गुण-धारा; प्राणिशास्त्र—स० श्री चित्रगुप्त ... ३३६

विविध

भारतेंदु जन्मशती संपादकीय ... २४२
दक्षिण-भारत और हिंदी " ... २४२
योजना ! " ... २४४
हा हंत ! " ... ३४४
मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा—श्री पंड्या बैजनाथ (रा० ब०) ... ३४६
परलेख-हरण संपादकीय ... ३४८
राजभाषा-परिषद् " ... ३४६
राजभाषा का विरोध " ... ३४६
पत्रिका की परिवर्तन सूची, सं० २००७ ... ३५१
सभा की प्रगति—श्री सहायक मंत्री ... २४६
हस्तलिखित ग्रंथों की खोज ( विवरण, सं० २००६ )—श्री प्रधान मंत्री ... २५३

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय हरिद्वार 118733

## भारतेंदु ग्रंथावली ( पहला खंड )

संपादक श्री व्रजरत्नदास, बी० ए०, एल-एल० बी०

आधुनिक हिंदी के जन्मदाता गोलोकवासी भारतेंदु हरिश्चंद्र के समस्त नाटकों का यह संग्रह संवत् २००७ में मनाई गई उनकी जन्मशती के अवसर पर प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में कुल सत्रह नाटक दिए गए हैं जिनमें दस मौलिक हैं तथा पाँच संस्कृत से और दो बंगला से अनूदित है। इस संस्करण के नाटकों का पाठ यथासंभव भारतेंदु जी के समसामयिक संस्करणों के आधार पर ही निश्चित किया गया है। जहाँ नाटकों के प्रथम संस्करण नहीं मिले, वहाँ भारतेंदुजी की पत्रिकाओं–हरिश्चंद्र मैगजीन, हरिश्चंद्र चंद्रिका, बालाबोधिनी, कविवचनसुधा, आदि की सहायता से मूल पाठ का निर्धारण और नाटकों की रचना का क्रम निर्धारित किया गया है। इस प्रकार यह संस्करण अध्येताओं तथा अनुशीलनकर्ताओं के लिये विशेष उपयोगी हो गया है। परिशिष्ट में 'नाटक' नामक एक निबंध तथा पात्रों और नाटक में प्रयुक्त गीतों की प्रतीकानुक्रमणिका भी दे दी गई है। डबल डिमाई १६ पेजी आकार के लगभग ८०० पृष्ठ। सुंदर मजबूत पक्की जिल्द। मूल्य केवल ८ रु०।

## लंकादहन

रचयिता स्व० चौधरी लक्ष्मीनारायणसिंह "ईश"

वाल्मीकि रामायण की कथा पर आधृत इस खंडकाव्य के कवि ने महावीर हनुमान के श्री रामचंद्र जी से मुद्रिका लेकर जानकी जी को देने से लेकर उनकी चूड़ामणि लाकर श्री रामचंद्र जी को अर्पित करने तक का प्रसंग ऐसी टकसाली व्रजभाषा में किया है जिसमें काशी में प्रयुक्त अवधी का भी पुट है। स्व० "ईश" जी व्रजभाषा की कवि-शृंखला की अंतिम कड़ी थे। उनकी वाग्धारा में जिन्होंने अवगाहन किया है वे भली भाँति जानते हैं कि उनकी रचनाएँ प्रसंगानुकूल कितनी मधुर और ओजपूर्ण होती थीं। वे विज्ञापन और प्रचार से दूर, केवल स्वांतःसुखाय रचना करते थे, फलतः स्फुट कविताएँ यदा-कदा ही पत्रों में प्रकाशित हुआ करती थीं। सभा ने उनसे विशेष आग्रह करके यह खंडकाव्य प्रकाशनार्थ लिया था। डबल क्राउन १६ पेजी आकार के १६० पृष्ठ; मूल्य १।।) रु० मात्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110733

## अहिंदी-भाषियों को

# तेलगु कवि श्रीपाद कृष्णमूर्ति का संदेश

श्रीपाद कृष्णमूर्ति तेलगु भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। ८५ वर्ष की अ में भी वे बराबर रचनाएँ करते हैं। गत ८ मार्च १९५१ को नागरीप्रचारिणी द्वारा उनका स्वागत किया गया था, उस अवसर पर उन्होंने कहा था कि एक बाद ही मैं हिंदी में भी काव्य-रचना करूँगा। उसी समय उन्होंने अहिंदीभ भारतीयों के लिये निम्नलिखित संदेश दिया था—

"हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा के उपयुक्त भाषा है। इसमें बड़ा ओज मेरा अहिंदीभाषी व्यक्तियों से साग्रह निवेदन है कि हिंदी को बिना किसी भेद के लिखें, पढ़ें और बोलें। हिंदुस्तानी एक बनावटी भाषा है। इसका न कोई साहि है और न व्याकरण। ऐसी बनावटी भाषा से किसी भी देश का कार्य नहीं सकता। हिंदी में सदा से राष्ट्रीयता की पावन धारा बहती चली आई है और दृढ़ विश्वास है कि हमारे देश की एकता इस भाषा से और भी दृढ़ होगी।"

प्रधान मंत्री

नागरीप्रचारिणी सभा, का

---

## सूचना

सब श्रेणी के सभासदों को उनके सभासद होने के वर्षारंभ से सभा मुखपत्रिका बिना मूल्य दी जायगी। ये सभासद सभा द्वारा प्रकाशित कोष की प्रति ४।५ मूल्य पर तथा अन्य पुस्तकों की एक-एक प्रति ३।४ मूल्य पर ले सकते हैं

( सभा का नियम, संख्या २

मुद्रक—नागरीप्रचारिणी सभा, नागरी मुद्रण, काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अ
ारिणी
कि एक
अहिंदीभ

ड़ा ओज
ऐसी भेद
कोई साि
 नहीं
है और
गी ।"
त्री
सभा, का

से संभा
कोष की
ले सकते हैं
, संख्या २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar